वर्ष: 43, अंक: 5-6, सितंबर-दिसंबर 2020 (संयुक्तांक)

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

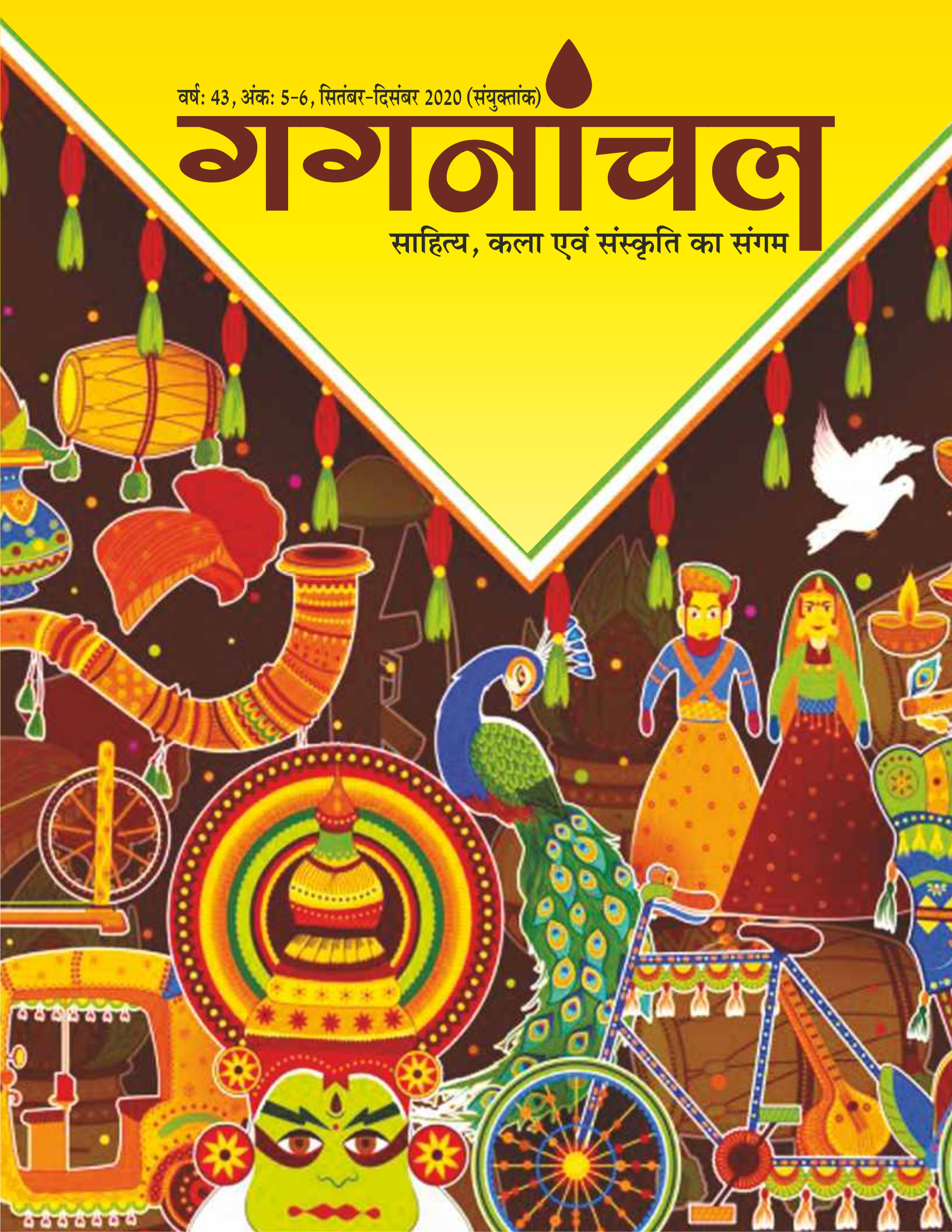

भारत जमीन का टुकड़ा नहीं

भारत जमीन का टुकड़ा नहीं,
जीता जागता राष्ट्रपुरुष है।
हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,
पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं।
पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघायें हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं, सागर इसके पग पखारता है।
यह चंदन की भूमि है, अभिनंदन की भूमि है,
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।
इसका कंकर-कंकर शंकर है,
इसका बिंदु-बिंदु गंगाजल है।
हम जियेंगे तो इसके लिए
मरेंगे तो इसके लिए।

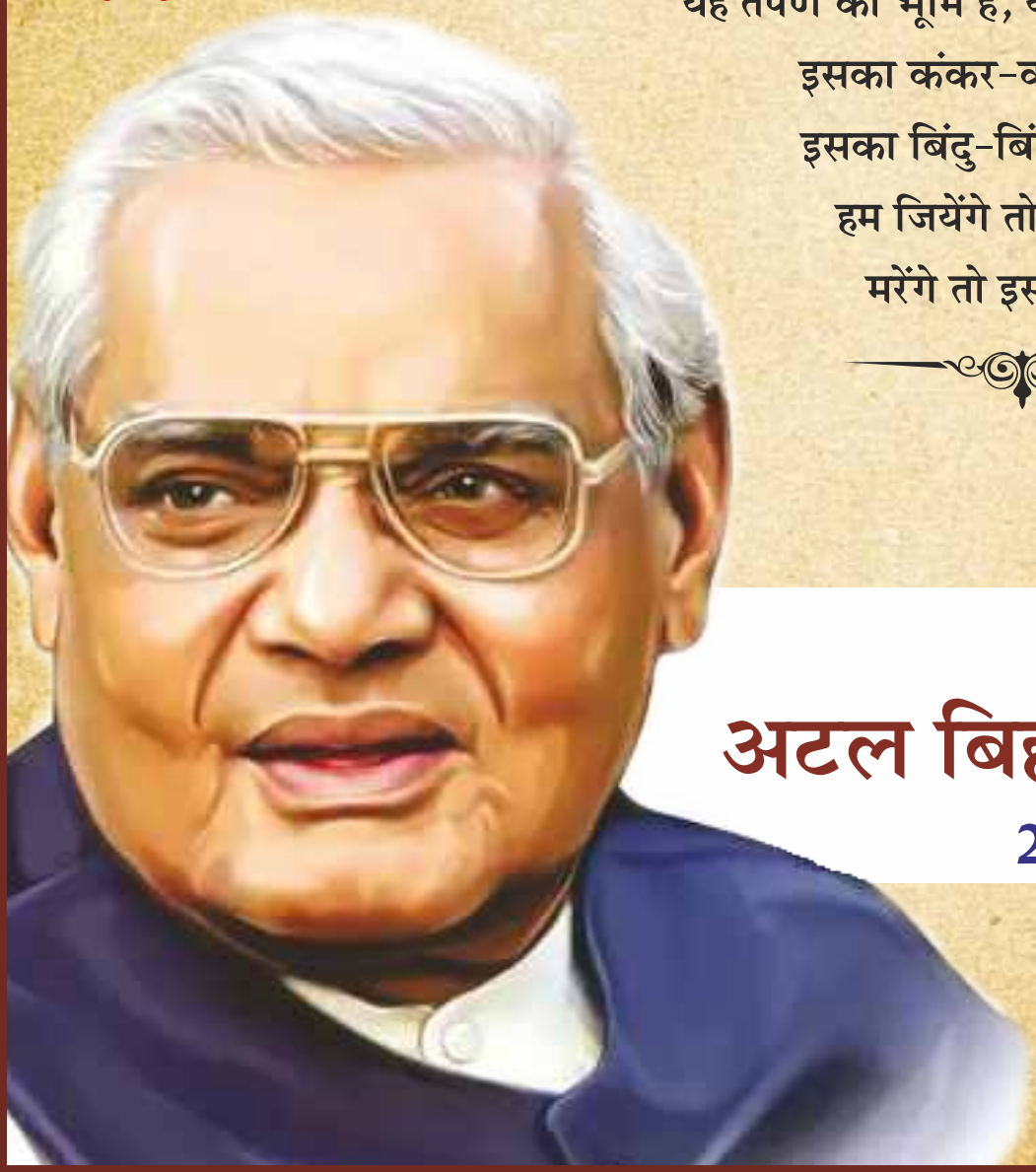

जयंती स्मरण

अटल बिहारी वाजपेयी

25 दिसम्बर, 1924

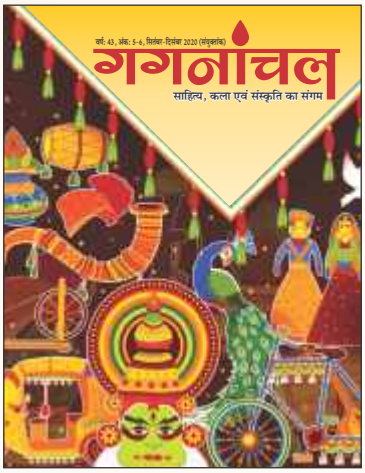

प्रकाशक

दिनेश कुमार पटनायक

महानिदेशक

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

संपादक

डॉ. आशीष कंधवे

प्रकाशन सामग्री भेजने का पता

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,

नई दिल्ली-110002

ई-मेल : spdawards.iccr@gov.in

गगनांचल अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध
http://www.iccr.gov.in/Publication/Gagananchal
पर क्लिक करें।

सदस्यता शुल्क

वार्षिक	:	₹ 500
	यू.एस	$ 100
त्रैवार्षिक	:	₹ 1200
	यू.एस.	$ 250

उपर्युक्त सदस्यता शुल्क का अग्रिम भुगतान 'भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली' को देय बैंक ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा किया जाना श्रेयस्कर है।

मुद्रण : स्पेस 4 बिजनेस सोल्यूशन्स प्रा. लि. दिल्ली

ISSN : 0971-1430

वर्ष: 43, अंक: 5-6, सितंबर-दिसंबर 2020 (संयुक्तांक)

गगनांचल

साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

इस अंक के आकर्षण

कविता की 'अटल' धारा

हिमालय का सांस्कृतिक गौरव

कहानी : यह सन्नाटा कब टूटेगा

ब्रह्मपुत्र में विलीन होता माजुली

भारत की विचार परंपरा और स्वामी दयानंद

श्रीमद्भगवद्गीता और वैराग्य संदीपनी

प्रेम, प्रतिरोध और मीरा के काव्य की सार्वकालिकता

भारतीय ज्ञान परंपरा : जनहित-राष्ट्रहित की सिद्धि

अटल बिहारी वाजपेयी : पूजा स्थलों का दुरुपयोग

उत्तर-पूर्व भारत : औपनिवेशिक आख्यान बनाम भारतीय दृष्टि

गगनांचल में प्रकाशित लेखादि पर प्रकाशक का कॉपीराइट है किंतु पुनर्मुद्रण के लिए आग्रह प्राप्त होने पर अनुमति दी जा सकती है। अतः प्रकाशक की पूर्वानुमति के बिना कोई भी लेखादि पुनर्मुद्रित न किया जाए। गगनांचल में व्यक्त विचार संबद्ध लेखकों के होते हैं और आवश्यक रूप से परिषद की नीति को प्रकट नहीं करते। प्रकाशित चित्रों की मौलिकता आदि तथ्यों की जिम्मेदारी संबंधित प्रेषकों की है, परिषद की नहीं।

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 5-6, सितंबर-दिसंबर 2020

प्रकाशकीय

4 **लोकतंत्र का आधार : भारतीय संस्कृति**
दिनेश कुमार पटनायक

संपादकीय

5 **सहिष्णुता : अंतर्मन का संयम**
डॉ. आशीष कंधवे

सांस्कृतिक-विश्व

8 **हिमालय का सांस्कृतिक गौरव**
डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

लोक-संस्कृति

13 **ब्रह्मपुत्र में विलीन होता माजुली**
शालिनी मिश्रा

सांस्कृतिक-विरासत

18 **त्रिपुरा की जमातिया जनजाति की पारंपरिक पूजा-पद्धति**
डॉ. मिलन रानी जमातिया

22 **न्यिशी जनजाति का एक प्रमुख संस्कार : आम दगा पनाम**
डॉ. जोराम आनिया ताना

कथा-सागर

25 **यह सन्नाटा कब टूटेगा**
तेजेंद्र शर्मा (इंग्लैंड)

29 **स्टेपिंग स्टोन**
रेखा राजवंशी (ऑस्ट्रेलिया)

32 **कटी नाक का रहस्य**
संदीप अग्रवाल

35 **एक नई सुबह**
मंजुश्री

38 **काले घोड़े (लेखक-मुहम्मद सलमावी)**
डॉ. मुहम्मद कुतुबुद्दीन (अनुवादक)

दृष्टि-सृष्टि

66 **भारत की विचार परंपरा और स्वामी दयानंद**
अजीत कुमार पुरी

76 **उत्तरपूर्व भारत : औपनिवेशिक आख्यान बनाम भारतीय दृष्टि**
प्रो. रसाल सिंह

आराधना-साधना

84 **श्रीमद्भगवद्गीता और वैराग्य संदीपनी**
डॉ. मृदुल कीर्ति (ऑस्ट्रेलिया)

चिंतन-मंथन

88 **भारतीय शिक्षा का इतिहास और वर्तमान शिक्षा प्रणाली**
नेहा गौड़

91 **स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता और गिरिजा कुमार माथुर**
साधना अग्रवाल

94 **हिंदी की वैश्विकता और भारतीय संस्कृति**
डॉ. के. श्रीलता विष्णु

शोध-संसार

97 **मॉरीशस के प्रवासी जीवन में लोक साहित्य की भूमिका**
प्रियंका कुमारी

102 **सामाजिक समरसता में संत कबीर का योगदान**
वचनाराम मोडाराम काबावत

प्रबंधन-वैविध्य

107 **आपदा प्रबंधन और साहित्य**
कृष्ण बिहारी पाठक

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

अनुक्रम

वर्ष 43, अंक 5-6, सितंबर-दिसंबर 2020

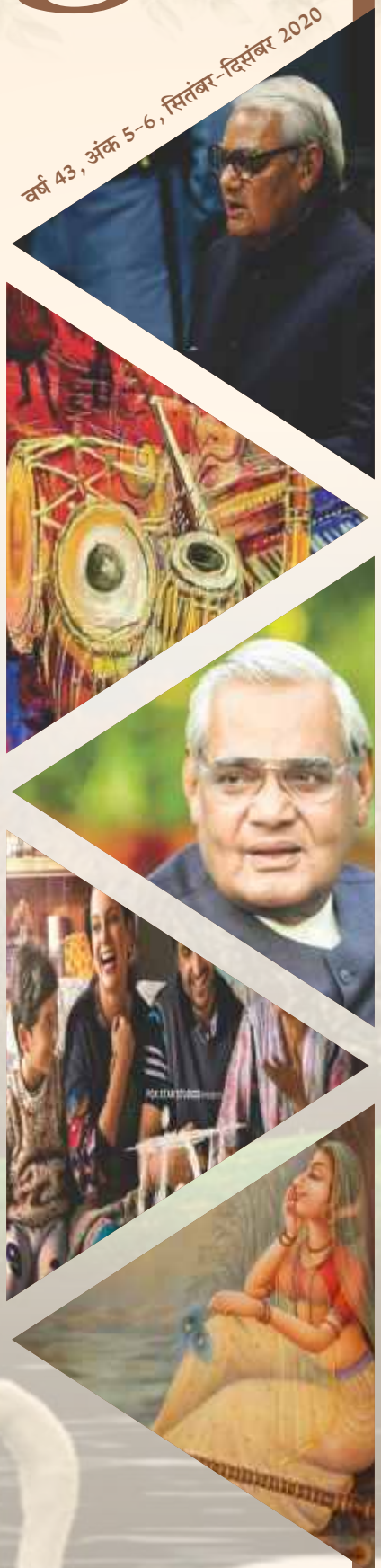

ज्ञान-कलश

111 **भारतीय ज्ञान परंपरा : जनहित-राष्ट्रहित की सिद्धि**
डॉ. आनंद पाटील

घर-संसार

115 **दादा-दादी व पोता-पोती के बीच का प्यारा व सुनहरा रिश्ता**
मोनिका अग्रवाल

व्यंग्य-यात्रा

119 **हिंदी साहित्य में व्यंग्य का विकास**
चुन्नीलाल

व्यंग्य-वीथिका

125 **कॉलेज में एक दिन**
अनुराग वाजपेई

127 **थाने में एफआईआर**
डॉ. हरीश कुमार सिंह

स्वर-संगीत

129 **साहित्य और संगीत : जीवन के दो छोर**
डॉ. महेंद्र प्रजापति

सिनेमा-संसार

132 **कर्तव्य पथ पर लौटता मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा**
संजीव श्रीवास्तव

जयंती स्मरण : मीरा

137 **प्रेम, प्रतिरोध और मीरा के काव्य की सार्वकालिकता**
पल्लवी प्रकाश

लघुकथा-सरोवर

143 विरेंद्र वीर मेहता

145 नीरज सुधांशु

146 मंजरी कुमारी

व्यक्ति-विशेष

148 **पंडित अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में भारत राष्ट्र**
डॉ. धीरज सिंह

155 **राष्ट्रीय भावबोध और स्वाभिमान के कवि अटल बिहारी वाजपेयी**
डॉ. अमूल्य रत्न महांति

160 **कविता की 'अटल' धारा**
प्रो. रमा

164 **पूजा स्थलों का दुरुपयोग**
अटल बिहारी वाजपेयी

जयंती स्मरण : पं. मदन मोहन मालवीय

166 **महामना के सपनों का भारत**
डॉ. मीना शर्मा

पुस्तक समीक्षा

169 **कृष्ण राधा प्रेमाख्यान : अंतरंगिनी**
अलका कंसारा

योग एवं उपचार

170 **भारतीय संस्कृति की पोषक : प्राकृतिक चिकित्सा**
ममता

काव्य-मधुबन

174 हरेन्द्र प्रताप

176 इंदुशेखर तत्पुरुष

177 सुरेश अवस्थी

178 दामिनी यादव

179 कुमार अनुपम

180 वृषाली जैन (ऑस्ट्रेलिया)

181 ज्योति वर्मा

182 डॉ. मीरा निचळे

183 आशु महाजन

184 सपना रघुनन्दन शुक्ला

185 मृणाल शर्मा (ऑस्ट्रेलिया)

186 हरि मोहन

187 **गतिविधियाँ : आई.सी.सी.आर.**

गगनांचल
साहित्य, कला एवं संस्कृति का संगम

दिनेश कुमार पटनायक
महानिदेशक

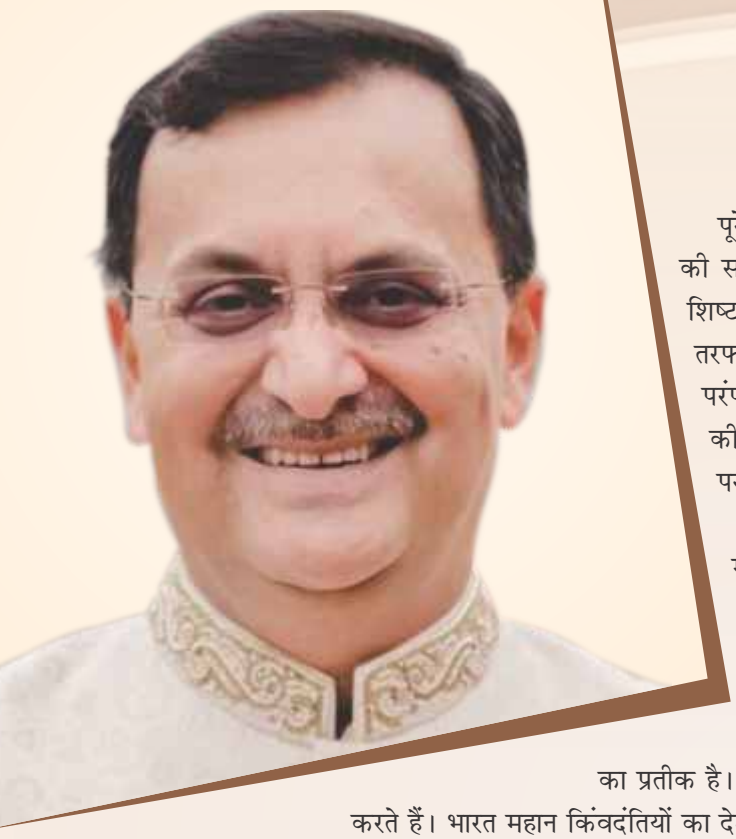

लोकतंत्र का आधार : भारतीय संस्कृति

पूरे विश्व में भारत अपनी सांस्कृतिक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। भारत विश्व की सबसे प्राचीन सभ्यता का देश है। भारतीय संस्कृति के महत्त्वपूर्ण तत्त्व अच्छे शिष्टाचार, सभ्य संवाद, धार्मिक संस्कार, मान्यताएँ और नैतिक मूल्य आदि हैं। एक तरफ नित बदलती जीवन-शैली आधुनिक हो रही है, परंतु भारतीय आज भी अपनी परंपरा और मूल्यों को बनाए हुए हैं। विभिन्न संस्कृति और परंपरा के लोगों के बीच की घनिष्ठता ने एक अनोखा देश 'भारत' बनाया है। अपनी खुद की संस्कृति और परंपरा का अनुसरण करके भारत में लोग शांतिपूर्ण तरीके से रहते हैं।

सभी की जीवन-शैली आधुनिक होने के बाद भी, भारतीय लोगों ने अपनी मूल परंपराओं और मूल्यों को नहीं बदला। विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के लोगों के बीच एकजुटता की संपत्ति ने भारत को एक अनूठा देश बना दिया है।

भारतीय संस्कृति ने दुनिया भर में बहुत लोकप्रियता प्राप्त की है यहाँ रहने वाले लोग विभिन्न धर्मों, परंपराओं, खाद्य पदार्थों, पहनावे आदि विभिन्न परंपराओं के लोग सामाजिक रूप से अन्योन्याश्रित हैं। यही बंधन भारतीयता का प्रतीक है। भारतीय लोग हमेशा अपने सिद्धांतों और अपनी सनातन परंपराओं का निर्वहन करते हैं। भारत महान किंवदंतियों का देश है जहाँ महान लोगों ने जन्म लिया और बहुत सारे सामाजिक कार्य किए। वे अभी भी हमारे लिए प्रेरक व्यक्तित्व हैं।

भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि हजारों वर्षों के बाद भी यह संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है, जबकि मिस्र, सीरिया, यूनान और रोम की संस्कृतियाँ अपने मूल स्वरूप को लगभग विस्मृत कर चुकी हैं। भारत में नदियों, वट, पीपल जैसे वृक्षों, सूर्य तथा अन्य प्राकृतिक देवी-देवताओं की पूजा-अर्चना का क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है। देवताओं की मान्यता, हवन और पूजा-पाठ की पद्धतियों की निरंतरता भी आज तक अप्रभावित रही है। वेदों और वैदिक धर्म में करोड़ों भारतीयों की आस्था और विश्वास आज भी उतना ही है, जितना हजारों वर्ष पूर्व था। गीता और उपनिषदों के संदेश हजारों साल से हमारी प्रेरणा और कर्म का आधार रहे हैं। किंचित परिवर्तनों के बावजूद भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों, जीवन-मूल्यों और वचन पद्धति में एक ऐसी निरंतरता रही है कि आज भी करोड़ों भारतीय स्वयं को उन मूल्यों एवं चिंतन प्रणाली से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं और प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

भारतीय संस्कृति की सहिष्णुता एवं उदारता के कारण उसमें एक ग्रहणशील प्रवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिला। वस्तुतः जिस संस्कृति में लोकतंत्र एवं स्थायित्व के आधार व्यापक हों, उस संस्कृति में ग्रहणशीलता की प्रवृत्ति स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो जाती है। हमारी संस्कृति में यहाँ के मूल निवासियों ने समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण जैसी प्रजातियों के लोग भी घुलमिल कर अपनी पहचान खो बैठे।

अनेक विभिन्नताओं के बावजूद भारत की पृथक सांस्कृतिक सत्ता रही है। हिमालय संपूर्ण देश के गौरव का प्रतीक रहा है, तो गंगा-यमुना और नर्मदा जैसी नदियों की स्तुति यहाँ के लोग प्राचीन काल से करते आ रहे हैं। राम, कृष्ण और शिव की आराधना यहाँ सदियों से की जाती रही है। भारत की सभी भाषाओं में इन देवताओं पर आधारित साहित्य का सृजन हुआ है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक संपूर्ण भारत में जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कार एक समान प्रचलित हैं। विभिन्न रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और तीज-त्योहारों में भी समानता है। भाषाओं की विविधता अवश्य है फिर भी संगीत, नृत्य और नाट्य के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। संगीत के सात स्वर और नृत्य के त्रिताल संपूर्ण भारत में समान रूप से प्रचलित हैं। भारत अनेक धर्मों, संप्रदायों, मतों और पृथक आस्थाओं एवं विश्वासों का महादेश है, तथापि इसका सांस्कृतिक समुच्चय और अनेकता में एकता का स्वरूप संसार के अन्य देशों के लिए विस्मय का विषय रहा है।

दिनेश कुमार पटनायक

डॉ. आशीष कंधवे
संपादक

सहिष्णुता : अंतर्मन का संयम

विकास के लिए अथक परिश्रम के साथ-साथ जनमानस के शुद्धिकरण और भावनात्मक एकीकरण की आवश्यकता होगी। लोगों में यह भावना उत्पन्न करना होगा कि क्षेत्रवाद, भाषावाद और जातिवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रहित में सोच बनाएँ। देश के लिए प्रदेश का प्रदेश के लिए गाँव अथवा नगर का और गाँव, नगर के लिए अपना निजी स्वार्थ त्याग दें। अपने अंदर के देवता को जागृत करें। मनसा-वाचा-कर्मणा सत्कर्मों में संलग्न हों। भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी से अपने को बचाएँ। वैयक्तिक हितों को देश के नाम पर तिलांजलि दे डालें। मानवीय गुणों को प्रश्रय दें। विकृत मानसिकता के भावों को अपने से अलग करके समाज हित की सोच बनाएँ। मानवीय मूल्यों की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति को संबल प्रदान करें और उनको पुनः स्थापित करें। कड़ी मेहनत करके कृषि-उत्पादन बढ़ाएँ और उनमें विविधता लाएँ। वृक्षों को काटने से रोकें और वर्षा तथा समीप के जल स्तर को जीवित रखने के लिए पानी के समुचित उपयोग पर ध्यान दें। जंगलों का दोहन रोकें। पर्वतों को छोटा करने की प्रवृति पर प्रतिबंध लगाया जाए। हिंदू जीवनशैली में पुनः यज्ञ को अत्यधिक महत्त्व दिया जाए, ताकि वातावरण में प्रदूषण की जो विषैली हवा बन चुकी है उसका शोधन हो सके। जीवन में शुद्धता और स्वच्छता को अत्यधिक महत्व दिया जाए।

देश का सर्वांगीण विकास न केवल भौतिक क्षेत्र में अपितु आध्यात्मिक क्षेत्र में भी आवश्यक होता है। हमारा देश आध्यात्मिक क्षेत्र में विश्व मानवता का प्रतिनिधित्व करता आया है। भौतिकवादी वैचारिकी ने यहाँ की आध्यात्मिक शैली को कुछ अंशों में प्रभावित अवश्य किया है, जिसका निवारण करने की आवश्यकता है। भौतिक क्षेत्र में हमारी प्रगति किसी भी देश से कम नहीं रही। दुनिया को अनेक भौतिक आयाम भारत ने ही दिए परंतु, हमारी भौतिकी में भी समरसता के गुण विद्यमान थे, जिसका लाभ पूरे विश्व को मिल सका था। हमने जो भी प्राप्त किया, मुक्त हस्त से दुनिया को समर्पित कर दिया। यह हमारी उदारता का प्रतीक है जिसके अन्तःस्थल में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'विश्व बंधुत्व' भाव की वैचारिकी की अन्विति हुई थी।

वर्तमान युग में भौतिकवाद पर अधिक बल दिया जा रहा है और आध्यात्मिक पक्ष को उदासीनता के भाव से देखा जा रहा है। संभवतः इसीलिए हमारे समाज में पश्चिमी देशों की तरह विकृतियाँ आ गई हैं। भौतिक सुख-संपत्ति के लालच में पड़कर हमने नैतिक और सदाचारयुक्त आचार को अपने से अलग कर दिया है, इसलिए हम जो भी प्राप्त करते जा रहे हैं उतने से संतुष्ट नहीं हैं। जहाँ संतुष्टि नहीं होती, वहाँ असंतोष का राज्य होता है और जहाँ असंतोष होता है वहीं पर अव्यवस्था होती है। अव्यवस्था को आध्यात्मिक दिशा में ले जाने के लिए समरसता को माध्यम बनाने की आवश्यकता है, क्योंकि देश का सर्वांगीण विकास उसके भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दिशाओं में उत्थान से जुड़ा हुआ है और यह स्थिति सामाजिक समरसता के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

भारत में सामाजिक समरसता-विखंडन के लिए हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ हुआ भयानक छेड़छाड़ भी उत्तरादायी है। संस्कृति एवं साहित्य के साथ हुए छेड़छाड़ से अर्थ का अनर्थ कर हिंदू समाज को छिन्न-भिन्न कर दिया गया। मनु स्मृति का पहली

बार संपादन एवं प्रकाशन अंग्रेजों ने सन् 1828 में किया। तत्पश्चात् सन् 1888 तक अनेकों धर्म ग्रंथों का प्रकाशन किया। यह कालखंड अंग्रेजों के लिए संक्रमण काल था। सन् 1857 में तो क्रांति का बिगुल भी 'मेरठ क्रांति' के नाम से बज उठा। सन् 1920 में डब्ल्यू.एस. विग्रस ने 'दी चमार' नामक पुस्तक का लेखन किया। हिंदू लोक जीवन के अन्तर्गत छः हजार पाँच सौ जातियों में मात्र चमार जाति पर लिखी गई ऐसी पुस्तक का उद्देश्य सरलता से समझा जा सकता है कि इस प्रकार के प्रकाशन द्वारा हिंदी समाज को बाँट दिया जाए। हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ छेड़छाड़ का कारण हिंदू समाज की समरसता एवं संगठन को समाप्त करके हिंदू शक्ति को क्षीण बनाना था। हिंदू संस्कृति को सर्वाधिक क्षति विदेशी मुसलमान आक्रांताओं के आक्रमण एवं हिंदुओं के बलपूर्वक धर्म परिवर्तन से हुआ है। हिंदू समाज की समरसता-विखंडन के पीछे अंग्रेज़ों द्वारा हिंदुओं को बाँटने के उद्देश्य, प्रक्षिप्त साहित्य का संपादन एवं प्रकाशन तो था ही किंतु ईसाई मिशन द्वारा प्रदूषित साहित्य प्रकाशन भी हिंदुओं में विशेष रूप से दलितों के मानस में शेष हिंदुओं के लिए घृणा, ईर्ष्या एवं द्वेष बढ़ाने के लिए किया जाता रहा है। यह क्रम आज भी नियमित रूप से चल रहा है। कम्युनिस्ट तथा जनवादी लेखकों द्वारा योजनाबद्ध रूप से भ्रामक तथ्यों का तो प्रकाशन चल ही रहा है किंतु दलित साहित्यकारों की पूर्वाग्रह युक्त चिंतन धारा भी समरसता स्थापित करने की जगह विषमता की स्थापना में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो रही है। हिंदू संस्कृति एवं साहित्य के साथ स्वालाभ एवं ख्याति के लिए भी लज्जाजनक छेड़छाड़ हो रही है। आज सामाजिक समरसता दर्शन की स्थापना हेतु इन सभी समरसता-विखंडन के योजनबद्ध प्रयासों को असफल करते हुए भारतीय समाज को पुनः सुदृढ़ करने के लिए सामाजिक समरसता का प्रचार-प्रसार अति आवश्यक है।

भारत का वर्तमान विकासोन्मुख तो है किंतु उसके विकास को अवरुद्ध करने के लिए विदेशी शक्तियाँ तरह-तरह के प्रयास कर रही हैं। सत्ता में रहकर जनता के लिए कार्य करने वाली राजनैतिक पार्टियों पर दबाव बनाया जा रहा है। उत्पादन के क्षेत्र में वैश्वीकरण द्वारा प्रतिस्पर्द्धा उत्पन्न करके कृत्रिम मंदी का बाजार निर्मित किया जा रहा है। भारत के शक्ति संग्रह को प्रभावित करने के लिए पड़ोसी देशों को हथियारों की आपूर्ति की जा रही है, उनको युद्ध के लिए उकसाया जा रहा है और आतंकवाद आदि के माध्यम से अस्थिरता पैदा की जा रही है। इन सबके चलते देश का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विकास अवरुद्ध हो गया है।

हमें इस बात को याद रखना होगा कि धर्म और दर्शन की अधोगति के इस युग में साहित्य और साहित्यालोचन पर एक अतिरिक्त जिम्मेदारी अनिवार्यतः आ पड़ी है। साहित्य में पुनर्रचित जीवन स्पंदों को, मानवता के अन्तःप्रमाण को युगीन विचार-प्रवाह के भरे-पूरे परिप्रेक्ष्य में देखने-परखने की जरूरत है। आलोचक हैरल्ड ब्लूम का तो स्पष्ट ही अभिमत है कि 'चूँकि आज के हमारे सांस्कृतिक दृश्य में दार्शनिक मनीषा लगभग गायब हो गयी है, अतः साहित्यालोचक अपने स्वधर्म से ही विवश है। उस रिक्त स्थान की पूर्ति करने और समाज को शिक्षित करने का वह सांस्कृतिक कर्म अपने हाथ में लेने को, जिसे कभी दार्शनिक लोग निभाया करते थे।'

आइये कुछ चर्चा साहित्य से हटकर कर लें। हम मानव हैं, इसमें कोई शक नहीं पर जिस तेजी से हम मानवीय वृत्तियों को छोड़ रहे हैं, अत्यंत चिंता का विषय है। अब पाप और पुण्य से किसी को डर नहीं लगता। समाज में नित नए मानदेय और मानदंड स्थापित हो रहे हैं और टूट भी रहे हैं। इसका सबसे भयानक दुष्परिणाम यह हुआ है कि नैतिकता अपने निम्नतम स्तर पर भी संघर्ष करती हुई दिखलाई पड़ती है। किसी पर भी विश्वास कायम रखना कठिन हो गया है। ऐसा लगता है 'विश्वास' कहीं खो गया है और नियति का तो गला ही घोट दिया गया है। आप चाहे जितनी भी स्पष्ट नीतियाँ बना लें परन्तु कोई भी नीति, कोई भी कानून सुव्यवस्थित शासन और स्वच्छ प्रशासन नहीं दे सकता, क्योंकि आज के समय में हमारी नियति नहीं नीयत ख़राब हो चुकी है। "नीतियों की ख़राबी एवं ख़ामियों से शायद उतनी हानि नहीं है जितनी हानि समाज की नीयत के ख़राब होने से हो रही है।" अब इस नीयत के ख़राब होने को आप जो नाम दे दें, क्या फ़र्क पड़ता है।

'सहिष्णुता' आत्म-मंथन से सिद्ध होने वाला अंतर्मन का संयम है। वहीं 'असहिष्णुता', 'चाहिए' का उत्कृष्ट उदाहरण 'है' और 'चाहिए' के द्वंद्व से संघर्ष की उत्पत्ति होती है। यही संघर्ष समाज में असंतोष का कारण बनती है। विडंबना यह है कि समाज

में संघर्ष और आक्रोश का आरंभ बुद्धिजीवियों द्वारा ही होता है, क्योंकि ये बुद्धिजीवी पद, प्रतिष्ठा और अपने सामाजिक पराक्रम को कम होते नहीं सहन कर पाते हैं, अर्थात् 'चाहिए' की क़ैद में पूर्णत: जकड़े हुए होते हैं। राष्ट्रहित, सामाजिक उत्थान, समरसता आदि पर आत्ममंथन के स्थान पर ये अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्षशील हो जाते हैं और जाने-अनजाने अपना आत्म हनन कर लेते हैं। यही कुंठा उनको अधोगति की ओर धकेल देती है।

भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हमारा मौलिक अधिकार है। हम सब विश्व के अन्य कई विकसित देशों से अधिक आजादी के साथ अपनी बात खुल कर कभी भी कहीं भी रख सकते हैं। परंतु प्रश्न यह है कि क्या हम लोग सिर्फ़ अधिकारभोगी हो गए हैं? हमारा राष्ट्र के प्रति, समाज के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं है? 'मैं' और 'मेरा' ही सर्वोपरि है? जो मैं कह रहा हूँ वही 'सत्य' है? जो मैं लिख रहा हूँ वही 'श्रेष्ठ' है? जो मैं चाहता हूँ वही 'धर्म' है? यह किसी भी सभ्य समाज के लिए परेशान कर देने वाली स्थिति है। यहीं से असहिष्णुता का जन्म होता है। हमें यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि 'काल सतत चलता रहता है।'

काल का सतत चलते रहना ही सृष्टि है और सृष्टि है तो मनुष्य विचारों के वेग से वेगवान बना रहेगा। विचार कभी भी ज्ञान नहीं होता बल्कि विचारों के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति को सिद्ध किया जा सकता है। जब तक किसी भी व्यक्ति के विचार चक्षु जागृत नहीं हो जाते तब तक वह साहित्य, संस्कृति अथवा राष्ट्र के लिए कुछ विशेष नहीं कर सकता। परिस्थितियों से भागकर परिवेश को नहीं बदला जा सकता। हमें उसी परिवेश में रहकर उत्तम मार्ग की तलाश करनी पड़ती है। प्रयास ही जीवन को बढ़ाने में महती भूमिका निभाता है। सच्चाई को स्वीकार करके आप अपने मानसिक तनाव को कम कर सकते हैं और तभी साहित्य का सृजन संभव है, संस्कृति का अभिनंदन संभव है। जीवन के गुण, धर्मों में जो लक्षण प्रभावी होता है वही उसके जीवन में प्रकट होता है। जीवात्मा में हज़ारों एप्लाइड गुणधर्म छिपे हुए हैं। आज हम जिस स्तर पर हैं वह हमारे भीतर निहित अप्लाइड गुणधर्मों के कारण है अन्यथा हम और ऊपर भी हो सकते थे और अधिक नीचे भी। जो भी हमारे गुण धर्मों में हमारा स्वभाव बनकर छिपा है वही हमारा आत्मस्वरूप है वही मैं हूँ और वही आप हैं। यही 'मैं' और 'आप' मिलकर किसी राष्ट्र के परिवेश-परिदृश्य का निर्माण करते हैं।

दरअसल, हम अच्छाई और बुराई की सीमा रेखा को तय करते-करते इतने अशुद्ध और अशुभ हो जाते हैं, अपने और पराए की बीच की दूरी को तय करते-करते हम अपनों से इतने दूर हो जाते हैं कि पुन: उस परिदृश्य का निर्माण संभव नहीं है जिसे हम अतीत में पीछे छोड़ चुके हैं। इन्हीं सामाजिक संदर्भों को परिभाषित करने के लिए साहित्य की आवश्यकता होती है। परंतु निश्चित रूप से उस साहित्य का सकारात्मक होना, उस साहित्य का लालित्यपूर्ण होना और उस साहित्य का जीवंत होना अतिआवश्यक है। अन्यथा हम एक ऐसी मानसिक अवस्था में पहुँच जाते हैं जहाँ शून्य के सिवा कुछ भी नहीं।

दुनिया के जितने भी विकसित और समृद्ध राष्ट्र हैं उन सभी देशों में साहित्य और संस्कृति के लिए समाज में एक समर्पण का भाव होता है जिसे हम अपने देश में बहुत तेजी से छोड़ते जा रहे हैं। हमारी मूल्यांकन करने की पद्धति और परिपाटी ने कहीं न कहीं समाज को साहित्य से बहुत दूर कर दिया है विशेषकर हिंदी साहित्य से। विमर्शों में खंडित हिंदी साहित्य के लिए अब एक नए विमर्श की आवश्यकता है जो इसके सकारात्मक जीवन और मूल्यबोधक परंपराओं के बारे में पुन: समाज को अवगत कराए। इस पत्रिका के माध्यम से इन्हीं मान्यताओं की पुष्टि और प्रसार का संधान हमारा अभीष्ट है।

डॉ. आशीष कंधवे

मोबाइल : +91-9811184393

ई-मेल : editor.gagananchal@gmail.com

हिमालय का सांस्कृतिक गौरव

— डॉ. शिबन कृष्ण रैणा

हिमालय-क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य भी अन्यतम है। ऊँचे-ऊँचे हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, कल-कल रव करती नदियाँ, झरनें, स्फटिक शिलाएँ, मनोहर ढलानों पर बने क्यारीनुमा खेत, हरे-घने वन आदि इस महापर्वत के शोभालंकार हैं। दूसरे शब्दों में हिमालय धरती की समग्र शोभा का अनुपम कोषागार है, जो सदैव अपनी प्राकृतिक सुषमा से मंडित रहता है। प्राकृतिक वैभव यहाँ बिखरा पड़ा है। वन-संपदा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। देवदार, चीड़ आदि के ऊँचे-ऊँचे पेड़ यहाँ की शोभा बढ़ाते हैं। ये पेड़ जगंली जीव-जंतुओं की शरणस्थली भी हैं। कितने ही जानवर यहाँ निवास करते हैं। भालू, रीछ, हाथी, बंदर, याक, जेबरा, गेंडा, चीता, हिरन सब यहाँ स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते हैं। उधर पेड़ों पर पक्षियों का कलरव सुनाई देता है तो इधर छोटी-छोटी नदियाँ, ऊँचे पहाड़, गहरी खाइयाँ, पेड़, पशु, पक्षी आदि मिलकर अद्‌भुत प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करते हैं।

नगपति हिमालय सचमुच विशाल है। इसका आकार-प्रकार विशाल, इसकी भव्यता विशाल, इसकी संस्कृति विशाल और इसका अतीत भी विशाल। भारतीय साहित्य और जीवन में हिमालय का बड़ा महत्व है। कालिदास ने इसे 'नगाधिराज कहा तो 'संस्कृति के चार अध्याय' के लेखक रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'मेरे नगपति, मेरे विशाल' से इसे संबोधित किया। हिमालय अपनी विविधता में महान है बाहरी रूप में भी और भीतरी रूप में भी। एक ओर जहाँ यह पर्वतराज अपनी बहुमूल्य वनस्पति, जंगलों की समृद्धि, पशु-पक्षियों, खनिज-संपदा, पर्वतों-श्रेणियों एवं नदियों से संपन्न है तो आत्मिक रूप से अध्यात्म-चिन्तन, ज्ञान-मुक्ति और परमार्थ-दर्शन के लिए भी साधकों, मनस्वियों, चिन्तकों और ऋषियों-मुनियों को प्रश्रय देता रहा है। सचमुच, हिमालय भारत देश का ही नहीं, समूचे विश्व का गौरव है। इसमें हमें विशेष रूप से भारत और समूची भारतीय संस्कृति की विराटता एवं औदात्य के एक साथ दर्शन होते हैं। इसीलिए भारत और हिमालय दोनों संभवतः एक-दूसरे के पर्याय-से बन गए हैं। सदियों से अपने धवल रूप में मौनद्रष्टा प्रहरी की भाँति खड़ा यह पर्वतराज भारतीय संस्कृति एवं जनजीवन में होने वाले परिवर्तनों का युगों-युगों से साक्षी रहा है। एक तरह से यह भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अंग बन गया है। भारतीय साहित्य, कला, धर्म, दर्शन आदि में हिमालय का जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव दिखाई देता है, वह इस बात को सिद्ध करता है कि 'नगपति' हिमालय हमारी आस्थाओं, हमारी मान्यताओं और हमारी सांस्कृतिक धरोहर का बहुमूल्य प्रतीक है।

भौगोलिक सर्वेक्षण के अनुसार हिमालय पर्वत की चौड़ाई कश्मीर में 400 कि.मी. एवं अरुणाचल प्रदेश में 150 कि.मी. के क़रीब है। हिमालय की पर्वतीय शृंखला के उत्तरी भाग को हिमाद्रि या आन्तरिक हिमालय कहा जाता है। इसकी औसत ऊँचाई 6,000 मीटर है। दूसरे शब्दों में

हिमालय विश्व की सर्वाधिक ऊँची पर्वत-शृंखला है। माउंट एवरेस्ट, इस पर्वत-श्रेणी की सबसे ऊँची चोटी है, जिसकी ऊँचाई 8,848 मीटर है। यह विश्व की भी सर्वाधिक ऊँची पर्वत-चोटी है। हिमाद्रि अर्थात् आन्तरिक हिमालय का अधिकतर हिस्सा बर्फ से ढँका रहता है। हिमाद्रि के दक्षिणी भाग को हिमाचल या निम्न हिमालय कहा जाता है। इसकी ऊँचाई 3,700 मी. से लेकर 4,500 मी. के बीच तथा चौड़ाई 50 कि.मी. है। इसी क्षेत्र में कश्मीर की अनुपम घाटी तथा हिमाचल के काँगड़ा एवं कुल्लू की घाटियाँ स्थित हैं। कवि जयशंकर प्रसाद ने इन पंक्तियों के माध्यम से इसी हिमालय की ऊँची चोटी का उल्लेख करते हुए भारत भूमि के वीर सुपुत्रों का देश को स्वतंत्र कराने के लिए आह्वान किया था :

"हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती।"

माना जाता है कि हिमालय पर्वत-शृंखला की उत्पत्ति प्राचीनकाल के टैथिस सागर में हुई थी। इस सागर में सन्निहित तलछट भूगर्भीय हलचलों के फलस्वरूप धीरे-धीरे ऊपर उठ चले, जिससे विश्व के इस विशालतम पर्वत की उत्पत्ति प्रारम्भ हुई। इसके निर्माण की प्रक्रिया दीर्घ काल तक चलती रही। वैज्ञानिकों के अनुसार, इसको वर्तमान स्वरूप तक पहुँचने में लगभग सात करोड़ वर्ष लगे।

हिमालय हमारे लिए आराध्य-स्वरूप है। यह उत्तर में खड़े हमारे प्रमुख प्रहरी का कार्य करता है तो वहीं यह भारत की अधिकांश नदियों का स्रोत है। इन नदियों से निर्मित घाटियाँ ऋषि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होती है। गंगा नदी एवं इसका बहाव क्षेत्र इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। हिमालय से निसृत होकर आनेवाली नदियों में इंडस तथा ब्रह्मपुत्र सबसे बड़ी हैं। इंडस नदी की पाँच उपशाखाएँ हैं, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास और सतलज। हिमालय पर्वत-शृंखला में पन्द्रह हजार से अधिक ग्लेशियर हैं, जो बारह हजार वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं। पूरी हिमालय पर्वत-शृंखला लगभग पाँच लाख वर्ग किलोमीटर में फैली हुई है ।

कश्मीर हिमालय की वृहत्तम घाटी है। कश्मीर घाटी अपनी दिव्य छटा और शोभाश्री के लिए विश्वविख्यात तो है ही, साथ ही विश्वविख्यात केसर, सेब, नाशपाती, बादाम, अखरोट, खूबानी, आड़ू, गिलास (चेरी) आदि फल हिमालय के आँचल में बसी धरती का स्वर्ग कहलाने वाली कश्मीर घाटी में ही पैदा होते हैं। धार्मिक दृष्टि से देखें तो प्रसिद्ध त्रिक/शैव दर्शन का आविर्भाव भी हिमालय के इसी अंचल में हुआ बताया जाता है। और तो और कश्मीर-शैव-दर्शन के प्रतिपादक शैव-आचार्य अभिनवगुप्त भी यहीं पर अवतरित हुए थे। माना तो यह भी जाता है कि बौद्ध-दर्शन के विश्वविख्यात दार्शनिक नागार्जुन ने भी स्वाध्याय के लिए इसी पुण्यभूमि को चुना था। कल्हण, बिल्हण, 'काव्यप्रकाश' के प्रणेता मम्मटाचार्य, 'ध्वन्यालोक' के रचियता आनंदवर्धन आदि संस्कृत के कवि और काव्यशास्त्री भी इसी पावन-धरती की देन हैं।

हिमालय-क्षेत्र का प्राकृतिक सौंदर्य भी अन्यतम है। ऊँचे-ऊँचे हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, कल-कल रव करती नदियाँ, झरनें, स्फटिक शिलाएँ, मनोहर ढलानों पर बने क्यारीनुमा खेत, हरे-घने वन आदि इस महापर्वत के

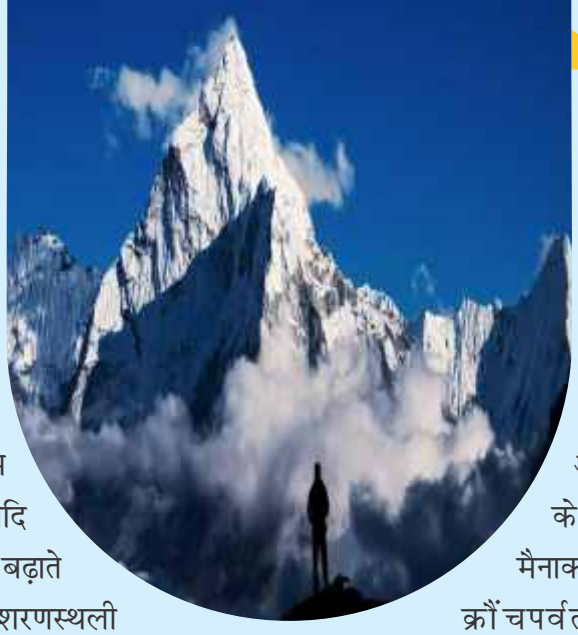

शोभालंकार हैं। दूसरे शब्दों में हिमालय धरती की समग्र शोभा का अनुपम कोषागार है, जो सदैव अपनी प्राकृतिक सुषमा से मंडित रहता है। प्राकृतिक वैभव यहाँ बिखरा पड़ा है। वन-संपदा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। देवदार, चीड़ आदि के ऊँचे-ऊँचे पेड़ यहाँ की शोभा बढ़ाते हैं। ये पेड़ जंगली जीव-जंतुओं की शरणस्थली भी हैं। कितने ही जानवर यहाँ निवास करते हैं। भालू, रीछ, हाथी, बंदर, याक, जेबरा, गैंडा, चीता, हिरन सब यहाँ स्वयं को सुरक्षित अनुभव करते हैं। उधर पेड़ों पर पक्षियों का कलरव सुनाई देता है तो इधर छोटी-छोटी नदियाँ, ऊँचे पहाड़, गहरी खाइयाँ, पेड़, पशु, पक्षी आदि मिलकर अद्‌भुत प्राकृतिक दृश्य उपस्थित करते हैं।

हिमालय का आर्थिक और लोकोपयोगी महत्व भी कम नहीं है। इसके कई क्षेत्रों में जलाशयों का निर्माण कर उनका उपयोग सिंचाई एवं जल-विद्युत उत्पादन के लिए किया जाता है। इसके अलावा हिमालय में कई प्रकार की वनस्पतियाँ तथा जीव-जन्तु पाए जाते हैं। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों के वनों से हमें ईंधन, चारा, कीमती लकड़ियाँ एवं विभिन्न प्रकार की औषधियाँ प्राप्त होती हैं। इतना ही नहीं हिमालय हम भारतवासियों को अडिग होकर निरन्तर अपने कर्म-पथ पर चलते रहने की प्रेरणा भी देता है।

कविवर सोहनलाल द्विवेदी के शब्दों में-

"खड़ा हिमालय बता रहा है
डरो न आँधी पानी में।
खड़े रहो तुम अविचल होकर
सब संकट तूफ़ानी में।

हिमालय पर्वत का सांस्कृतिक-धार्मिक महत्व प्राचीन काल से चला आ रहा है। ऐसी मान्यता है के देवों के देव महादेव का निवास हिमालय पर्वत में ही है। उमा (पार्वती) का भी यह निवास माना जाता है। इन विशाल पर्वतों के बीच बहुत सारे धार्मिक स्थल बने हुए हैं : जैसे बदरीनाथ, केदारनाथ, अमरनाथ, कैलाश-मानसरोवर और हेमकुंड आदि। यहाँ हिमालय के प्रमुख पर्वत-शिखर हैं : कैलास, मैनाक, गन्धमादन, इन्द्रकील, सुमेरू, क्रौंचपर्वत, एवरेस्ट (गौरी-शंकर), काराकोरम आदि। ये पर्वत अपनी विशालता और विराटता के कारण विदेशी आक्रमणकारियों के लिए अलंघ्य हैं। शैलराज हिमालय का सबसे प्रमुख पर्वत है कैलास। यह पर्वत समुद्र तल से 23,000 फुट ऊँचाई पर स्थित सदा हिम से आच्छादित एक धवलिम शिखर है यह। पुराणों में कैलास पर्वत को विशेष महत्व दिया गया है। कैलास पर्वत को देवाधिदेव महादेव का वास स्थान भी बताया गया है। भारतीयों का विश्वास है कि कैलास पर्वत के उत्तर भाग की ओर स्वर्णमय मेरु पर्वत स्थित है। हिमगिरि के स्वर्णिम वर्ण के कारण ये पर्वत हेमगिरि भी कहलाता है। हिमालय का यह श्रेष्ठ पर्वत कैलास अपनी अनन्त वैभव एवं संपदा की दृष्टि से भी अद्वितीय है। कैलास पर्वत पर विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई कुबेर की नगरी है अलकापुरी। हिमालय के इस प्रमुख पर्वत का उल्लेख कालिदास के मेघदूत में मिलता है।

महाभारत के अनुसार पांडवों ने कैलास की यात्रा की थी। सौगन्धिक पुष्प लाने के लिए भीम कैलास के पास कुबेर के पुष्पोद्यान में पहुँचे थे। कैलास पर्वत पर कुबेर के निवास स्थान के पास यक्ष, राक्षस, किन्नर एवं गन्धर्व रहते थे। ऐसा विश्वास किया जाता है कि हनुमान श्रीराम के ध्यान में कैलास पर्वत पर वास करते हैं। हिमालय पर्वत से ही रामभक्त हनुमान मूर्छित लक्ष्मण के लिए संजीवनी बूटी लेकर आए थे। इस रोचक प्रसंग पर यहाँ प्रकाश डालना अनुचित न होगा : "हनुमानजी द्वारा पर्वत उठाकर ले जाने का प्रसंग वाल्मीकि रामायण के युद्ध कांड में मिलता है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार रावण के पुत्र मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र चलाकर श्रीराम व लक्ष्मण सहित समूची वानर सेना को घायल कर दिया। अत्यधिक घायल होने के कारण जब श्रीराम व लक्ष्मण बेहोश हो गए तो मेघनाद प्रसन्न होकर वहाँ से चला गया। उस ब्रह्मास्त्र ने दिन के चार भाग व्यतीत होते-होते 67 करोड़ वानरों को घायल कर दिया था। हनुमानजी, विभीषण आदि कुछ अन्य वीर ही उस ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से बच पाए थे। जब हनुमानजी घायल जांबवान के पास पहुँचे तो उन्होंने कहा इस समय केवल तुम ही श्रीराम-लक्ष्मण और वानर सेना की रक्षा कर सकते हो। तुम शीघ्र ही हिमालय पर्वत पर जाओ और वहाँ से औषधियाँ लेकर आओ, जिससे कि श्रीराम-लक्ष्मण व वानर सेना पुनः स्वस्थ हो जाएँ। जांबवान ने हनुमानजी से कहा कि-हिमालय पहुँचकर तुम्हें ऋषभ तथा कैलाश पर्वत दिखाई देंगे। उन दोनों के बीच में औषधियों का एक पर्वत है, जो बहुत चमकीला है। वहाँ तुम्हें चार औषधियाँ दिखाई देंगी, जिससे सभी दिशाएँ प्रकाशित रहती हैं। उनके नाम मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरणी और संधानी है। हनुमान तुम तुरंत उन औषधियों को लेकर आओ, जिससे कि श्रीराम-लक्ष्मण व वानर सेना पुनः स्वस्थ हो जाएँ। जांबवान की बात सुनकर हनुमानजी तुरंत आकाश मार्ग से औषधियाँ लेने उड़ चले। कुछ ही समय में हनुमानजी हिमालय पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने अनेक ऋषियों के आश्रम देखे। हिमालय पहुँचकर हनुमानजी ने कैलाश तथा ऋषभ पर्वत के दर्शन भी किए। इसके बाद उनकी दृष्टि उस पर्वत पर पड़ी, जिस पर अनेक औषधियाँ चमक रही थीं। हनुमानजी उस पर्वत पर चढ़ गए और औषधियों की खोज करने लगे। उस पर्वत पर निवास करने वाली संपूर्ण महाऔषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेने आया है, तत्काल अदृश्य हो गईं। यह देखकर हनुमानजी बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने वह पूरा पर्वत ही उखाड़ लिया, जिस पर औषधियाँ थीं।"

कुछ ही समय में हनुमान उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ श्रीराम-लक्ष्मण व वानर सेना बेहोश थी। हनुमानजी को देखकर श्रीराम की सेना में पुनः उत्साह का संचार हो गया। इसके बाद उन औषधियों की सुगंध से श्रीराम-लक्ष्मण व घायल वानर सेना पुनः स्वस्थ हो गई। उनके शरीर से बाण निकल गए और घाव भी भर गए। इसके बाद हनुमानजी उस पर्वत को वापस लेकर गए। तुलसी कृत 'रामचरितमानस' में इस प्रसंग को दूसरे रूप में वर्णित किया गया है : गोस्वामी तुलसीदास द्वारा चरित श्रीरामचरितमानस के अनुसार रावण के पुत्र मेघनाद व लक्ष्मण के बीच जब भयंकर युद्ध हो रहा था, उस समय मेघनाद ने वीरघातिनी शक्ति चलाकर लक्ष्मण को बेहोश कर दिया। हनुमानजी उसी अवस्था में लक्ष्मण को लेकर श्रीराम के पास आए। लक्ष्मण को इस अवस्था में देखकर श्रीराम बहुत दुःखी हुए। तब जांबवान ने हनुमानजी से कहा कि लंका में सुषेण वैद्य रहता है, तुम उसे यहाँ ले आओ। हनुमानजी ने ऐसा ही किया। सुषेण वैद्य ने हनुमानजी को उस पर्वत और औषधि का नाम बताया और हनुमानजी से उसे लाने के लिए कहा, जिससे कि लक्ष्मण पुनः स्वस्थ हो जाएँ। हनुमानजी तुरंत उस औषधि को लाने चल पड़े। जब रावण को यह बात पता चली तो उसने हनुमानजी को रोकने के लिए कालनेमि दैत्य को भेजा कालनेमि दैत्य ने रूप बदलकर हनुमानजी को रोकने का प्रयास किया, लेकिन हनुमानजी उसे पहचान गए और उसका वध कर दिया। इसके बाद हनुमानजी तुरंत औषधि वाले पर्वत पर पहुँच गए, लेकिन औषधि पहचान न पाने के कारण उन्होंने पूरा पर्वत ही उठा लिया और आकाश मार्ग से उड़ चले। अयोध्या के ऊपर से गुजरते समय भरत को लगा कि

कोई राक्षस पहाड़ उठा कर ले जा रहा है। यह सोचकर उन्होंने हनुमानजी पर बाण चला दिया।

हनुमानजी श्रीराम का नाम लेते हुए नीचे आ गिरे। हनुमानजी के मुख से पूरी बात जानकर भरत को बहुत दु:ख हुआ। इसके बाद हनुमानजी पुन: श्रीराम के पास आने के लिए उड़ चले। कुछ ही देर में हनुमान श्रीराम के पास आ गए। उन्हें देखते ही वानरों में हर्ष छा गया। सुषेण वैद्य ने औषधि पहचान कर तुरंत लक्ष्मण का उपचार किया, जिससे वे पुन: स्वस्थ हो गए।

जहाँ वाल्मीकि रचित रामायण के अनुसार हनुमान जी पर्वत को पुन: यथास्थान रख आए थे वही तुलसीदास रचित रामचरितमानस के अनुसार हनुमान जी पर्वत को वापस नहीं रख कर आए थे, उन्होंने उस पर्वत को वही लंका में ही छोड़ दिया था। श्रीलंका के सुदूर इलाके में श्रीपद नाम का एक पहाड़ है। मान्यता है कि यह वही पर्वत है, जिसे हनुमानजी संजीवनी बूटी के लिए उठाकर लंका ले गए थे। इस पर्वत को एडम्स पीक भी कहते हैं। यह पर्वत लगभग 2200 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। श्रीलंकाई लोग इसे रहुमाशाला कांडा कहते हैं। इस पहाड़ पर एक मंदिर भी बना है।

हिमालय भारत के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। यदि हिमालय न हो तो भारत के अधिकांश उत्तरी भाग में मरुभूमि होती। यह हिमालय ही है जो पूर्वी तथा दक्षिणी आर्द्र मानसूनी हवाओं को रोककर भारत के उत्तरी राज्यों में वर्षा कराता है। इससे इन राज्यों में भरपूर फसल होती है। इन राज्यों की सभी नदियाँ वर्षा ऋतु में जलप्लावित रहती हैं। वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद भी गंगा, यमुना जैसी बड़ी नदियों में जल रहता है। इसमें भी हिमालय का योगदान है। हिमालय की ऊँची चोटियों की बर्फ़ सूर्य की गर्मी से पिघलकर इन नदियों में जल के रूप में आती रहती है। इस तरह हिमालय सूखे होठों की प्यास शांत करने वाला साक्षात देवता बन जाता है।

हिमालय हमारी शान है। इसकी शान में मानव खलल डाल रहा है। वह यहाँ के वनों को नष्ट कर रहा है। वह उद्योगों के फैलाव से यहाँ की नदियों तथा अन्य प्राकृतिक स्थलों को गंदा कर रहा है। अवैध रूप से शिकार हो रहे हैं जो जंगली जीवों के जीवन के लिए घातक हैं। ग्रीन हाऊस गैसों के निरंतर प्रसार से तापमान में वृद्धि हो रही है जिसके प्रभाव से यहाँ की बर्फ़ पिघल रही है। इन सबके बारे में हमें जागरूक होना पड़ेगा। लोगों को हिमालय की रक्षा के लिए उपयुक्त कदम उठाने होंगे।

कुल मिलाकर यह विशाल नगपति भौगोलिक दृष्टि से असंख्य पर्वतों, नदियों, वन-संपदा तथा खनिजों को अपने में समेटकर हमारे सम्मुख अनंतकाल से खड़ा है। देश-विदेश से तीर्थ यात्री एवं पर्यटक इसके दर्शन के लिए आते हैं। हिमालय के रमणीय स्थान, यहाँ मनाए जाने वाले पर्व एवं त्योहार आदि रंग-बिरंगे दृश्य अवश्य ही इन्हें खींच लाते हैं। हिमालय असंख्य तीर्थों को धारण कर एक ओर धार्मिक महत्व का प्रतिपादन करता है तो दूसरी ओर तपस्वियों की साधना-भूमि होकर आध्यात्मिक महत्व पर बल देता है। इस पर्वतराज हिमालय का आर्थिक-लोकोपयोगी महत्व भी कम नहीं है। हमारी सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक संपदा का कोषागार है हिमालय।

अंत में, भारत के निर्भीक प्रहरी 'मेरे नगपति, मेरे विशाल!' (हिमालय) ने राष्ट्र-रक्षक के रूप में हमारी सीमा को सदियों से सुरक्षित रखा है। हिमालय हमारी सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक ही नहीं, हमारी भौगोलिक, प्राकृतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक और राष्ट्रीय अस्मिता का अग्रदूत भी है।

❖

2/537, अरावली विहार, अलवर (राजस्थान) 301001
मोबाइल : 9414216124
ई-मेल : skraina123@gmail.com

ब्रह्मपुत्र में विलीन होता माजुली

— शालिनी मिश्रा

उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से ब्रह्मपुत्र नदी द्वारा बने विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप माजुली की लोक संस्कृति को दर्शाया गया है। लोक संस्कृति किसी भी देश अथवा समुदाय की पहचान है अतः लोक संस्कृति की रक्षा मानवता की रक्षा के समतुल्य ही है। पिछले कुछ दशकों में ब्रह्मपुत्र में आई भयंकर बाढ़ एवं भटकाव से माजुली का क्षेत्रफल बहुत तेजी से घटा है, माना जा रहा है कि आगामी तीन चार दशकों में यह द्वीप पूर्णतया नदी द्वारा विलीन कर लिया जाएगा। जो कि यहाँ रह रहे जन-जीवन एवं संस्कृति के लिए भारी संकट का विषय है अतः समय रहते इसका संरक्षण सरकार द्वारा विचारणीय है।

'लोक' शब्द का अर्थ है 'देखने वाला' अर्थात 'सर्वसाधारण जनता' एवं 'संस्कृत शब्द संस्कार से बना है जिसका अर्थ है परिष्कार करना'[1] अर्थात सर्व साधारण जनता की जीवन जीने की वह विधि जिससे वह स्वयं को निरंतर परिष्कृत करता रहता है, लोक संस्कृति है। इसके अंतर्गत शिष्ट एवं जन संस्कृति दोनों का ही सम्मिश्रण है, इसमें रीति-रिवाज़, पर्व-त्योहार, खान-पान, वेशभूषा, ललित कलाएँ एवं लोक-विश्वास सम्मिलित हैं।

माजुली विश्व का सबसे बड़ा नदी द्वीप है।[2] सन् 1950 से पहले जब 'ब्रह्मपुत्र' उपन्यास सत्यार्थी जी द्वारा लिखा जा रहा था। उस समय माजुली 1250 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल में फैला हुआ था। जो निरंतर ब्रह्मपुत्र में समा रहा है एवं वर्तमान में केवल 450 वर्ग किलोमीटर ही बचा है, जो कि अनुमानतः अगले 30, 40 वर्षों में पूर्णतः ख़त्म हो सकता है। आज के समय में माजुली पर कुछ अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें भी लिखी गई हैं, जो माजुली द्वीप की संस्कृति एवं वहाँ के जीवन की समस्याओं को दिखाती है। जिनमें 'माजुली' (लेखक-डॉ. संजीब कुमार बोरककोती) और 'द माजुली आइलैंड' (लेखक-डी नाथ) प्रमुख हैं।

माजुली की संस्कृति इतनी रोचक एवं महत्वपूर्ण है कि सत्यार्थी जी अपने उपन्यास में कहते हैं-"हाँ एक बात अवश्य है कि पहले मैं केवल एक नदी की जीवनी लिखना चाहता था; अब मेरी समझ में यह बात आ गई कि नदी के किनारे बसे हुए लोगों का संघर्ष भी नदी की जीवनी से अलग नहीं।[3]

माजुली में आज भी असमिया, मीरी, नेपाली एवं मुस्लिम जनजातियाँ निवास करती हैं। जिनका मुख्य व्यवसाय खेती करना एवं मछली पकड़ना है। उपन्यास 'ब्रह्मपुत्र' में सत्यार्थी जी ब्रह्मपुत्र का उद्गम स्थान तिब्बत बताते हैं । साथ ही यह भी कि इसे वहाँ 'शान पो' कहा जाता है अर्थात बड़ी नदी।[4]

भारत की नदियों का वर्णन करते हुए व्यास जी ने उन्हें 'विश्वस्य मातरः' कहा है। सचमुच नदियाँ लोकमाता ही

होती हैं लेकिन सब नदियों को हम माता नहीं कहते। विश्वामित्र ने तमसा नदी को अपनी बहन कहा है। ब्रह्मपुत्र ना बहन है ना माता। वह तो सृजन और संहार की लीला में मस्त एक देवता है।[5]

"मानसरोवर से सागर तक ब्रह्मपुत्र की पूरी लम्बाई 1800 मील है। इसका जन्म स्थान तिब्बत में 31°, 31' उत्तर और 82° पूर्व है। यह स्थान मानसरोवर के उत्तर में है (यहाँ से वह छोर दूर नहीं जहाँ सतलज और सिंध पहली धारा का रूप धारण करते हैं। यह तिब्बत में 'सान-पो' के रूप में चलता है। असम में प्रवेश करने से पहले 'डि-हाँग' बनता है।"[6]

माजुली कला एवं संस्कृति की दृष्टि से अन्य सभी नदी द्वीपों में श्रेष्ठ है। माजुली में वैशाख माह में मनाए जाने वाले 'बोहाग बिहू' के त्योहार का उपन्यास में विस्तृत वर्णन है। 'बिहू' माजुली का ही नहीं अपितु पूरे आसाम का सबसे बड़ा त्यौहार है—

"वैशाख के लिए असमिया शब्द था बोहाग; वैशाख का पहला दिन 'मानु बिहू' कहलाता था-मानु अर्थात मनुष्य। उस दिन घर के प्राणी बिहू मनाने के लिए तैयार होते थे। चैत्र के आरंभ से ही घरों और खेतों में बिहू पक्षी का स्वर गूँजने लगता था। अंतिम तिथि से वैशाख की षष्ठी तक बोहाग बिहू का त्योहार मनाया जाता था। चैत्र का अंतिम दिन दिसांगमुख में, 'गोरु बिहू' के नाम से प्रसिद्ध था। क्योंकि इस दिन पशुओं को ब्रह्मपुत्र में मल-मल कर नहलाया जाता था। भोर से पहले ही उठकर घर की स्त्रियाँ हल्दी और दाल की पीठी रगड़ कर तैयार करती थी, फिर सरसों का तेल और पीठी मल-मल कर पशुओं को ब्रह्मपुत्र में स्नान कराने के लिए निकाला जाता था। जब पशुओं का स्नान समाप्त हो जाता तो उस पर बाँस की पोरी में भरे हुए लौकी और बैंगन के छोटे-छोटे टुकड़े फेंक कर उनकी पूजा की जाती थी। और पुराने गीत के शब्दों में कहा जाता था। यह ले लौकी, यह ले बैंगन, प्रतिवर्ष फलो-फूलो। तेरी माँ कद में छोटी है और पिता भी; भगवान करे तुम्हारा डीलडौल बड़ा निकले। गोहाली की सफाई की जाती थी। धूप जलाकर गोहाली को सुगंधित किया जाता था। पशुओं को नई-नई रस्सियों से बाँधा जाता। त्यौहार के उपलक्ष में विशेष रूप से बनाई गई मिठाई का एक भाग पशुओं को भी मिलता था"[7]

बोहाग बिहू में 'लाओ पानी' (चावल का नशीला पेय पदार्थ) और लोकगीतों का अत्यधिक महत्व है। युवक-युवतियाँ अलग-अलग समूह में बैठकर वाद्य यंत्रों के साथ लोकगीत गाते हैं एवं नृत्य करते हैं।

"बोहाग बिहू तो वस्तुत: नए धान का त्यौहार था प्रत्येक घर का भराल नए धान से भरपूर था। प्रत्येक प्राणी नूतन उल्लास का प्रतीक था।

युवकों ने एक गान आरंभ किया।

बिहू मारि थाकिवार मने ओई लगरी

बिहू मारि थाकिवार मन

बिहू मारि थाकोते, पुलुवाई निनिवा

भरिबो लागिबो धन

(बिहू गाती चली जाऊँ, यही जी चाहता है, प्रियतम बिहू गाते रहने को जी चाहता है। बिहू गाते-गाते मुझे भगा कर न ले जाना धन भरना पड़ेगा।)

बिहू के उल्लास में एक से बढ़कर एक गान गाए जा रहे थे।"[8]

प्रतिवर्ष ब्रह्मपुत्र माजुली की कुछ ज़मीन लील लेता है इसी दु:ख को माजुली में ईंधन लेने जाने वाले लोग एक लोकगीत के माध्यम से व्यक्त करते हैं जिसमें असम की सबसे छोटी एवं मान्य भेंट (पान के पत्ते पर सुपारी) भी न चुका पाने वाले वर्ग का वर्णन है यथा—

ब्रह्मपुत्र कानो ते, बरहमथूरी जूपीय

आमी खरा लोरा जाइय

ऊटूवाई नीनीवा, ब्रह्मपुत्र देवता,

तामोल दी मानोता नाई।

(ब्रह्मपुत्र के किनारे है बरहमथूरी गाछ। जहाँ हम ईंधन लेने जाते हैं। इसे लील मत लेना ब्रह्मपुत्र देवता! हमारी इतनी भी क्षमता नहीं कि हरी सुपारी से ही तुम्हारा अर्चन कर सकें।)[9]

लोक विश्वास एवं परंपराएँ किसी भी संस्कृति को समृद्ध करती हैं एवं एक लम्बे समय तक उसे बनाए रखती हैं। उपन्यास में सत्यार्थी जी ने माजुली में रह रही जनजातियों की अनेक परंपराओं का उल्लेख किया है। मीरी जनजाति की परंपरा दृष्टव्य है—"मीरी लोगों की एक परंपरा अतुल को विशेष रूप से प्रिय थी। यह परंपरा फाख्ता के संबंध में थी जब वह फुर से उड़कर छत पर आ बैठती थी तो मीरी लोग सदा यह अनुमान लगाते कि उनके पुरखों की आत्माओं को कष्ट हो रहा है। फाख्ताओं को चावल खिलाया जाता था ताकि पुरखों का कष्ट दूर हो जाए।"[10]

माजुली पर रहने वाली यह जनजाति इंद्र को खुश करने के लिए वर्ष में दो बार "दबूर पूजा" का आयोजन करती है जिसमें आज भी पशु बलि का प्रावधान है।[11] पूजा के मध्य में गाँव आगमन पर वह व्यक्ति 'एगुम' की सजा का पात्र होता है, उपन्यास में एक किशोरवय बालक मखना की मृत्यु इसी परिपेक्ष्य में हो जाती है क्योंकि असमिया जनजाति का वह बालक बिना अपने घर पर बताए उत्सुकतावश दबूर पूजा देखने मीरी गाँव में चला जाता है और सजा नियमानुसार उसे एगुम में सूअरों के बीच डाल दिया जाता है, यथा—

"मीरी बस्ती के एक दुर्गन्धपूर्ण कोने में फूल से भी कोमल मखना पड़ा था, जहाँ साधन मीरी उसके हाथपैर बाँधकर उसे डाल गया था...बड़े सूअर, छोटे सूअर, सुअरियाँ और उनके बच्चे। यह सूअरीयों देख रही थी, जैसे कभी-कभी मखना की माँ देखा करती थी।...वह माँ को आवाज देना चाहता था।

पर यहाँ माँ कहाँ थी।

फिर एक बाँबी से काला नाग बाहर निकला। अंधकार में काला नाग एक रेखा प्रतीत हो रहा था; मखना ने उस हिलती-डुलती रेखा को देखा। साँपों के संबंध में सुनी हुई अनेक कहानियाँ एक साथ उसके मस्तिष्क में घूम गई, जैसे दुनिया भर के साँपों का विष इस काले नाग के विष के सामने हेय हो; जैसे साक्षात् मृत्यु ही उसकी तरफ बढ़ी आ रही हो; जैसे उसके जीवन की बाती अब कुछ ही क्षणों में

बुझ जाएगी; फिर यह बाती कभी नहीं जलेगी, चाहे कोई इस दीपक में मनों तेल क्यूँ न डाल दे!" अंततः मखना की मृत्यु हो जाती है।[12]

"पहली पूजा चैत्र में की जाती थी-वर्षा ऋतु से पहले; दूसरी पूजा अश्विन में की जाती थी, जब वर्षा ऋतु अपने उत्कर्ष पर होती थी।

आज मीरी बस्ती में दबूर पूजा का त्यौहार मनाया जा रहा था, पूजा के लिए मीरी भाषा का शब्द था "ऊई" इसलिए स्वयं मीरी लोग इस त्यौहार को "दबूर ऊई" कहते थे।

सवेरे-सवेरे दबूर पूजा आरंभ होने से पहले बस्ती के प्रवेश द्वार पर कोई चिह्न रख दिया जाता था, जिससे यह पता चल जाए की बस्ती के भीतर दबूर पूजा हो रही है और पूजा शेष होने तक कोई व्यक्ति बस्ती के भीतर प्रवेश करने का साहस न करे। बस्ती के बाहर लकड़ी की तख्ती लगाकर उस पर लिखवा दिया जाता था-"आज हमारे गाँव में दबूर पूजा हो रही है। इसलिए प्रातः काल से लेकर गोधूली तक कोई भी आदमी बस्ती के भीतर प्रवेश न करे। इस विज्ञपित की अवहेलना करते हुए कोई व्यक्ति बस्ती में घुसने का साहस करता, तो उसे एक ही दंड दिया जाता-उसके हाथ पैर बाँधकर उसे 'एगुम' में डाल आते थे, 'एगुम' उस स्थान को कहते थे जहाँ झोपड़ी के मचान के नीचे सूअर बँधे रहते थे। पूजास्थल की परिक्रमा के पश्चात मुर्गे मुर्गियों और सुअरी की बलि दी जाती थी; पूजा करने वाले लोग मिलकर मांस पकाते और इंद्र देवता के नाम पर सह भोज का आनंद लेते। पूजा के पश्चात 'लाओ पानी' का नशा किया जाता।

गाँव की लड़कियाँ मिलकर नाचती थीं और अपने दबूर नृत्य में गाए जाने वाले गीतों में इंद्र देवता को संबोधित करते हुए कहती थीं-"देवता की कृपा बनी रहे। धरती धानवती हो। स्त्रियाँ पुत्रवती हों। गाँव में सुख शान्ति रहे। धान धान से मिले आदमी आदमी से मिले। कोई किसी से शत्रुता न करे। कोई किसी से ईर्ष्या न करे। दबूर देवता का आशीर्वाद सबको एक समान प्राप्त हो।"[13]

"बोहाग बिहू की तरह ही असम में 'काती बिहू' और 'माघ बिहू' भी मनाया जाता है। काती बिहू में लोग घरों और खेतों में दीप जलाते हैं विशेष रूप से भराली (अनाज भरने की जगह) और गोहाली (गाय बैल बाँधने की जगह) में दिए जलाते हैं।

माघ बिहू प्रति वर्ष पूस की अंतिम तिथि को मनाया जाता है। जिसमें बाँस के पाँच डंडे गाड़ कर लकड़ियाँ जलाई जाती हैं। माघ बिहू के उल्लास में लड़कियाँ रात भर आग तापती रहतीं और लड़कों के दंगल देखती रहती।"[14]

माजुली ही नहीं अपितु पूरे असम में ही श्वेत वस्त्र महत्व रखते हैं। विशेषकर कंधों पर डालने वाली सफेद चादर जिसकी किनारी लाल पट्टियों से सुसज्जित रहती है, प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान के लिए अनिवार्य मानी जाती है। ब्रह्मपुत्र उपन्यास में सत्यार्थी जी ने असमिया युवतियों की वेशभूषा का चित्रण किया है यथा—

"जून तारा ने श्वेत 'मेखला' पहन रखी थी। जैसे तहमद बाँधा जाता है। उससे थोड़ा-सा ऊपर खींचकर युवतियाँ मेखला बाँधती हैं। श्वेत मेखला के साथ श्वेत अंगिया ही पहनती थी जूनतारा। श्वेत अंगिया और मेखला से मेल खाती हुई श्वेत चादर कन्धों पर। जूनतारा का वेश सब सखियों में विशिष्ट था। शेष कन्याओं में किसी-किसी ने तो लाल, नीली और पीली मेखला पहन रखी थी। किसी किसी ने तो आज अंगिया पहनने की आवश्यकता अनुभव न की थी।"[15]

लोक संस्कृति में संस्कारों का विशेष महत्व है। हिंदू धर्म में सोलह संस्कारों के अन्तर्गत विवाह संस्कार का विशेष स्थान है। असमिया जनजाति में विवाह के प्रति उच्च धारणा दृष्टव्य है -

"धर्मानंदी ने साफ साफ कहा 'आरती तो मन ही मन देवकांत का वरण कर चुकी है' बापू बोले-'फिर तुम चिंता छोड़ो समय आने पर देवकांत का विवाह आरती के

साथ होगा।' मैंने पास से कहा-'देवकांत की भी इच्छा होगी तब ना?' 'अरे हाँ हाँ।' बापू ने गंभीर मुद्रा बना कर कहा दिसांगमुख में तो सदा से यही होता आया; वर और कन्या की परस्पर स्वीकृति के बिना कब कोई विवाह संपन्न हुआ?"[16]

वास्तु कला किसी भी संस्कृति में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। माजुली द्वीप में रह रही तीन प्रकार की जन जातिओं के घरों की बनावट पर भी सत्यार्थी जी ने प्रकाश डाला है-"घरों की बनावट तीन प्रकार की थी जिनमें असमिया घर का रूप ही सबसे अधिक सुन्दर था। चारों ओर बागीचा, बीच में तीन चार झोपड़ियाँ निवास के लिए; सामने वाले द्वार से भीतर जाने पर दाईं ओर पशुओं के लिए पृथक गोशाला और बाईं ओर अनाज रखने के लिए पृथक 'बखार'। खाते-पीते असमिया के घर में अपना पोखर भी होता था जिससे घर की आवश्यकता के लिए मछलियाँ मिल जाती थीं; जब बत्तखें तैर रही होती, तब पोखर अति सुंदर प्रतीत होता था। असमिया किसानों के अतिरिक्त नागरिया और मछुए भी अपनी शक्ति के अनुसार इसी प्रकार का घर बनाते थे। जिसमे छोटा मोटा बगीचा अवश्य रहता था।

मीरी नमूने के घर बनाने के लिए पहले छः छः फुट लकड़ी के खम्बे ज़मीन में गाड़ते थे। फिर इन खम्भों पर एक मचान बनाया जाता था। इस प्रकार नमूने के घर के लिए किसी प्रकार के बगीचे अथवा पोखर की कोई आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। घर के भीतर किसी प्रकार की दीवार अथवा ओट खड़ी करना मीरी परंपरा के विरुद्ध था।

तीसरा नमूना नेपालियों के यहाँ मिलता था। झोपड़ी तो ऊँचे मचान पर बनाई जाती थी, पर आवश्यकता अनुसार बीच में दीवारें बनाकर अलग अलग कमरों का रूप दे दिया जाता था। घर के आस-पास पौधे भी लगा लिए जाते थे, और अधिक भूमि होने की अवस्था में छोटी सी पुखरी भी अवश्य बनाई जाती थी।[17]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सत्यार्थी जी का ब्रह्मपुत्र उपन्यास आज 64 वर्षों बाद भी न केवल एक श्रेष्ठ उपन्यास का महत्व रखता है अपितु लोक संस्कृति के रूप में भी चिरकाल तक इसका अमूल्य योगदान रहेगा।

संदर्भ :

1. लोकसंस्कृति की रुपरेखा, कृष्णदेव उपाध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, 2014 पृष्ठ 8,11
2. http://www.guinnessworldrecords.com/world-records/largest-river-island-
3. ब्रह्मपुत्र, देवेन्द्र सत्यार्थी, एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ 206
4. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 14
5. लोक-युग का नदी-पुराण, काका कालेलकर, ब्रह्मपुत्र, देवेन्द्र सत्यार्थी, एशिया प्रकाशन, नई दिल्ली, 1956, पृष्ठ 7
6. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 13
7. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 135,136
8. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 137,138
9. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 449
10. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 68
11. Dabur puja of missing communityby chandon kutum, http://youtu.be/utLfV6fCiKU
12. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 181,182
13. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 172,173,174
14. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 213
15. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 53
16. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 321
17. ब्रह्मपुत्र, पृष्ठ 44, 45

शोधार्थी, कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल
एम.ए.-हिंदी (गोल्ड मेडलिस्ट)
मोबाइल : 8851272739

त्रिपुरा की जमातिया जनजाति की पारंपरिक पूजा-पद्धति

— डॉ. मिलन रानी जमातिया

जमातिया जनजाति में ग्राम-समाज को 'लुकू' कहा जाता है। प्रत्येक लुकू के लिए एक व्यक्ति चुना जाता है, जिसे 'लुकू चकदिरी' कहा जाता है, जो ग्राम में व्यवस्था बनाए रखता है। वर्तमान में इस जनजाति के 333 (तीन सौ तैंतीस) लुकू हैं। पाँच से पंद्रह या उससे अधिक गाँवों को मिलाकर एक और संगठन बनाया जाता है, जिसे 'मयाल' कहा जाता है, प्रत्येक मयाल के लिए भी दो व्यक्तियों का चयन किया जाता है, जिसे 'मयाल पांचाई' कहा जाता है, जिन्हें मयाल को सुचारु रूप से चलाने का दायित्व सौंपा जाता है। वर्तमान में जमातिया हदा के अंतर्गत 18 (अठारह) मयाल हैं। पूर्व में विवाह-विच्छेद, नारी समस्याएँ एवं छड़ी दंड से संबंधित निर्णय केवल हदा अकरा ही लेते थे, किन्तु आजकल विवाह-विच्छेद एवं नारी समस्याओं से संबंधित निर्णय लुकू चकदिरी एवं मयाल पांचाई भी लेते हैं, लेकिन छड़ी दंड की सजा केवल हदा अकरा ही सुना सकते हैं।

भारत के विभिन्न राज्यों में त्रिपुरा प्रदेश अपनी भौगोलिक स्थिति एवं सांस्कृतिक विरासत के कारण सबसे अलग प्रतीत होता है। यह प्रदेश उत्तर में असम, पश्चिम में बंगलादेश के कुमिल्ला और नोवाखाली जिले, दक्षिण में चितागाँव और नोवाखाली का आधा भाग एवं मिजोरम की पहाड़ियों से घिरा हुआ है। यहाँ कुल 19 जनजातियाँ पाई जाती हैं, यथा-त्रिपुरी[1], जमातिया, रियांग, मुरासिंह, रुपिनी, कलई, उचई, गारो, चाकमा, खासी, भूटिया एवं नोवातिया आदि। इन जनजातियों में अपनी विशिष्ट समाज-व्यवस्था, रीति-रिवाज़ एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण 'जमातिया जनजाति' की ख़ास पहचान है। जनसंख्या की दृष्टि से इसका त्रिपुरी और रियांग के बाद तीसरा स्थान है। यह जनजाति मुख्य रूप से त्रिपुरा के उदयपुर, अमरपुर, सोनामुरा, बिलोनिया, तेलियामुरा, साब्रूम, खुवाई, जम्पुई जला, सदर क्षेत्रों में निवास करती है। यह जनजाति आज भी अपने धर्म, परम्परा, नियम और कानून के प्रति बहुत सजग है। इनकी बोली को 'जमातिया कॉक' कहा जाता है जो कि कॉकबरक भाषा के अंतर्गत आती है। यह 'तिब्बती-चीनी' भाषा-परिवार से विकसित बोड़ो उपशाखा की भाषा है।

'जमातिया' शब्द की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। 'श्री राजमाला'[2] के लेखक कालीप्रसन्न सेन के अनुसार 'राजतंत्र काल में त्रिपुरा राज्य के पहाड़ी क्षेत्र में निवास करने वाली जनजातियों में जमातिया जनजाति वीर योद्धा के रूप में प्रसिद्ध थी।'[3] सोमेंद्र चंद्र देबबर्मा ने अपनी पुस्तक 'द सेंसेस बिबरणी' में बताया है कि 'जमात' शब्द से 'जमातिया' की उत्पत्ति हुई है। 'जमात' दल या लोक समूह का बोधक है। पूर्व में ये जनजाति राजाओं के सैनिक विभाग में कार्य करती थी, उनके द्वारा जिस सैनिक संगठन का निर्माण हुआ, उसे ही जमात कहा गया। कालांतर में यह सैनिक वर्ग ही 'जमातिया' कहलाया।[4] कुछ विद्वान 'जमातिया' शब्द की उत्पत्ति को 'गॉरिया'[5] पूजा से भी जोड़कर देखते हैं। श्री ललित मोहन जमातिया 'जमातिया' को 'जमा' और 'तोइया' दो शब्दों के मेल से बना मानते हैं। जिसका अर्थ है-जमा यानि टैक्स और तोइया यानि जो किसी भी प्रकार के बोझ को वहन न करता हो।[6]

श्री बीरेंद्र किशोर जमातिया के अनुसार जमातिया 'जमासिया' शब्द से बना है, जिसका अर्थ है-जो टैक्स या बोझ के विषय से अवगत नहीं है।[7]

ग़ौरतलब है कि इन मान्यताओं की कोई ऐतिहासिक

प्रामाणिकता नहीं मिलती है, क्योंकि राजतंत्र काल में जमातिया जनजाति को भी अन्य जनजातियों के समान टैक्स देना पड़ता था। उदाहरण के लिए 1872 की ब्रिटिश प्रशानिक रिपोर्ट में कहा गया है कि जमातिया एवं त्रिपुरी जनजाति (देबबर्मा) के परिवार को पाँच से सात रुपए एवं अन्य जनजातियों जैसे रियांग, नोवातिया आदि को आठ से बारह रुपए राजाओं को प्रत्येक वर्ष टैक्स के रूप में देना पड़ता था। जमातिया जनजाति के सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन या संरचना पर ध्यान दें तो 'जमात' से 'जमातिया' शब्द की उत्पत्ति संभव मानी जा सकती है। प्राचीन काल से ही इस जनजाति के लोग एक ही सामाजिक संगठन के अंतर्गत रहकर मुख्य रूप से एक ही प्राकृतिक देवता 'बाबा गाँरिया' की सामूहिक रूप से पूजा करते आ रहे हैं। समाज या समुदाय से बाहर जाने या रहने की कल्पना ये प्रायः नहीं करते। किसी कारण से अगर समाज से दूर रहना पड़े तब भी यह जनजाति अपने समाज के नियमों का पालन करती है, इन्हीं कारणों से इन्हें 'जमातिया' कहा गया होगा, जिन्होंने राजतंत्र काल में राजा के सैन्य विभाग में योग देकर अपनी ईमानदारी एवं वीरता सिद्ध की।

असल में, अन्य बहुत सारे जनजाति समाजों की तरह जमातिया जनजाति की भी अपनी विशिष्ट जीवन-शैली, परम्पराएँ, जीवन मूल्य एवं रीति-रिवाज़ हैं। जमातिया जनजाति की समाज-व्यवस्था को संचालित करने के लिए एक जाति-पंचायत होती है, इसे 'हदा' कहते हैं। जमातिया जनजाति में जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे रिवाज़, परंपराएँ और नियम 'हदा' के अनुसार ही पालन किए जाते हैं। जमातिया-हदा का संगठन निम्न प्रकार होता है-

समाज-व्यवस्था

↓

हदा अकरा/अक्रा[8]

↓

मयाल पांचाई

↓

लुकू चकदिरी

इस हदा के दो प्रमुख होते हैं, जो कम से कम तीन और अधिक से अधिक पाँच साल के लिए बाकायदा एक लोकतांत्रिक-प्रक्रिया द्वारा चुने जाते हैं, उन्हें अकरा/अक्रा कहते हैं। इनमें एक अकरा खामा अंचल के लिए चुना जाता है, जिसके अंतर्गत उदयपुर का पश्चिमांचल, सोनामुड़ा, जम्पुई जला एवं बिलोनिया आदि के क्षेत्र आते हैं और दूसरा अकरा साका अंचल के लिए चुना जाता है, जिसके अंतर्गत उदयपुर का पूर्वांचल, अमरपुर एवं कल्याणपुर/तेलियामुड़ा के क्षेत्र आते हैं। जमातिया जनजाति में दोनों अकरा ही सर्वेसर्वा होते हैं। समाज में किसी भी प्रकार का वाद-विवाद उत्पन्न हो, किसी भी तरह की उलझन हो, अकराओं का निर्णय ही अंतिम होता है। जमातिया समाज में किसी भी प्रकार के सामाजिक अपराध के लिए हदा द्वारा कठोर दंड का (अर्थ-दंड, छड़ी-दंड, समाज से बहिष्कार आदि) प्रावधान है। अकरा के अंतर्गत दो व्यवस्थाएँ आती हैं-समाज-व्यवस्था और पूजापाठ-व्यवस्था। समाज व्यवस्था में अकरा के नीचे पांचाई और चकदिरी आते हैं तो पूजापाठ व्यवस्था में अकरा के नीचे खेरफांग, अचाई, दरिया, मोताई बालनाई, बगला आते हैं। बगला के भी अंतर्गत बगला महन्त, बगला राजा और बगला चकदिरी आते हैं।

जमातिया जनजाति में ग्राम-समाज को 'लुकू' कहा जाता है। प्रत्येक लुकू के लिए एक व्यक्ति चुना जाता है, जिसे 'लुकू चकदिरी' कहा जाता है, जो ग्राम में व्यवस्था बनाए रखता है। वर्तमान में इस जनजाति के 333 (तीन सौ तैंतीस) लुकू हैं। पाँच से पंद्रह या उससे अधिक गाँवों को मिलाकर एक और संगठन बनाया जाता है, जिसे 'मयाल' कहा जाता है, प्रत्येक मयाल के लिए भी दो व्यक्तियों का चयन किया जाता है, जिसे 'मयाल पांचाई' कहा जाता है, जिन्हें मयाल को सुचारु रूप से चलाने का दायित्व सौंपा जाता है। वर्तमान में जमातिया हदा के अंतर्गत 18 (अठारह) मयाल हैं। पूर्व में विवाह-विच्छेद, नारी समस्याएँ एवं छड़ी दंड से संबंधित निर्णय केवल हदा अकरा ही लेते थे, किन्तु आजकल विवाह-विच्छेद एवं नारी समस्याओं से संबंधित निर्णय लुकू चकदिरी एवं मयाल पांचाई भी लेते हैं, लेकिन छड़ी दंड की सजा केवल हदा अकरा ही सुना सकते हैं। हदा अकरा और मयाल पांचाई तीन से पाँच साल के लिए चुने जाते हैं। विशेष परिस्थितियों में यह अवधि बढ़ाई भी जा सकती है। अवधि समाप्त होने पर एक ही व्यक्ति का चयन प्रायः दुबारा नहीं किया जाता है। लुकू चकदिरी भी तीन से पाँच साल के लिए चुना जाता है। इनकी अवधि नहीं बढ़ाई जाती है। हदा अकरा, मयाल पांचाई और लुकू चकदिरी सफल वैवाहिक जीवन वाले दंपत्ति ही चुने जाते हैं, जिनका विवाह चौदह देवता को साक्षी बनाकर हुआ हो। इन पदों के लिए ऐसे व्यक्ति का चयन नहीं किया जाता है, जिन्होंने भागकर या माता-पिता के विरुद्ध जाकर शादी की

हो। यह जनजाति आज भी अपने धर्म, परम्परा, नियम और सामाजिक-कानूनों के प्रति बहुत सजग है।

पूजापाठ-व्यवस्था के आधार पर इस जनजाति के हदा-व्यवस्थापकों के निम्नलिखित प्रकार हैं-

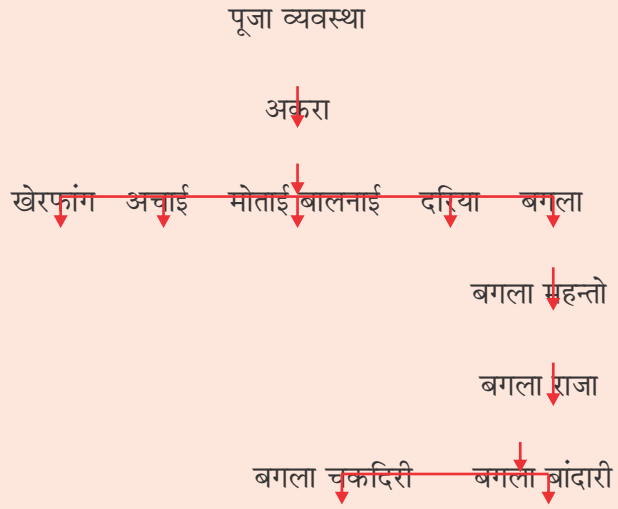

(क) खेरफांग

जिनके घर में बाबा गॉरिया की स्थापना की जाती है। उसे जमातिया समाज में 'खेरफांग' कहा जाता है। इनका कार्य नियमानुसार देवता की सेवा करना है। इस समाज में खेरफांग दो होते हैं, एक 'बिया कोरोई गॉरिया मोताई'[9] के लिए दूसरा बिया गोनांग गॉरिया मोताई'[10] के।

(ख) अचाई (पुजारी)

अचाई दुङदुङखि के वंशज ही बाबा गॉरिया के अचाई रूप में चुने जाते हैं। इनका काम विधिनुसार बाबा की पूजा करना है। गॉरिया अचाई दो चुने जाते हैं, एक 'बिया कोरोई गॉरिया मोताई' के दूसरा बिया गोनांग गॉरिया मोताई' के अचाई। इनके बिना गॉरिया देवता की पूजा असंभव प्राय है, इसलिए समाज में इन्हें विशेष महत्व प्राप्त है। ये लोग विशुद्ध रूप से जमातिया कहलाते हैं और पवित्रता का विशेष ध्यान रखते हैं। जहाँ शुद्धता एवं पवित्रता का अभाव है, वहाँ वे उठना-बैठना, खाना-पीना आदि नहीं करते हैं, यहाँ तक कि वे जल तक ग्रहण नहीं करते हैं।

(ग) दरिया

बाबा गॉरिया पूजा के दौरान ढोल बजाने वालों को 'दरिया' कहा जाता है। पूजा का आरंभ और अंत दोनों 'दरिया' द्वारा ढोल बजाकर किया जाता है। बीच में कोई भी व्यक्ति बजा सकता है। यह भी दो होते हैं, एक 'बिया कोरोई गॉरिया मोताई' के दूसरा बिया गोनांग गॉरिया मोताई' के।

(घ) मोताई बालनाई

बाबा गॉरिया की प्राण प्रतिष्ठा के बाद उन्हें सबसे पहले पकड़ने वाले एवं उनकी ग्राम-परिक्रमा के समय बाबा को कंधे पर उठाकर चलने वाले अथवा उठाने वाले मोताई बालनाई कहलाते हैं। यह भी दो होते हैं, एक 'बिया कोरोई गॉरिया मोताई' के दूसरा बिया गोनांग गॉरिया मोताई' के मोताई बालनाई।

(ङ) बगला/बाबा के विशेष भक्तजन

बगला को इस समाज में विशेष सम्मान प्राप्त है। इन्हें बाबा गॉरिया के पूजा के दिनों में बाबा की सखी, सखा, भक्त, सेना आदि कई नामों से संबोधित किया जाता है। यह स्थाई और अस्थाई दोनों तरह के होते हैं। अस्थाई बगला उन लोगों को कहा जा सकता है, जो अपने दु:ख, कष्ट आदि को दूर करने के लिए बाबा के शरण में आते हैं और मुराद पूरी होने के बाद सांसारिक जीवन में लौट जाते हैं। एक तरह से यह बाबा गॉरिया के स्वयं सेवक होते हैं। सात दिनों तक की जाने वाली बाबा गॉरिया की पूजा को सुचारू रूप से चलाने के लिए हदा द्वारा बगलाओं के लिए एक अस्थाई समिति बनाई जाती है। जिसमें बगला महंत, बगला राजा और बगला चकदिरी की अहम भूमिका होती है।

बगला महन्त:

इसकी नियुक्ति बगलाओं में से की जाती है। पूर्व में इसका चयन बगलाओं द्वारा किया जाता था, वर्तमान में हदा इसका चयन करता है। जमातिया-जनजाति में पारम्परिक रूप से शुद्ध रक्त के माने जाने वाले बगला ही महंत चुने जा सकते हैं। महंत की जिम्मेदारी बाबा गॉरिया की विधिनुसार सेवा करना और बुइसू से लेकर सेना तक यानी सात दिन के पूजा को सुचारू रूप से चलाना है।

बगला राजा :

इनकी नियुक्ति भी हदा द्वारा बगलाओं में से वरिष्ठता के आधार पर की जाती है। इनकी जिम्मेदारी एक अप्रैल से इक्कीस अप्रैल तक बगला-सुरक्षाकर्मियों द्वारा गॉरिया बाबा की निगरानी करवाना है।

बगला चकदिरी :

इसकी नियुक्ति बगलाओं में से की जाती है। बगला चकदिरी बगलाओं को नियंत्रित और निर्देशित करते हैं तथा उनकी सुरक्षा का ध्यान रखता है।

तो ये था जमातिया हदा का संगठन, जो जमातिया- जनजाति

खेरफाङ के आँगन में निर्मित मंडप एवं खङ[11]

की समाज व्यवस्था और पूजा-पाठ व्यवस्था का कर्ता-धर्ता है। आइए, अब हम जमातिया जनजाति की जीवन-शैली एवं उनकी पूजा-पद्धति को समझते हैं-

जमातिया समुदाय द्वारा साल भर में की जाने वाली पूजाओं में अनेक ऐसी चीजें मौजूद हैं, जो भारत की प्राचीन और वर्तमान पारंपरिक पूजा-पद्धतियों से मेल खाती हैं। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इस समाज द्वारा की जाने वाली सभी मुख्य पूजाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक वैशिष्ट्य को बताना है। यह समाज मुख्य रूप से यथा- लांप्रा, मोई तांमानि, बाबा गॉरिया, केर पूजा, बलङ सुवामा, माय खुलूँमा, थुनायरग-बनेरग, नाक्रि, हायचुकमा, हाङग्राई, हजाईगिरी आदि की पूजा करता है।

1. लांप्रा :

जमातिया समुदाय में लांप्रा पूजा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह दो प्रकार के हैं-कोथार लांप्रा[12] और कुसूं लांप्रा[13] अर्थात जन्म से लेकर मृत्यु और मृत्यु के बाद मृतक परिवर की शुद्धिकरण हेतु भी यही पूजा की जाती है। समाज में प्रचलित लांप्रा पूजा को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं-

(क) महिला के गर्भ धारण करते ही माँ और शिशु के स्वास्थ्य एवं उनकी मंगल कामना करते हुए सबसे पहले लांप्रा पूजा की जाती है। शिशु जन्म के बाद माँ के स्वस्थ एवं शुद्ध होते ही दोनों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की कामना करते हुए और शिशु को सूर्य देवता का दर्शन कराने के लिए लांप्रा पूजा दी जाती है।

(ख) इस समुदाय में लांप्रा पूजा के बाद ही शादी-विवाह की प्रस्तुति ली जाती है। यहाँ तक कि लांप्रा पूजा के बाद ही वर-वधु की खोज शुरू की जाती है। वर-वधु चयन होने पर विवाह की तैयारी भी लांप्रा पूजा संपन्न करके ही की जाती है। शुभ विवाह के दिन लांप्रा पूजा के बाद ही वर-वधु फेरे लेते हैं और विवाह के बाद लांप्रा पूजा संपन्न होने पर ही वधु हरसिनि (पग फेरे) के लिए जाती है।

(ग) परिवार में किसी की मृत्यु होने पर बेटियाँ तीन दिन बाद और बेटे तेरहवें दिन में लांप्रा पूजा करते हैं। श्राद्ध के बाद घर की शुद्धिकरण के लिए, मृतक की अस्थि विसर्जन के पूर्व और पिंडदान के लिए तीर्थयात्रा पर जाने से पूर्व यह पूजा की जाती है।

(घ) बाबा गॉरिया की पूजा में शामिल होने से पहले 'बुइसू' के दिन और सात दिनों तक पूजा में शामिल होकर घर लौटने के बाद, इसके अतिरिक्त किसी भी सामुदायिक बड़ी पूजा में भाग लेने से पहले लांप्रा पूजा अनिवार्य माना जाता है।

(ङ) नया घर बनाने से पहले भूमि पूजा, घर निर्माण के बाद गृह-प्रवेश के दिन, राज्य से बाहर यात्रा पर जाने से पहले यानी लम्बी यात्रा करने से पहले, तीर्थ यात्रा से पहले, शिकार पर जाने से पहले लांप्रा पूजा अनिवार्य माना जाता है। इसके अलावा यदि कोई परिवार जरूरी समझते हैं तो उनके द्वारा महीने में एक बार पारिवारिक सुरक्षा एवं पवित्रता बनाए रखने के लिए यह पूजा की जाती है।

गाँव के अचाई द्वारा यह पूजा संपन्न की जाती है। मुख्य रूप से छः देवी-देवताओं, यथा-आकाथा, बिकाथा, तोयबुकमा, साङग्रङ, सुकून्द्राई एवं मुकून्द्राई को स्मरण कर यह पूजा की जाती है। पूजा सामग्री है-केले के पत्ते, केले, चावल, चीनी, बताशे और कुछ फूल आदि।

2. मोई तांमानि[14] :

'मोई तांमानि' जमातिया समुदाय की मुख्य धार्मिक अनुष्ठानों में से एक है। यह पूजा साल में एक बार गॉरिया पूजा से पहले चैत्र महीने में की जाती है। यह पूजा मा-बारी[15] एवं शिवबाड़ी की पूजा कर आरंभ किया जाता है। माँ त्रिपुरेश्वरी एवं महादेव की पूजा के बाद तीन नदियों यथा-तोयमा (गोमती नदी, गोमती जिला), बुरिमा तोयमा (बिजय नदी, बिशालगड़ जिला) एवं कसंमा (खुवाई नदी, धलाई जिला) की पूजा की जाती है। सबसे पहले समस्त जमातिया की सुरक्षा, सुख-शांति, समृद्धि एवं उनकी मंगल कामना करते हुए 'हदा मोई तांमानि', इसके बाद मयाल पांचाई द्वारा उनके अंतर्गत आने वाले गाँव वासियों की मंगल कामना करते हुए 'मयाल मोई तांमानि' अनुष्ठान पूरा किया जाता है। सभी अनुष्ठान हदा अकराओं की निगरानी में संचालित किए जाते हैं। यह अनुष्ठान गाँव के स्तर पर लुकू चकदिरी द्वारा गाँव वालों की सुख-समृद्धि, शांति, मंगल कामना करते हुए किया जाता है। पारिवारिक स्तर पर भी यह पूजा की जाती है। जिसे नुखूङ सामोङ रमा कहा जाता है। प्रत्येक पूजा में पशुओं की, यथा-भैंस, बकरे, कबूतर आदि की बलि दी जाती है। मयाल और हदा मोई तांमानि अनुष्ठान हदा अचाई एवं लुकू मोई तांमानि और नुखूङ सामोङ रमानि अनुष्ठान लुकू अचाई द्वारा संपन्न किए जाते हैं। साथ ही प्रत्येक

क्रमशः ..... पृष्ठ 60 पर

न्यिशी जनजाति का एक प्रमुख संस्कार : आम दगा पनाम

— डॉ. जोराम आनिया ताना

संयुक्त परिवार में विश्वास रखने वाली न्यिशी जनजाति में हालाँकि पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था है, आबो तानी को अपना पूर्वज मानने वाले न्यिशी लोगों का पारंपरिक घर बहुत लंबा होता है। जिसको 'नामलो' कहते हैं, इसमें 50 से 100 तक लोग एक साथ रह सकते हैं। लेकिन एक ही छत के नीचे अपनी अलग-अलग व्यवस्था में जीते हैं। न्यिशी जनजाति शकुन-अपशकुन पर विश्वास करती है और उनका निवारण भी पूजा-व्यवस्था में ही खोज लेती है। इनके यहाँ 'ओप्पो' मादक पेय पदार्थ नहीं, बल्कि पौष्टिक पेय पदार्थ है। असल में, फसल तैयार होने के बाद खेतों में सब लोग मिलकर उसकी कटाई करते हैं और अनाज (मुख्यत: धान) को साफ़कर उसे नासू में रखी हापुम्म में एकत्रित करके रख देते हैं।

सूर्योदय की भूमि अरुणाचल प्रदेश में अनेक जनजातियाँ पाई जाती हैं जैसे न्यिशी, तागिन, आदी, गालो, आपातानी, बोकार, खाम्ती, मोन्पा आदि। सभी जनजातियों की अपनी लोक-संस्कृति, रिवाज़ और जीवन व्यवस्था है। प्रस्तुत आलेख में न्यिशी जनजाति द्वारा फसल कटाई के बाद हरेक न्यिशी घर में किए जाने वाले एक संस्कार 'आम दगा पनाम' के बारे में बताया गया है।

संयुक्त परिवार में विश्वास रखने वाली न्यिशी जनजाति में हालाँकि पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था है, आबो तानी को अपना पूर्वज मानने वाले न्यिशी लोगों का पारंपरिक घर बहुत लंबा होता है। जिसको 'नामलो' कहते हैं, इसमें 50 से 100 तक लोग एक साथ रह सकते हैं। लेकिन एक ही छत के नीचे अपनी अलग-अलग व्यवस्था में जीते हैं। न्यिशी जनजाति शकुन-अपशकुन पर विश्वास करती है और उनका निवारण भी पूजा-व्यवस्था में ही खोज लेती है। इनके यहाँ 'ओप्पो' मादक पेय पदार्थ नहीं, बल्कि पौष्टिक पेय पदार्थ है।

असल में, फसल तैयार होने के बाद खेतों में सब लोग मिलकर उसकी कटाई करते हैं, और अनाज (मुख्यत: धान) को साफ़कर उसे नासू में रखी हापुम्म में एकत्रित करके रख देते हैं।

धान को नासू में भरने के बाद 'आम दगा पनाम' संस्कार की बारी आती है। इसमें न्यिशी जनजाति की महिलाओं द्वारा अदरक, चावल का आटा तथा हरचा में ओप्पो को भरकर नए धान के ढेर पर अदरक के पौधों के साथ सजा कर रख दिया जाता है। इसी के बगल में कोहाम ओक के पत्ते पर चावल के आटे और पका हुआ चावल दोनों मिलाकर बाँध दिए जाते हैं और फसल के ढेर पर रात भर के लिए रख दिया जाता है।

दूसरे दिन महिलाएँ नासू में जाकर ओप्पो को निकाल लेती हैं इसी क्रम में सबसे पहले कोहाम ओक की जाँच की जाती है। यदि उस पर कोई छेद आदि मिलता है तो यह माना जाता है कि इस घर में या गाँव में कोई आसन्न मृत्यु होने वाली है, रात को उसी मरने वाले की आत्मा ने उस ओप्पो को पी लिया और कोहाम ओक में छेद कर चावल खा लिए ताकि घरवालों को अपशकुन का संकेत मिल सके। ऐसे में ओप्पो स्वादहीन हो जाती है। अगर कोहाम ओक में कोई छेद आदि न मिले, यानी वह पूरी तरह ठीक हो तो यह माना

जाता है कि आगामी कुछ समय तक कोई अपशकुन नहीं होने वाला है। इसके बाद धान के ढेर से ओप्पो को निकालकर ख़ुशियाँ मनाने का दौर शुरू होता है। इस क्रम में अब सबसे पहले नए ढेर की धान से ही पूजा की जाती है। इस कामना के साथ कि जिस धान से हम सबका पेट भरता है, सबसे पहले उसका पेट भरना चाहिए और आने वाले वर्षों में इसी तरह यह अनाज हमारे नासू में आकर भरता रहे, ईश्वर से इसकी कामना भी की जाती है। अनाज को भोजन खिलाने की इस संस्कार को आम दगा पनाम कहते हैं। घर व गाँव के लोग गोहम्बा लोकगीत गाते हुए ओप्पो परोसते हैं। एक गोहम्बा लोकगीत का उदाहरण दृष्टव्य है–

सूलियूम बो ओयुम सो गोहम्बा
ताराबो आबदे गोहम्बा
परतो वो देन दे गोहम्बा
सूलियूम बो ओयुम सा गोहम्बा
तुगू यह दूर गोहम्बा
नूल दोदकह गोहम्बा
हिगो ला लोरीला गोहम्बा
नूल दोदकह गोहम्बा.....
.....देनगह ऊलूयम गोहम्बा
सूमयो लिकू गोहम्बा
इदि गह बूलगह गोहम्बा
बूचूम गयिकुन गोहम्बा
चिम्बुम गह जामलूङ गोहम्बा
जामचुम मयिकुन गोहम्ब।

(अर्थात आज शाम तारावंश के स्त्री पुरुष अन्न देवता को प्रसन्न करने के लिए उल्लसित होकर 'भोज' का आयोजन कर रहे हैं। ऐसी ख़बर हमने सुनी। यह ख़बर सुनकर हम सब गाँव के लड़के-लड़कियों ने तारावंश के घर की तरफ़ दूर से देखा, समारोह के आयोजन का वातावरण था। अत: कानों से ख़बर सुनकर, आँखों से देखकर हम सब आप के घर आए हैं। तारावंश की एक स्त्री बड़े-बड़े पात्रों में मदिरा भर-भरकर आगंतुकों को वितरित कर रही है। सब को पर्याप्त मात्रा में मदिरा वितरित कर रही है। ताकि सभी जी भर कर पी सके। इसी प्रकार तारावंश का एक पुरुष पकाए हुए मांस के बड़े-बड़े टुकड़े आगंतुकों को उदारतापूर्वक वितरित कर रहा है। ऐसी चर्चा सुनकर सब आज आप के घर में आनंद मनाने पहुँचे हैं। गाँव भर में आप के इस 'भोज' की चर्चा सुनकर हम भी तारावंश की भद्र स्त्री के हाथों से चावल का आटा खाने की इच्छा से आए है। इस भोज का आयोजन करने वाले पुरुष के हाथों से मांस (सूखा) खाने आए हैं। वैसे ही हम सब भी भोज का नाम सुनते ही खाने-पीने के लिए दौड़े चले आए हैं। आप सबने जो सुना है, जो देखा वह सत्य ही है। आज मैं (तारावंश) अपने घर में अन्न देवता की पूजा कर रही हूँ। इसलिए मैंने भोज का आयोजन किया है। जिससे 'अन्न देव' कहीं भाग न जाएँ इसलिए गाँव के सभी जन आओ और सब आनंदित होकर अन्न देवता की पूजा करो। आज चावल का आटा भी वितरित कर रही हूँ। मैं इस वंश का पुरुष हूँ। सूखा मांस वितरित कर रहा हूँ। गाँव के

लड़के-लड़कियों आओ और खाओ, पी लो और आनंद के साथ ख़ुशियाँ मनाओ। मैं (तारावंश) की नारी आज इस वंश की अन्नदता को प्रसन्न कर रही हूँ, जिससे सदा इसी वंश के गोदाम में रहे और किसी और के वंश के गोदाम में न जाएँ हमसे अप्रसन्न होकर हिना (वंश का नाम) वंश के गोदाम में अन्नदाता न चले जाएँ। इसलिए मैं उसको सदा तारा वंश के गोदाम में बने रहने के लिए प्रसन्न कर रही हूँ। कोजी (वंश का नाम) वंश के गोदाम में जाकर अन्नदाता अपना घर न बना लें, इसलिए मैं तारावंश के गोदाम में ही सदा बनाए रखने हेतु प्रसन्न कर रही हूँ। गोई (वंश का नाम) वंश के गोदाम में जाकर अन्नदाता न चले जाएँ इसलिए मैं उसका तारा वंश के गोदाम में रखने हेतु सुरक्षित कर रही हूँ। हिगिया (वंश के नाम) वंश के गोदाम में जाकर न बैठ जाए, जिससे हमारी खुशहाली न छिन जाएँ, इसलिए मैं उन्हें प्रसन्न कर रही हूँ। लेल (वंश का नाम) वंश के परिवार में जाकर अन्नदेवता रम न जाएँ इसलिए सदा तारावंश में रहने हेतु मैं उन्हें प्रसन्न कर रही हूँ। कमदर (वंश का नाम) वंश के घर में जाकर रम न जाएँ, इसलिए मैं अन्न देवता को रोके रखने हेतु उनसे प्रार्थना कर रही हूँ, जिससे तारावंश में सदा खुशहाली रहे। मेव (वंश का नाम) वंश के गोदाम में जाकर छिपकर न बैठ जाएँ इसलिए मैं उन्हें प्रसन्न करने बैठी हूँ, जिससे सदा तारावंश को खुशहाली देने हेतु तारावंश के गोदाम में बैठें। गोजी (वंश का नाम) वंश के गोदाम में जाकर रम न जाएँ इसलिए अन्नदेवता! सदा तारावंश के गोदाम में ही रहें, उन्हें में प्रसन्न कर रही हूँ। जोतुम (वंश का नाम) वंश के गोदाम में जाकर ने बैठ जाएँ, इसलिए मैं उन्हें प्रसन्न कर रही हूँ। अदरक के पौधे को धान के ऊपर रख दिया है। अन्नदेवता ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए हम तारावंश के परिवार के सभी स्त्री-पुरुष अन्न देवता को प्रसन्न करने हेतु ख़ुशियाँ मना रहे हैं। मदिरा से तथा अन्न खाद्य पदार्थों से अन्न देवता को प्रसन्न कर रहे हैं। अर्थात अन्नदेवता को प्रसन्न करने हेतु हमने सब यत्न किए हैं। टिप्पणी:-फसल कटाई की इन रस्मों से गुज़रने के बाद पाँच दिन घर से बाहर नहीं जाते हैं। बाहर से आई हुई सब्ज़ी भी नहीं खाते। बाहर लकड़ी लेने नहीं जाते, नदी में नहीं नहाते हैं, बर्तन आदि धुला हुआ पानी घर से नीचे नहीं गिराते हैं, गृह लक्ष्मी के भागने के डर से बाहर नहीं जाते और बाहर से लाई हुई चीज़ों को भी घर में घुसने नही देते यह एक पारंपरिक प्रथा है।)

रात भर ओप्पो को अनाज के साथ रखने के बाद सुबह गाँव के लोग खासकर वृद्ध महिलाएँ और पुरुष मिलकर इसे पीते हैं। आम दगा पनाम संस्कार के अंतर्गत रात भर अनाज के साथ रखी गई ओप्पो को जवान लड़के-लड़कियों को पीना मना है। इस संबंध में यह मान्यता है कि पहाड़ों में चढ़ते समय, भागते-दौड़ते समय उनकी साँस जल्दी फूलने लगेगी। जबकि युवाओं को काम-काज, सामान, खेती आदि के सिलसिले में अक्सर पहाड़ों से चढ़ना-उतरना पड़ता है। इसलिए युवाओं को यह ओप्पो नहीं दी जाती। दूसरे, ऊपर बताया ही गया है कि यदि कोहाम ओक अर्थात् पत्ते में बाँधे हुए आटे में छेद पाया जाए, तो यह मान लिया जाता है कि गाँव में आने वाले कुछ महीनों में किसी ना किसी व्यक्ति की मृत्यु तय है। न्यिशी जनजाति का इसमें अटूट विश्वास है।

संदर्भ :

1. धान के भंडारण के लिए बनाई गई बाँस की एक बड़ी-सी टोकरी।
2. लौकी जब पककर सूख जाती है तो अंदर से खोखली हो जाती है, उसमें से बीज को बाहर निकाल कर साफ करके पानी भरने या ओप्पो रखने का काम लिया जाता है, उसे हरचा (तुंबी) कहा जाता है। आम दगा पनाम संस्कार में ओप्पो को हरचा में ही रखने की परंपरा है।
3. देसी शराब, जो घरों में ही बनती है।
4. न्यिशी समुदाय में अदरक का बहुत महत्व है। कहते हैं, आबो तानी के पाँच वंशज हैं-न्यिशी, आदी, आपातानी, गालो और तागिन। आबो तानी का विवाह सूर्य देवी (दोनी) बेटी जित्तअन से हुआ था, जब वह सूर्य देवी के घर से विदा होकर चलने लगी तो अपने साथ मिथुन, सुअर, बकरी, कुत्ता जैसे तमाम पालतू जानवर, पत्तेदार हरी प्याज, मिर्च तथा ताकी यानी अदरक लेकर आई थी। इसी कारण इन जनजातियों में अदरक को बेहद पवित्र माना जाता है।
5. एक जंगली पत्ता, जिसे जनजातीय समुदाय के लोग पूजा संस्कारों में प्रयोग करते हैं।

द्वारा-हिंदी विभाग, देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय
ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश
ईमेल : drjoramaniya@gmail.com

यह सन्नाटा कब टूटेगा

— तेजेंद्र शर्मा

सैंगी हर बात का विश्लेषण इतनी आसानी से कैसे कर लेती है? मैं क्यों सैंगी की तरह समझदार नहीं हो सकता? क्यों मैं बस ईगो का मारा हूँ? वैसे इस नौकरी का एक फ़ायदा भी है। रिटायरमेंट की उम्र 65 साल है। यहाँ तो कोई किसी को सरनेम से नहीं बुलाता। मिस्टर वगैरह तो लगाने का सवाल ही नहीं होता। वह तो अपने मैनेजिंग डायरेक्टर तक को पहले नाम से बुलाता है, स्टीव कहता है। शायद इसीलिए मनुष्य यहाँ जल्दी बूढ़ा नहीं होता। वह एक सेवा- निवृत्त या रिटायर्ड इंसान नहीं कहलाना चाहता।

मगर उसके लेखन का क्या होगा? क्या सैंगी की बात मान लेनी चाहिए? पिछले कुछ दिनों से वह इस बात को लेकर परेशान है। हर रात तय करता है कि अगले ही दिन यह नौकरी छोड़ देगा।

आज फिर अलार्म सुबह 5.15 पर बज उठा।

वह यंत्रवत् उठा और अपने ब्लैकबैरी फ़ोन पर अलार्म को डिसमिस कर दिया। उसका सुबह का शेड्यूल हमेशा एक-सा ही रहता है। अलार्म बंद करना; बिस्तर से निकलना; बिस्तर को सीधा करना और रज़ाई को ठीक से बिछाना; फिर एक अंगड़ाई लेना; अपना पायजामा उठाकर पहनना और पहनते-पहनते ही बाथरूम की तरफ़ चल देना। आँखें भी बेडरूम से बाथरूम तक आते-आते ठीक से खुल पातीं हैं।

बाथरूम जाते-जाते एक पल के लिए रुक जाता है। अपना लैपटॉप ऑन करता है। कुछ आवाज़ें आनी शुरू होती हैं। थोड़ी देर में लैपटॉप चलना शुरू कर देता है। विंडोज़-7 अपने शुरू होने की सूचना भी बहुत मधुर सुरों में देता है। इस बीच वह अपने अंग्रेज़ी टूथ ब्रश पर भारत से मँगवाया आयुर्वेदिक पेस्ट लगाता है और दाँत साफ़ कर लेता है। दाँत साफ़ करने के बाद जीभी से अपनी ज़बान जरूर साफ़ करता है।

उसे हिमालय टूथपेस्ट का स्वाद बहुत पसंद है। हिमालय कंपनी के नाम से उसकी बचपन की यादें जुड़ी हैं। किशनगंज के वैद्य जी उसे अपनी दवाओं के साथ साथ लिव-52 नाम की दवा दिया करते थे। इस टूथपेस्ट से उसकी पहचान भोपाल के एक होटल में हुई। पेस्ट की एक छोटी-सी ट्यूब रखी थी उस होटल के टॉयलेट में। उसे अपने पिता की कही बात याद आ गई, "भला सुबह-सुबह हम अपने मुँह में फ्लोराइड या फिर अन्य कैमिकल क्यों डालें। जब आयुर्वेद हमारे लिए जड़ी बूटियाँ इस्तेमाल करता है, हम क्यों अंग्रेज़ी दवाइयों और वस्तुओं का प्रयोग करते हैं?"

वैसे आयुर्वेदिक टूथपेस्ट तो लंदन में भी मिलते हैं। डाबर, नीम, और स्वामी नारायण मंदिर वाले सभी आयुर्वेदिक दवाएँ और रोज़मर्रा के इस्तेमाल के आयुर्वेदिक उत्पाद बनाते हैं। मगर भारत से अपनी पसंद की वस्तु दोस्तों से मँगवाने का सुख ही अलग है। उसके बचपन की यादों में बोरोलीन, सुआलीन, निक्सोडर्म, अफ़गान स्नो, सिंथॉल साबुन, अमूल मक्खन और रूह अफ़ज़ाह शर्बत आज भी घर बसाए बैठे हैं।

एक उहापोह भी होती है कि पहले नहा ले या फिर चाय बना ले। फिर वापिस लिविंग रूम में आता है और कंप्यूटर पर अपना जी-मेल अकाउंट खोलता है। एक सरसरी निगाह से देखता है कि कहाँ-कहाँ से ई-मेल आए हैं। अगर कोई महत्वपूर्ण ई-मेल दिखाई देता है तो ठीक, वर्ना वापिस टॉयलट की तरफ़ चल देता है। वैसे कभी कभी लैपटॉप उठा कर टॉयलट में भी ले जाता है। और टॉयलट सीट पर अपने आपको समझाता है कि आज बाबा रामदेव की बात मान ही लेगा। कपाल भाती और अनुलोम विलोम कर ही लेगा। कब से अपने आपको तैयार करता आ रहा है कि उसे यह क्रिया निरंतर रूप से करनी चाहिए।

होता वही है जो रोज़ाना होता है। टॉयलट से निवृत्ति होते-होते और स्नान पूरा करते-करते समय अधिक लग जाता है। ऐसे में सबसे पहले बलि का बकरा बनते हैं कपाल भाती और अनुलोम विलोम। लगता है कि जैसे दोनों प्राणायामों की रिहर्सल-सी की हो उसने। न तो गर्दन और कंधों की एक्सरसाइज कर पाता है और न ही प्राणायाम। बस सैंडविच बनाता है, चाय बनाता है, एक डाइजेस्टिव बिस्कुट निकालता है और चाय पीने बैठ जाता है। उसके घर में चाय की पत्ती की जगह टी-बैग ही आते हैं।

उसने एक नया तरीका निकाल लिया है कि टी-बैग की चाय में बंबई की चाय की पत्ती वाला ज़ायका आने लगे। वह कप में दो टी-बैग डाल कर उस में दूध डालता है और माइक्रोवेव अवन में चालीस सेकण्ड तक उबालता है। दूसरी तरफ़ इलेक्ट्रिक केतली में पानी उबलने के लिए रख देता है। चालीस सेकण्ड बाद कप बाहर निकाल कर दूध में टी-बैग हिलाता है और उसमें एक गोली स्पलैंडा (रासायनिक चीनी) की डालता है। उस पर केतली में से उबलता पानी डालता है। एक मिनट के बाद विशुद्ध भारतीय चाय तैयार हो जाती है।

वह परेशान है कि आजकल घर से दफ़्तर पहुँचने में एक तरफ़ लगभग दो घंटे लग जाते हैं। यानि कि एक सप्ताह में बीस घंटे वह रेलगाड़ी में ही बिता देता है। जबकि पुराने दफ़्तर में जाने के लिए क़रीब पैंतीस से चालीस मिनट ही लगते थे। यदि वह लिखना चाहता तो इन चालीस घंटों में से कम से कम पाँच घंटे तो साहित्य सृजन में लगा सकता था। अब उसे अपने मित्र दिवाकर का लेखकीय सन्नाटा समझ आने लगा था। न लिखने के कारण भी महसूस होने लगे थे। वह शनिवार को अवश्य ही सैंगी से बात करेगा।

सैंगी उसकी ब्याहता पत्नी नहीं है। बस दोनों साथ साथ रहते हैं। दोनों जीवन में उस समय मिले जब उनके अपने अपने जीवन साथी राह में ही छोड़ अलग राह पकड़ कर चल दिए। दोनों की राय विपरीत सेक्स के लिए ख़ासी नकारात्मक हो गई थी। मगर फिर भी दोनों को एक-दूसरे में ही अपना-अपना पूरक दिखाई दिया। हिंदी का बिगुल बजाने वाला वह अचानक ब्रिटेन की वेल्श लड़की के साथ एक ही छत के नीचे रहने लगा।

वैसे उसका नाम एलिज़बेथ है। सब प्यार से उसे लिज़ कहते हैं। अब क्योंकि दोनों ने विवाह नहीं किया और पार्टनर बनकर एक ही छत के नीचे रहते हैं, इसलिए वह उसे संगिनी कहता है और फिर संगिनी प्यार से सैंगी बन गई। घर सैंगी का है मगर घर का ख़र्चा सारा वह स्वयं ही चलाता है। सैंगी बहुत कहती है कि मिलजुल कर हो जाएगा। मगर नहीं, वह नहीं माना तो नहीं ही माना।

सैंगी के साथ कभी-कभी छोटी-छोटी बातों पर बहस भी हो जाती है। शायद इसीलिए सैंगी ने वापिस अपना कॉलगेट टूथपेस्ट इस्तेमाल करना शुरू कर दिया है। घर में दो लोग हैं और दो तरह के टूथपेस्ट! वह हमेशा अपने पेस्ट को नीचे से दबाता है और नीचे से बिल्कुल फ्लैट करते हुए ऊपर की ओर बढ़ता है। जबकि सैंगी को कोई फ़र्क महसूस नहीं होता कि पेस्ट की ट्यूब कहाँ से दबाई जा रही है। वह समझाती भी है कि इससे क्या फ़र्क पड़ता है कि ट्यूब कहाँ से दबा कर पेस्ट निकाली जा रही है। भला इसमें कल्चर और परवरिश और दूसरी बड़ी-बड़ी बातें कहाँ से आ गईं। सैंगी हमेशा बहस से बचना पसंद करती है। अब तो वह स्वयं भी महसूस करने लगा है कि सैंगी से भला क्या बहस।

दरअसल सैंगी शाम को काम करती है। जब वह काम से लौटता है तो सैंगी जा चुकी होती है। जब तक वह वापिस लौटती है वह गहरी नींद में होता है। इसलिए दोनों को बात करने का समय भी शनिवार और रविवार को ही मिलता है अन्यथा बस एक दूसरे की ज़रूरत पूरी करने के अतिरिक्त

कोई और संपर्क नहीं। हाँ जबसे वह इस नए दफ़्तर जाने लगा है उसके जीवन में बहुत से परिवर्तन आने लगे हैं।

अब उसे सुबह सात बज कर तीस मिनट की गाड़ी लेनी पड़ती है। इसी से सारा जीवन बदल-सा गया है। उसका दफ़्तर न्यू क्रॉस गेट में है। रहता है हैच-एंड में। घर से स्टेशन क़रीब पंद्रह मिनट की पैदल दूरी पर है। इसलिए सात बज कर दस मिनट तक चल देता है। हैच-एंड से ओवरग्राउंड की यानि कि अपनी ही कंपनी की रेलगाड़ी लेता है। तीस मिनट में यानि कि आठ बजे क्वींस पार्क स्टेशन पहुँचता है। वहाँ आठ पाँच के करीब बेकर-लू अंडरग्राउंड लाइन से बेकर स्ट्रीट स्टेशन पहुँचता है। एक बार फिर वहाँ से जुबली लाइन की गाड़ी में बैठता है और लंदन ब्रिज होते हुए कनाडा वाटर स्टेशन पर उतरता है। वहाँ से अपनी ही कंपनी की ईस्ट लंदन लाइन की गाड़ी में सवार हो कर पहुँचता है न्यू क्रॉस गेट। फिर वहाँ क़रीब पंद्रह मिनट पैदल। यानि कि घर से दफ़्तर पहुँचने में उसे पूरे दो घंटे लग जाते हैं। और फिर शाम को यही प्रक्रिया उल्टी दोहराता है।

लिखने और पढ़ने का समय अब उसे नहीं मिलता है। यह ठीक है कि उसके लेखक दिमाग़ को बहुत से नए क़िरदार दिखाई देते हैं। उनके क्रियाकलाप देखता है। देखता है कि कैसे यहाँ का गोरा आदमी खाली सीट पर लपक कर बैठने का प्रयास नहीं करता। प्रवासी चाहे किसी भी देश का क्यों न हो, उसकी आँखों में सीट का लालच साफ़ दिखाई देता है। वह देखता है कि यहाँ के गोरे आदमी और औरत बहुत तेज़ चलते हैं। शायद गाँधी जी ने भी अपनी चाल इसी देश में रह कर तेज़ की होगी।

वह स्वयं न तो तेज़ चलता है और न ही धीमा। बस मध्यम मार्ग मानने वाला है। बुद्ध की बहुत-सी सीखों को अपने जीवन में अपना चुका है। सैंगी को पता ही नहीं कि वह कभी ऊँचे सुर में बात भी कर सकता है। न ज़ोर से हँसता है, न ऊँचा बोलता है। सैंगी की वैसे तो अधिकतर बातें मान लेता है, किंतु उसकी एक बात का ख़ास ख़्याल रखता है कि अपना काले रंग का बैग, जिसे सैंगी बैक-पैक कहती है, वह अपनी पीठ पर दोनों कंधों पर बराबर लटकाता है। सैंगी को लगता है कि ऐसा न करने से इंसान का कंधा एक ओर को झुक जाता है।

वैसे तो वह कविता भी लिख लेता है, मगर उसे संतुष्टि का अहसास कहानी लिख कर ही मिलता है। कवियों का मज़ाक उड़ाते हुए वह हमेशा कहता है, "कविता लिखने के लिए प्रतिभा की आवश्यकता होती है। जबकि कहानी केवल प्रतिभा से नहीं लिखी जा सकती। उसके लिए प्रतिभा के साथ-साथ मेहनत, प्रतिबद्धता एवं एकाग्रता की भी ज़रूरत होती है।"

जब वह लंदन यूस्टन में काम करता था तो उसे काम पर पहुँचने में कुल मिला कर पैंतीस मिनट ही लगते थे। शाम को घर में अकेला होता था। कंप्यूटर पर उंगलियाँ थिरकने लगतीं। मगर आजकल उसका पूरा शरीर इतना थका रहता है कि उंगलियाँ की-बोर्ड पर थिरकना जैसे भूल गई हैं। वह घर वापिस आता है निढाल-सा बिस्तर पर गिर जाता है। उसके भीतर का लेखक जैसे लिखना भूल गया है।

साल भर से सन्नाटा उसके लेखन पर छाया हुआ है। उसके भीतर की तड़प उसे कचोटती रहती है कि आख़िरकार लिख क्यों नहीं पा रहा। उसके दिल में अब भी विषय जन्म लेते हैं। वह आज भी आम आदमी के दर्द को भीतर तक महसूस करता है। मगर फिर उन विचारों को पन्नों पर व्यक्त क्यों नहीं कर पाता? उसके दिमाग में कहानियाँ जन्म लेती हैं, मगर शब्द काग़ज़ पर उतरने से इंकार कर देते हैं। शब्दों ने जैसे विद्रोह कर दिया है। यह हुआ कैसे? शब्द अचानक उसका साथ छोड़ कर किसके साथ चले गए?

वह दफ़्तर में भी काम में मन नहीं लगा पाता। वहाँ कहानी के बारे में सोचता है और घर आकर दफ़्तर के काम के बारे में। एक लड़कपन-सा शामिल हो गया है उसके व्यक्तित्व में। एक शरारती बच्चे की तरह जो खेलते समय स्कूल के होमवर्क के बारे में सोचता है और स्कूल में हर वक्त खेल और शरारत उसके दिमाग में छाए रहते हैं। वह पिछले वर्ष भर के जीवन को एक दिन में जीकर ख़त्म कर देना चाहता है। उसका बस चले तो इस पूरे वर्ष को अपने जीवन की स्लेट से मिटा दे। मगर जीवन में ऐसा कैसे हो सकता है।

उसने स्वयं ही अपनी एक कहानी में लिखा भी था, "हमारा जीवन पहले से रिकॉर्ड किया गया एक वीडियो है यानि कि प्री-रिकॉर्डिड वीडियो कैसेट और वी.सी.आर. में

केवल प्ले का बटन है यानि कि इसमें हम केवल वीडियो कैसेट चला कर देख सकते हैं। वहाँ न तो फास्ट फॉर्वर्ड का बटन है और न ही रिवाइंड का। यानि कि आप न तो वीडियो कैसेट को आगे बढ़ा सकते हैं और न ही पीछे ले जा सकते हैं। जो शूटिंग आप करके आए हैं, आप वही देख सकते हैं। जो स्क्रिप्ट लिखा गया और जिसकी शूटिंग आपने पहले से की है; जिन चरित्रों के साथ जब-जब शूटिंग की है, आपके जीवन में वे लोग, वे हादसे, वे पल उसी हिसाब से आते जाएँगे।"

वह सोच रहा है कि इस सन्नाटे की शूटिंग क्यों की गई? आख़िर वह कब तक लिखने के लिए संघर्ष करेगा। वह दिवाकर की तरह अनुवाद भी तो नहीं करता। उसका एक वर्ष का सन्नाटा दिवाकर के कई वर्षों के बराबर है। दिवाकर कम से कम अनुवाद तो निरंतर करता रहा है। फिर भी सोचता है कि वह सृजनात्मक लेखन क्यों नहीं कर रहा। साल भर से तो मुक्ता भी नहीं लिख पाई है। वह शायद सोच कर ख़ुश हो रहा है कि चलो उस जैसे और भी कई हैं।

पहले वह ऐसा कदापि नहीं था। दूसरे के कष्ट और कमज़ोरी से कभी भी उसके दिल को तसल्ली नहीं मिलती। वह हमेशा दूसरे के कष्टों को अपना कष्ट समझता। शायद इन दोनों से प्रतिस्पर्धा की भावना रही होगी। इसीलिए उनके न लिख पाने से उसके अहम् को संतुष्टि मिल रही है। वह परेशान इसलिए भी है क्योंकि अब भारत में उसे मुख्यधारा का लेखक माना जाने लगा है। उसकी कहानियों की चर्चा शुरू हो गई है। वहाँ की पत्रिकाओं, समाचार पत्रों एवं इंटरनेट पर हर जगह उसके साहित्य पर बातचीत हो रही है। उसे लगने लगा है कि अगर वह एक वर्ष तक नहीं लिखेगा तो साहित्य जगत का कितना नुक़सान हो जाएगा।

वह अपने लेखन को बहुत गंभीरता से लेने लगा है और नौकरी उसे खलने लगी है। कहने को तो रेलवे में मैनेजर है। लेकिन यह भला क्या काम हुआ। अगर उसकी पगार ठीक ठाक न होती तो कब का नौकरी छोड़ चुका होता। वह सोचता है कि हिंदी का लेखक केवल लिख कर क्यों नहीं खा सकता? क्यों उसे घर चलाने के लिए दूसरा काम करना पड़ता है। मगर दूसरा काम तो वह भारत में भी करता था। यहाँ लंदन में इस नौकरी से पहले भी करता था। यह अचानक नौकरी से क्यों परेशान हो रहा है? सोचता है अगर भारत वाली नौकरी में होता तो इस वर्ष अठावन का हो जाता और नौकरी से रिटायर हो जाता।

रिटायर होने की बात उसने दो दिन पहले अपनी संगिनी से भी की थी। सैंगी ने पूरे ध्यान से उसकी बात सुनी, "तुम सच में इतनी घुटन से जी रहे हो? फिर तुमने मुझे कुछ बताया क्यों नहीं? तुम ख़ुद ही सोचो कि अगर तुम भारत में होते तो इस साल रिटायर हो ही जाते। तो तुम यहाँ भी रिटायरमेंट ले लो। मैं नौकरी कर ही रही हूँ, तुम भी कोई पार्ट-टाइम नौकरी कर लो। हम दोनों को एक दूसरे के लिए वक़्त भी मिल जाएगा और तुम लिख भी सकोगे।"

सैंगी हर बात का विश्लेषण इतनी आसानी से कैसे कर लेती है? मैं क्यों सैंगी की तरह समझदार नहीं हो सकता? क्यों मैं बस ईगो का मारा हूँ? वैसे इस नौकरी का एक फ़ायदा भी है। रिटायरमेंट की उम्र 65 साल है। यहाँ तो कोई किसी को सरनेम से नहीं बुलाता। मिस्टर वगैरह तो लगाने का सवाल ही नहीं होता। वह तो अपने मैनेजिंग डायरेक्टर तक को पहले नाम से बुलाता है, स्टीव कहता है। शायद इसीलिए मनुष्य यहाँ जल्दी बूढ़ा नहीं होता। वह एक सेवा-निवृत्त या रिटायर्ड इंसान नहीं कहलाना चाहता।

मगर उसके लेखन का क्या होगा? क्या सैंगी की बात मान लेनी चाहिए? पिछले कुछ दिनों से वह इस बात को लेकर परेशान है। हर रात तय करता है कि अगले ही दिन यह नौकरी छोड़ देगा। कल रात भी उसने यही तय किया था कि अब उसे नहीं करनी यह नौकरी, नहीं व्यर्थ करने अपने चार घंटे रोज़ाना—हैच एंड से न्यूक्रॉस गेट तक। कल रात उसने अपना स्वैच्छिक अवकाश लेने का पत्र भी बना लिया था।

मगर आज सुबह फिर 5.15 पर उसका अलार्म बजा और वही दिनचर्या एक बार फिर शुरू हो गई। वह सात तीस की गाड़ी लेने के लिए एक बार फिर स्टेशन के प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ा है।

❖

33-ए, स्पेंसर रोड, हैरो एंड वील्डस्टोन
मिडिलसेक्स एचए3 7एएन (यूनाइटेड किंगडम)
मोबाइल : 00-44-7400313433
ई-मेल : kahanikar@gmail.com

स्टेपिंग स्टोन

— रेखा राजवंशी

देखते-देखते यूनिवर्सिटी के दो साल पूरे हो गए थे। मामा, मामी मेरा ध्यान तो रखते, पर छोटे बच्चों के कारण पढ़ाई में खलल पड़ता। मेरे अधिकतर दोस्त फ़्लैट लेकर शेयरिंग में रह रहे थे। आने-जाने में भी वक्त लग जाता था। तो मामा से पूछकर अपने दो दोस्तों के साथ यूनिवर्सिटी के पास ही दो कमरों की एक छोटी-सी यूनिट में आ गया। मेरे फ़्लैट में एक दोस्त था जसविंदर, पंजाब का लम्बा चौड़ा हैंडसम लड़का था। लड़कियाँ पटाना और काम निकलवाना उसकी आदत में शुमार था और दूसरा लड़का था डेविड, जो मेरी तरह सीरियस था।

प्रताप को सिडनी आए अब तीस साल हो गए हैं। प्रताप अब शायद भूल ही गया है कि ग़रीबी या कम पैसों में गुज़ारा करना क्या होता है। आज वह पाँच गैस स्टेशनों (पेट्रोल पम्पों) का मालिक है। सिडनी के एक अच्छे सबर्ब मोसमन में अपनी पत्नी और दो किशोर बेटों के साथ रहता है। घर में चार गाड़ियाँ हैं। हफ़्ते में एक बार क्लीनर, दो बार कुक और एक बार गार्डनर आता है। इतनी सुविधा वो भी सिडनी जैसे शहर में मिलनी शायद ही किसी को नसीब होती है। प्रताप ने इन सबके लिए कड़ी मेहनत के साथ साथ दिमाग भी लगाया है।

बैकयार्ड की कुशनदार बैठा तो सारा विगत उसकी आँखों के सामने आने लगा। प्रताप सोचने लगा—"आज के दिन यानि एक फ़रवरी को ही वह सिडनी पहुँचा था। कितना अजीब लगा था यहाँ पहुँचकर। मामा उसे लेने जब एयरपोर्ट पहुँचे, तो ख़ुश थे। चलो परिवार का कोई तो आया। मामा यहाँ दस साल पहले आ चुके थे और अब रेलवे में नौकरी करते थे। मामी को भी स्कूल में गणित पढ़ाने की नौकरी मिल गई थी। वैसे मामी ने शिक्षण की कोई डिग्री नहीं ली थी, परन्तु मामा ने जुगाड़ करके इंडिया से एक फ़ेक डिग्री बनवा ली थी। उसी की वजह से उनकी नौकरी लग गई थी। मेरे सिडनी आने के पहले ही लोन लेकर घर भी खरीद लिया था। उनके दो छोटे बच्चे थे। माँ को उन्होंने ही कन्विंस किया था कि मुझे आगे की पढ़ाई के लिए सिडनी भेज दें। तो आज के दिन वह सिडनी पहुँचा था।

मैं चार भाई बहनों में नंबर दो था। बड़ी बहन वहीं कॉलेज में थी और छोटे भाई बहन स्कूल में थे। पिता पोस्ट मास्टर थे और माँ घर का काम सँभालती थीं। किसी तरह सबका गुज़ारा चल रहा था। तभी मामा को लगा कि यदि प्रताप पढ़-लिख ले, उसकी अच्छी नौकरी लग जाए तो पूरे घर की हालत सँभल जाएगी। अपनी बड़ी बहन को कन्विंस कर उन्होंने ही मुझे यहाँ बुलाया था।

प्रताप गार्डन की तरफ़ आया। करीने से लगे इस ख़ूबसूरत गार्डन में भी कुछ बेतरतीबी नज़र आ गई। ये पाम लीव्स बहुत बढ़ गईं हैं, ट्रिम करनी पड़ेंगी, सोच कर प्रूनर निकाल लाया।

पर दिमाग़ की सुई जैसे तीस साल के सफ़र पर टिक गई। सोचने लगा—"जब मैंने तीस साल पहले सिडनी आकर मक्वारी यूनिवर्सिटी में इंजीनियरिंग में प्रवेश लिया था तो उस समय हर भारतीय माँ-बाप की यही चाहत थी कि उनका बच्चा इंजीनियर या डॉक्टर बने। विदेश जाए और घर में आर्थिक सहायता दे। मुझे याद है कि पहले छह महीने मामा के घर में ही रहा। सब कुछ इतना नया था, अंग्रेज़ी सारी समझ नहीं आती थी। कई बार असाइनमेंट में भी मामा से मदद लेनी पड़ती थी। यूनिवर्सिटी में और भी लड़के थे जो मदद कर देते थे। धीरे-धीरे सिस्टम समझ आ रहा था।

सेमेस्टर ब्रेक में मामा ने अपने मित्र रोबर्ट की फ़ैक्ट्री में नौकरी लगवा दी थी। वहीं पहली बार समझ में आया कि अपनी कमाई क्या होती है। जब हफ़्ते के अंत में एक सौ पैंतीस डॉलर मेरे अकाउंट में आए, तो मैंने सारे पैसे मामा के हाथ में रख दिए। मामा ने पैंतीस डॉलर मुझे वापस देते हुए कहा 'इन्हें मैं तेरी माँ को भेज देता हूँ।'

एक फ़िल्म की तरह सारी घटनाएँ मेरी आँखों के सामने से गुज़रने लगीं।

ज़ाहिर है मामा को अपनी बहन की आर्थिक दशा का पूरा आभास था। उसे यहाँ बुलाने के पीछे भी तो उनकी यही भावना थी कि मैं जितनी शीघ्र हो पैसे भेजकर उनकी मदद करूँ। अगले सेमेस्टर भी मैं पढ़ाई के साथ-साथ वीकेंड में काम करता रहा, और कुछ नहीं थोड़ा पॉकेट मनी ही मिल जाता।

फ़ैक्ट्री का मालिक रॉबर्ट अच्छा आदमी था, उसकी फ़ैक्ट्री में प्लास्टिक की बोतलें बनती थीं, जो बाद में जूस की दुकान में सप्लाई कर दी जातीं थीं। रॉबर्ट की पत्नी जूली उससे अलग सेन्ट्रल कोस्ट के शहर में रहती थी। रॉबर्ट की एक बेटी थी सोफ़िया, शायद मेरी उम्र की ही होगी। गोरा रंग, बिल्ली आँखें, फूलों की तरह खिलती हुई सुंदरता की मालकिन। फ़ैक्ट्री आती तो पैकेजिंग में लगी रहती। कभी हैलो हो जाती। प्रताप उससे फ्रेंडली था तो उससे कभी-कभी बात भी करती। जितनी बात अब तक सोफ़िया से हुई थी, उससे साफ़ ज़ाहिर था कि सोफ़िया नॉर्मल नहीं है। जब हँसती तो हँसती जाती और जब गुस्सा आता तो फ़ैक्ट्री छोड़ कर गाड़ी उठा घर चली जाती। रॉबर्ट उसे मनाता रहता, फिर बुदबुदाता, 'क्या होगा मेरी इस बच्ची का?'

एक बार इसी तरह वो गुस्से में फ़ैक्ट्री छोड़ कर निकली तो रॉबर्ट ने मुझसे उसके साथ जाने को कहा। तो मैं उसके पीछे भागा, 'सोफ़िया रुको, कहाँ जा रही हो?'

सोफ़िया ठिठकी, 'मेरे पीछे मत आओ प्रट' सोफ़िया के मुँह से 'प्रट' सुनना अजीब नहीं लगा क्योंकि सभी मुझे इस नाम से बुलाते थे।

'मगर तुम जा कहाँ रही हो?' मैंने पूछा।

'कॉफ़ी हाउस, वैसे भी नो वन लव्स मी' कहती हुई सोफ़िया कार की ओर बढ़ी।

'क्या मैं तुम्हारे साथ आ सकता हूँ सोफ़िया?' मैंने जोर दिया।

'क्यों क्या तुम्हें भी कॉफ़ी चाहिए? तो ठीक है आ जाओ' सोफ़िया बोली।

मैं उसकी कार में बैठा, सोफ़िया रोने लगी, 'कोई मुझे नहीं चाहता, सब मेरा मज़ाक बनाते हैं। क्या मैं सचमुच पागल हूँ? मैं क्या करूँ?'

मैंने उसका हाथ सहलाया, 'नहीं नहीं, तुम्हारे पिता तुम्हें बहुत चाहते हैं। और हम सब भी।'

सोफ़िया ने अविश्वास से उसे देखा, 'तुम भी?'

शर्माते हुए मैंने कहा, 'हाँ मैं भी, कौन तुम्हें नहीं चाहेगा? कितनी सुंदर हो तुम।'

सोफ़िया ने कार एक गार्डन के सामने रोकी और प्रताप के गले में बाँहें डालते हुए बोली, 'डू यू लव मी प्रट?'

मैंने धीरे से ख़ुद को अलग किया और उसे टालते हुए कहा, 'चलो वापिस फ़ैक्ट्री चलते हैं।'

उधर सोफ़िया का यौवन उफ़ान मार रहा था। तेज साँसों से उठते-गिरते वक्ष प्रताप के मन में हलचल मचा रहे थे। आख़िर वो भी तो इक्कीस साल का ही था। सोफ़िया अचानक आगे आई और मेरे होंठों को चूम लिया।

इससे पहले कि कुछ और होता मैंने ख़ुद को अलग किया और सोफ़िया को समझाया, 'सोफ़िया, यह सब हम शादी के बाद ही करते हैं इंडिया में। चलो वापस चलें।'

सोफ़िया ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों से एक बार मुझे देखा और बात मानकर अलग हट गई। उसे नार्मल और मुस्कुराता देखकर रॉबर्ट बहुत ख़ुश हुआ, बोला, 'प्रताप अब कभी-कभी सोफ़िया को कंपनी दे दिया करो, उसकी माँ तो यहाँ है नहीं और मैं फ़ैक्ट्री में बिज़ी हो जाता हूँ। तुम्हें तो पता है दिमाग़ से भी पूरी तरह मैच्योर नहीं है। भोली-भाली है, उसका ध्यान रख लिया करो। तुम्हारी तनख़्वाह तुम्हें मिलती रहेगी।'

'क्यों नहीं बॉस, मुझसे जो हो सकेगा, ज़रूर करूँगा।' मैंने उसे तसल्ली दी, रॉबर्ट ने मुझे गले लगा लिया।

देखते-देखते यूनिवर्सिटी के दो साल पूरे हो गए थे। मामा, मामी मेरा ध्यान तो रखते, पर छोटे बच्चों के कारण पढ़ाई में खलल पड़ता। मेरे अधिकतर दोस्त फ़्लैट लेकर शेयरिंग में रह रहे थे। आने-जाने में भी वक्त लग जाता था। तो मामा से पूछकर अपने दो दोस्तों के साथ यूनिवर्सिटी के पास ही दो कमरों की एक छोटी सी यूनिट में आ गया। मेरे फ़्लैट में एक दोस्त था जसविंदर, पंजाब का लम्बा चौड़ा हैंडसम लड़का था। लड़कियाँ पटाना और काम निकलवाना उसकी आदत में शुमार था और दूसरा लड़का था डेविड, जो मेरी तरह सीरियस था।

हम तीनों एक ही साथ यूनिवर्सिटी की बस पकड़ते, मैं क्लास के बाद फ़ैक्ट्री में चला जाता। काम के बीच सोफ़िया के साथ गपशप लगा लेता। कभी सोफ़िया मेरे साथ कॉफ़ी शॉप में चली जाती। फिर मैं घर जाकर सो जाता। बस यही रूटीन बन गया था मेरा। नौकरी के पैसे से किराया देता और कुछ पैसे बचाकर माँ-बाप को भी भेज देता। कभी-कभी चिंता सताती कि पढ़ाई के बाद क्या होगा? नौकरी नहीं मिली तो?

जैसे-जैसे चौथे साल का आख़िरी सत्र क़रीब आ रहा था सभी लड़के जॉब के लिए एप्लीकेशन लगा रहे थे।

मैंने भी कई नौकरियों के लिए अप्लाई किया था, परंतु कहीं से भी कोई उत्तर नहीं आया था, जी घबरा रहा था। एक दिन मैं डेविड से बातें कर रहा था कि क्या होगा, परमानेंट रेसीडेंसी मिलेगी या नहीं, खाली हाथ वापस इंडिया जाना पड़ेगा तो बाहर आने और पढ़ाई करने का फ़ायदा क्या? तभी जस अपने कमरे से बाहर आकर बोला, 'खोतों, क्या बातें कर रहे हो? परमानेंट रेज़िडेंट बनना है तो अपना तो सिंपल फ़ंडा है, एक ऑज़ी लड़की पता कर शादी कर लो, पी.आर. तो क्या सिटीजनशिप मिल जाएगी।' वो ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

'पर तू तो इंगेज्ड है न? तूने कहा था कि बड़ी सुन्दर कुड़ी है?' डेविड ने पूछा।

'है तो सही, पर उसे क्या पता चलेगा? आज कोर्ट मैरिज की उधर दो साल बाद डिवोर्स।' जसविंदर हंस रहा था। मुझसे रुका नहीं गया, 'बड़ा कमीना है तू।'

'और तू तो सबसे बड़ा फट्टू है, इन ऑजी लड़कियों के साथ उम्र थोड़ी गुज़ारनी है। मजे मारो और फिर छोड़ दो। और फिर मैं शादी करूँगा अपने चाइल्ड हुड लव से, मेरी स्वीटहार्ट शन्नो रानी से। जो बात उसमें है वो यहाँ की गोरियों में कहाँ।'

'जब उसे पता लगेगा ये सब तो तुम्हें कैसे माफ करेगी।' डेविड की बात सुन कर जसविंदर बोला, 'मना लूँगा अपनी शन्नो को।' बड़े आत्मविश्वास से जस ने कहा।

फिर जाते-जाते पलट कर बोला, 'मैं तो कहता हूँ तुम लोग भी यही करो।'

शीघ्र ही अंतिम परीक्षाएँ भी हो गईं। अब क्या हो? डेविड को नौकरी का ऑफ़र आ गया, जसविंदर ने प्लान के

क्रमशः ..... पृष्ठ 45 पर

कटी नाक का रहस्य

— संदीप अग्रवाल

यक्षिणी की प्रतिमा नीरजा और सुवीर के म्यूजियम में आने वाले दिन से तीन-चार दिन पहले ही गैलरी में लाई गई थी। इससे पहले उसे ओपेन ग्राउंड में डिस्प्ले के लिए रखा गया था। वहीं से गैलरी में लाते हुए, उसकी नाक कहीं टूट कर गिर गई थी। उस समय किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन बाद में जब किसी विजिटर ने इस बात की शिकायत की तो नाक की तलाश शुरू हुई, जो उसी ओपेन ग्राउंड में उग आई घास में छिपी पड़ी थी। यही माना गया कि शायद किसी शरारती दर्शक ने उसे तोड़ दिया होगा। नाक तो मिल गई थी, लेकिन उन दिनों म्यूजियम का प्रमुख कन्जर्वेटर छुट्टी पर था। जब वह लौटा तो उसने नाक की मरम्मत कर उसे प्रतिमा के चेहरे पर इतनी सफाई के साथ वापस लगा दिया कि कोई अंदाजा नहीं लगा सकता था कि कुछ दिनों के लिए वह नाक यक्षिणी के चेहरे को छोड़कर चली गई थी।

सुवीर ने घड़ी देखी। एक बजकर तीस मिनट हुए थे। वह युवा नेता सरस गाँधी का इंटरव्यू कर, उसे अपने न्यूजपेपर के एडिटर को व्हाट्स एप्प कर चुका था और कुछ ही मिनट बाद उनका थम्स अप ईमोजी देखकर समझ गया था कि इंटरव्यू उन्हें पसंद आ गया था। अब उसके पास बाकी का सारा दिन फ्री था। इस दिन का सबसे बेहतरीन इस्तेमाल उसकी नजर में यही हो सकता था कि वह इस वक्त को अपनी क्लोजेस्ट फ्रेंड नीरजा के साथ बिताए।

उसे याद आया कि नीरजा कई दिनों से उससे शहर के सेंट्रल म्यूजियम, जिसे लोकल लोग अजब बंगला कहते थे, दिखाने के लिए कह रही थी। लेकिन, इसके लिए कम से कम चार-पाँच घंटे पास में होने चाहिए थे। फिलहाल सुवीर के पास पर्याप्त वक्त था, तो उसने सोचा कि आज नीरजा को अजायबघर घुमाया जा सकता है। बशर्ते कि उसके पास भी उतना ही खाली वक्त हो। नीरजा एक फ्रीलांस ग्राफिक डिजाइनर थी, जिसके पास कभी बहुत वक्त होता था तो कभी बिल्कुल नहीं।

'देखते हैं, आज कौन से 'कभी' का टर्न है', सुवीर ने सोचा और पॉकेट से मोबाइल निकालकर नीरजा का नंबर डायल करने के लिए फोन को अनलॉक किया, तभी स्क्रीन पर नीरजा के खूबसूरत चेहरे के साथ नीरजा कॉलिंग लिखा हुआ नजर आने लगा। 'क्या बात है, किसी ने सच ही कहा है कि दिल को दिल से राह होती है', वह मन ही मन मुस्कराया और उसने फोन उठा लिया।

''क्या कर रहे हो?'' उधर से चिरपरिचित सुरीली आवाज सुनाई दी, जिसे सुनकर उसकी सारी थकान दूर हो जाया करती थी।

''फ्री हो क्या?''

''नहीं, थोड़ा सा काम पेंडिंग था...बोलो ना, क्या बात है?'' उसने पूछा, ''काम तो मैं शाम को भी निपटा सकती हूँ।''

''कुछ नहीं, आज जल्दी फ्री हो गया था तो सोच रहा था कि कहीं चलते हैं।''

''कहीं यानी?''

''जहाँ तुम कहो?''

''नहीं। तुम मुझे कहीं चलने के लिए कह रहे हो, इसका मतलब है कि तुम पहले से डिसाइड कर चुके हो?'' वह हँसते हुए बोली, ''बोलो ना, कहाँ ले जाने वाले हो मुझे?''

''सही कह रही हो, लेकिन अभी नहीं बताऊँगा'', सुवीर सस्पेंस भरे अंदाज में बोला, ''इसे एक सरप्राइज समझो और तुरंत आकाशवाणी स्क्वायर पहुँच जाओ, मैं तुम्हें वहीं मिलता हूँ।''

''ठीक है, पहुँचती हूँ, 15-20 मिनट में...'' नीरजा ने जवाब दिया और सुवीर के बाय कहने से पहले ही कॉल डिस्कनेक्ट कर दिया।

बात के बीच में ही फोन काट देने की नीरजा की इस आदत से सुवीर को बहुत चिढ़ होती थी, लेकिन उसकी बाकी बातें इतनी अच्छी थीं कि यह छोटी-सी बात कोई खास मायने नहीं रखती थी।

सुवीर ने घड़ी देखी। नीरजा को फोन किए आधा घंटा होने को आया था, लेकिन उसका कोई पता नहीं था। उसे फिक्र सताने लगी कि अब तक तो उसे आ जाना चाहिए था। वह उसे दोबारा कॉल लगाने लगा। रिंग बज रही थी पर वह फोन नहीं उठा रही थी। 'शायद ड्राइव कर रही होगी, इसलिए फोन नहीं उठा रही।' उसने खुद को तसल्ली दी और अपने मोबाइल की फोटो गैलरी में नीरजा नाम का फोल्डर खोलकर नीरजा के फोटो देखने लगा, जो उसने उसकी डीपीज के स्क्रीन शॉट ले-लेकर इकट्ठा किए थे... किसी में मुस्कराती नीरजा, किसी में इठलाती नीरजा, जुल्फें लहराती नीरजा, इतराती नीरजा, बत्तख की तरह होंठ निकाल कर पाउट करती नीरजा, जीभ निकाल कर मुँह चिढ़ाती नीरजा...हर नीरजा उसे एक नई ही नीरजा नजर आती थी।

''इतनी देर से क्या देख रहे हो?'' अचानक पीछे से आई नीरजा की आवाज सुनकर वह एकदम से चौंक गया।

''तुम्हें...''

''हम्म'', वह उसके पास आकर उसका कान उमेठते हुए बोली, ''इतनी दीवानगी अच्छी नहीं है बच्चू।''

''नीरजा, तुम अपनी गाड़ी यहीं पार्क कर दो।'' वह बोला, ''एक ही गाड़ी में चलते हैं।''

''ठीक है, नीरजा ने अपनी एक्टिवा आकाशवाणी की पार्किंग में पार्क कर दी और उसकी बाइक पर उसके पीछे आकर बैठ गई।

''अच्छे से गाड़ी चलाना, मेरा इंश्योरेंस नहीं है।'' वह बोली। तब तक सुवीर बाइक स्टार्ट कर चुका था।

आकाशवाणी से अजब बंगला बामुश्किल एक किलोमीटर की डिस्टेंस पर रहा होगा। पाँच ही मिनट में वे उसके गेट के सामने थे, जिसके गेट पर बड़े-बड़े अक्षरों में मध्यवर्ती संग्रहालय लिखा हुआ था।

''ये कौन सी जगह है?'' वह हैरानी से बोली। शायद वह मध्यवर्ती संग्रहालय का अर्थ नहीं निकाल पाई थी।

''वही जगह, जहाँ तुम इतने दिनों से आने के लिए बोल रही थी।'' सुवीर ने जवाब दिया और गाड़ी को पार्किंग में पार्क करने लगा।

टिकट विंडो से टिकट लेकर वे अंदर पहुँचे, जहाँ बामुश्किल दो-तीन लोग ही थे। वे म्युजियम की गैलरियों में लगे डिस्प्ले केसों को देखते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे। किसी गैलरी में जानवरों के टैक्सीडरमाइड (जानवरों के शरीर को स्टफिंग और माउंटिंग के जरिए प्रीजर्व करने की प्रक्रिया) मॉडल्स सजे थे, जो एकदम असली जंगल का आभास करा रहे थे, तो किसी में सजे प्राचीन काल के अस्त्र-शस्त्र और जिरह बख्तर देखने वाले को एक अलग संसार में ले जाते थे। एक गैलरी प्राचीन वस्त्र-विन्यास को समर्पित थी तो एक में देश के अलग-अलग आदिवासी क्षेत्रों के जनजीवन की झलकियाँ प्रस्तुत की गई थीं। एक ओर गैलरी में सभी प्रकार के वाद्ययंत्र प्रदर्शित थे और पार्श्व में बजता हल्का-हल्का संगीत माहौल को काफी रूमाली बना रहा था। अचानक सुवीर की नजर नीरजा पर पड़ी। गैलरी की मद्धिम रोशनी में वह बहुत खूबसूरत लग रही थी। सुवीर एकटक उसे देखने लगा।

''क्या देख रहे हो?'' वह उसे प्यार से झिड़कते हुए बोली, ''यहाँ जो देखने आए हो वही देखो।''

''वही तो देख रहा हूँ।'' सुवीर ने शरारत से मुस्कराते हुए कहा।

''नो फ्लर्टिंग...'' नीरजा ने प्यार से उसे झिड़का।

''कहाँ लिखा है?'' सुवीर ने पूछा।

''व्हाट?'' नीरजा शायद उसकी बात सुन नहीं पाई थी।

''आई मीन, यहाँ नो स्मोकिंग, नो मोबाइल, नो फोटोग्राफी जैसी सारे रिस्ट्रक्शंस की पट्टियाँ लगी हैं, लेकिन नो फ्लटिग कहीं नहीं लिखा है?''

''लिखा है ना?''

''कहाँ?''

''यहाँ...'' नीरजा ने अपने गले में पड़े मंगलसूत्र की तरफ इशारा करते हुए कहा और खिलखिलाकर हँस पड़ी।

सुवीर का चेहरा उतर गया। नीरजा की हाजिरजवाबी ने उसे खामोश कर दिया था।

''क्या हुआ?'' नीरजा ने प्यार से उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा।

''कुछ नहीं...'' वह टालते हुए बोला, ''उधर चलते हैं।''

वह एक डिस्प्ले केस के सामने खड़े थे, जिसमें तांबई रंग की एक नग्न यक्षिणी की प्रतिमा प्रदर्शित थी। प्रतिमा की बनावट बेहद सुगढ़ थी और रंग इतना स्वाभाविक कि अगर कोई उसके नीचे एक सफेद पट्टिका पर लिखी डिटेल्स न पढ़े तो यही समझे कि यह प्रतिमा पत्थर से नहीं, बल्कि ताँबे से बनी है। डिटेल्स के मुताबिक यह प्रतिमा 150 से 200 ई.पू. के मौर्य शुंग काल की थी और कुछ साल पहले बिहार के किसी गाँव में एक उत्खनन के दौरान मिली थी। प्रतिमा वाली यक्षिणी ने कमर से नीचे घुटनों तक एक मेखला, कायाबंध और अंतरीय धारण किए हुए थी, लेकिन उसने शरीर के नाभि से ऊपर एक कंठ हार के अलावा कुछ और नहीं पहना था। उसकी कलाईयों के कंगन और पैर के कड़े बता रहे थे कि स्त्री का आभूषणों के प्रति आकर्षण कितना प्राचीन है। उसके वक्ष की बनावट बेहद सुडौल थी और आँखों व होठों की संरचना बहुत सजीव। तभी सुवीर की नजर उसकी नाक पर पड़ी, या यूँ कहें कि नाक वाली जगह पर पड़ी, क्योंकि नाक तो वहाँ थी ही नहीं। एक छोटा सा गड्ढा दिखाई दे रहा था।

''बड़े गौर से देख रहे हो?'' नीरजा ने उसे कोहनी मारी।

''मैं इसकी नाक को देख रहा था...'' उसने सफाई दी।

''पर तुम्हारी आँखों का ऑप्टिकल फोकस तो कहीं और ही है।'' नीरजा ने उसे छेड़ा।

''तुम डिजाइनर लोग भी ना...'' सुवीर शिकायती अंदाज में बोला, ''यकीन करो, मैं उसकी नाक को ही देख रहा था।''

''बकवास मत करो, नाक तो उसकी है ही नहीं, तुम कैसे नाक देख रहे थे?''

''वही तो...''

''वही तो क्या?''

''आई मीन, अगर इसकी नाक नहीं है तो इसकी कोई वजह भी होगी?''

''जाके कटवा आई होगी कहीं...'' वह नकली गुस्सा दिखाते हुए बोली, ''तुम्हें क्या?''

''अगर कहीं नाक कटवाकर आई होती तो इसकी नाक सलामत होती, कोई भी अपनी करतूतों से दूसरे की नाक कटवाता है, अपनी नहीं।'' उसने अपना भाषा ज्ञान बघारना शुरू कर दिया।

''ज्यादा जर्नलिस्टिक ज्ञान मत पेलो....'' वह उसे चुनौती देते हुए बोली, ''शूर्पणखा को भूल गए क्या? उसने अपनी नाक खुद नहीं कटवाई थी?''

एक बार फिर सुवीर नीरजा की हाजिर जवाबी के आगे नतमस्तक हो गया।

''ये क्या कर रहे हो?'' नीरजा ने उसे मोबाइल से यक्षिणी का फोटो खींचते हुए देखकर टोका, ''देखते नहीं, फोटो खींचना मना है लिखा है?''

''जर्नलिस्ट खींच सकते हैं...'' वह फोकस सेट करते हुए बोला।

''यहाँ तुम टूरिस्ट हो, जर्नलिस्ट नहीं।''

''सर, फोटो मत खींचिए'', अचानक जिन्न की तरह प्रकट हुए सुरक्षा गार्ड ने सुवीर को टोका, "अलाउ नहीं है।''

''आई एम फ्रॉम प्रेस...'' उसने गार्ड पर रोब डालने की कोशिश की।

''तो भी आप क्यूरेटर साहब से परमिशन लेकर ही फोटो खींच सकते हैं।'' गार्ड ने शांति से जवाब दिया।

सुवीर ने कोई जवाब नहीं दिया, क्योंकि वह तब तक अपना काम कर चुका था। उसने नीरजा की तरफ देखा, जो

क्रमशः ..... पृष्ठ 48 पर

एक नई सुबह

— मंजुश्री

उस रात अविनाश बहुत बेचैन था। पहली बार उसका हाथ उठा था। बहुत बुरा लग रहा था उसे। रह-रह कर अपने को कोस रहा था। मेरा मन हो रहा था कि उसे बाहों में भर लूँ पर अविनाश न जाने क्या सोचे। हम दोनों के बीच अब भी एक फ़ासला था। अक्सर मेरा मन होता मैं उससे लिपट कर ख़ूब रोऊँ और वह मेरे बाल सहलाता रहे। हम दोनों एक दूसरे से सब कह-सुन डालें। कमरे में फैली उसकी हल्की ख़ुशबू हर समय उसके यहीं कहीं मेरे आस-पास होने का एहसास दिलाती और मेरी बेचैनी बढ़ाती। मैं उसको अपने भीतर बहुत गहरे तक महसूस करने लगी हूँ।

पूना.....

प्रिया निंबालकर....

अभी मैंने देहरी के भीतर क़दम बढ़ाया भर था कि दालान के सामने वाले कमरे का दरवाज़ा धड़ाम से मेरे मुँह पर इतनी ज़ोर से बंद हुआ कि मेरे क़दम वहीं थम गए। अचकचा कर गिरते-गिरते बची। नज़र उठाई तो सामने बंद होते दरवाज़े के उस पार मुझे घूरते हुए बिखरे बालों वाली एक सोलह-सत्रह साल की लड़की का चेहरा दिखाई दिया, ज़रूर वही होगी...उसके बारे में सुना तो था ही। तुरंत पूजा की थाली बगल में खड़ी एक बुज़ुर्ग महिला को थमा कर अविनाश की माँ उस दरवाजे को खुलवाने के लिए ज़ोर-ज़ोर से भड़भड़ाने लगीं, यहाँ तक कि मेरी बगल में खड़ा मेरा पति भी मेरे पल्लू से गाँठ में बँधे पटके को फेंककर बिना मेरी चिंता किए उसी तरफ़ भागा और मैं हतप्रभ-सी वहीं खड़ी रह गई। पूरे माहौल में एक अजब-सा सन्नाटा छा गया। सब औरतें आपस में खुसर-पुसर करते हुए इधर-उधर देखने लगीं। तभी पूजा की थाली थामे उस बुज़ुर्ग महिला ने मेरी पीठ पर हाथ रखा और मुझे धीरे से अंदर लेकर एक कुर्सी पर बिठा दिया। अचानक हुई इस घटना के कारण शर्म और अपमान से मेरा चेहरा लाल हो गया और आँखें डबडबा आईं।

मैंने धीरे से नज़र उठाकर देखा कुल मिलाकर आठ-दस औरतें होंगी। मोहल्ले वाली ही होंगी रिश्तेदार तो कोई लग नहीं रही थीं। वैसे भी इस शादी में दोनों ही तरफ़ से कोई टीम-टाम तो हुआ नहीं था, घर के दो-चार लोग और कुछ मोहल्ले वाले...बस मानो शादी न हो कोई बेगार निपटाया जा रहा हो। हाँ बेगार ही तो था जो जैसे-तैसे निपट गया। बूढ़ी नौकरानी ने भैया से कहा भी था..

'ये क्या भैया...शादी क्या रोज़-रोज़ होती है। घर में कुछ तो रौनक होनी चाहिए। बिटिया की तो पहली शादी है ना...' पर सब वैसे ही निपट गया।

सब औरतें मुझे ही देख रही थीं क्या बोलती भला... बोलने लायक था भी क्या। बड़ी विचित्र-सी स्थिति हो गई थी। धीरे-धीरे सब इधर-उधर होने लगीं, तभी उनमें से किसी ने मुझे एक गिलास पानी देते हुए कहा कि मैं बगल वाले कमरे में बैठ जाऊँ और अगर थक गई होऊँ तो बाथरूम में हाथ-मुँह धोकर ताज़ा हो सकती हूँ।

मैंने चुपचाप बाथरूम में जाकर मुँह पर ठंडे पानी के छींटे मारे और सामान्य होने की कोशिश करने लगी। एक तो दिन भर की कार यात्रा..थकान और भूख से पेट में अजब गुड़गुड़ाहट हो रही थी, शायद नई जगह के कारण भी...उस पर यह नया नाटक। कितनी देर तक मैं वॉशबेसिन पकड़े शीशे के सामने खड़ी रही। सामने शीशे में दिखता उड़ा हुआ चेहरा मेरा अपना लग ही नहीं रहा था। हवाइयाँ उड़ रही थीं। अपने इस अप्रत्याशित स्वागत से मैं बुरी तरह हिल गई थी। तमाम शंकाएँ-कुशंकाएँ सिर उठाने लगीं। बाथरूम से बाहर निकली तो वही बुज़ुर्ग महिला कमरे में दिखाई दीं जिनके हाथ में पूजा की थाली थमा दी गई थी। बोलीं.....

'चलो..तुम कपड़े बदल लो। मैं कुछ खाने के लिए भिजवाती हूँ..' फिर चारों तरफ़ देखते हुए बोलीं

'अरे! तुम्हारा सामान नहीं उतारा क्या किसी ने अब तक गाड़ी से.. ? रुको अभी भिजवाती हूँ।'

मुझे अपनी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हुए बोलीं—'अरे मैं अविनाश की मौसी हूँ। वे दोनों तो पंकजा को मनाने में लगे हुए हैं। बड़ी गुस्सैल है और थोड़ी ज़िद्दी भी...बिना माँ की बच्ची बेचारी...'

मेरा हाथ पकड़ कर बिस्तर पर बिठाते हुए बोलीं..

'आओ बैठो....मैं तुम्हारा सामान और कुछ खाने के लिए भिजवाती हूँ। सब ठीक हो जाएगा धीरे-धीरे... घबराओ मत...'

इतनी देर बाद इस अनजान घर में किसी के दो प्यार भरे बोल सुनकर आँखें भर आईं मेरी। गले में अटकते थूक के गोले को गटकते हुए मैंने उनके पाँव छुए। उन्होंने आशीर्वाद दिया और फिर चली गईं।

मैं कमरे की खिड़की पर खड़ी सोचने लगी कि क्या सोचकर मैं इस अपरिचित जगह पर सब कुछ छोड़कर चली आई हूँ। ये घर, ये लोग, ये रिश्ते सब तो अपरिचित हैं। बीच में कहीं भी किसी से जुड़ाव नहीं, लगाव नहीं। कहीं किसी भी रिश्ते में नहीं। कोई सपने नहीं, पुलक नहीं, उछाह नहीं, उस व्यक्ति के लिए भी नहीं जिसके सहारे मैं सब कुछ छोड़कर चली आई हूँ। झटका लगा ये क्या किया मैंने! क्या वाक़ई मेरा क़दम सही था? पर अब तो क़दम उठा ही लिया है मेरा ही तो निर्णय था...वहाँ भी तो कौन था अपना... दिनोंदिन अपरिचय या कहें कि दूरियाँ बढ़ती ही जा रही थीं। अब बस लोग और जगह बदल गई है। नरेन भैया जरूर कभी-कभी हाल पूछ लेते थे, भाभी तो बस यूँ ही.....यूँ ही मतलब..! क्या उन्हें भी ऐसा ही लगता रहा होगा जैसा मुझे लग रहा है इस समय अपरिचित सा..! शायद ऐसा ही हो। फिर भी भैया से उनकी शादी तो बड़ी धूमधाम और चाहना से हुई थी। सपने और प्यार था। समझौता तो कतई नहीं। पर उनके लिए हम कहाँ आज तक अपने हो पाए। अम्मा भी तो कितनी स्वार्थी हो गई थीं बाद में। ठिठकी-सी खड़ी मैं जैसे अपने आप से बातें कर रही थी।

जानबूझकर उठाए गए अपने इस क़दम पर इतनी हैरानी और सोच विचार क्यों...! मुझे तो पहले से थोड़ा बहुत मालूम था फिर यह उहापोह क्यों...! कितने दिनों से अपने मन को तैयार कर रही थी पर सोचने और करने में बहुत फ़र्क़ है... मेरी और अविनाश की कोई ख़ास जान-पहचान नहीं थी जो कहीं कोई उमंग जागती, सपने बुने जाते...फिर उम्र के इस पड़ाव तक पहुँचते-पहुँचते सपनों को सच्चाइयों ने पीछे धकेल दिया था और बस ले लिया निर्णय एक-दो मुलाकातों में...कुछ ज्यादा सोचा नहीं। पर क्यों नहीं सोचा ज़िंदग़ी के इस अहम फ़ैसले के बारे में!! बिस्तर पर अनमनी-सी लेटी सोच रही थी। तो क्या मैं वाक़ई अकेलेपन से घबराकर किसी का मजबूत कंधा ढूँढ रही थी! पर फिर अविनाश ही क्यों..!! भैया का मित्र था इसलिए या इस उम्र में एक बसा-बसाया घर पाने की चाह और अपने पर कुछ ज्यादा ही भरोसा...! पता नहीं क्या था..आँखों की कोर से आँसू की बूँदें लुढ़कने लगीं। तब क्यों नहीं कोई निर्णय लिया जब पापा बार-बार कहते थे—'बेटा शादी कर ले, तो मैं भी मुक्त हो जाऊँ। मेरे जीते जी तू अपने घर चली जाए।'

कितना भड़की थी मैं.. 'क्यों क्या यह मेरा घर नहीं है। मैं नौकरी करना चाहती हूँ, घूमना चाहती हूँ। शादी, शादी, शादी जैसे यही है सब कुछ...मैं इस चक्कर में अभी नहीं फँसना चाहती।'

माँ भी बार-बार समझातीं और फिर अचानक एक दिन पापा नहीं रहे और माँ एकदम टूट गईं सब कुछ एक झटके में बदल गया। माँ टूटी हुई बेल की तरह एक तने से छिटककर दूसरे तने से चिपक गईं। शुरू में भैया ने एक-आध बार माँ को अपने साथ चलने के लिए कहा भी फिर छोड़ दिया। माँ अक्सर कहतीं... 'मेरा क्या है एक दो साल की मेहमान हूँ।

तू अपना घर बसा ले फिर दूसरे ही पल रोने लगतीं...पर तू तो जानती है न मेरा नरेन की बहू के साथ गुजारा होना मुश्किल है, तू चली जाएगी तो मेरा क्या होगा, सोच-सोचकर मेरे कलेजे में हौल उठने लगता है।'

'मैं कहाँ जा रही हूँ माँ.. 'मैं उन्हें ढाढ़स बँधाती।

पिताजी के गुज़र जाने के बाद माँ बारह साल ज़िंदा रहीं और मैं उम्र की एक-एक सीढ़ी चढ़ती चली गई और अब... ..ये मैं क्या सोचने लगी हूँ क्या मैं माँ के जल्दी चले जाने की कामना करने लगी थी? ये क्या हो गया है मुझे? मैं कब से इतनी ख़ुदगर्ज़ हो गई? मुझे ख़ुद की सोच पर शर्म आने लगी। उनकी अपनी वजह थी फिर मुझ पर हक भी तो था उनका। मैं कैसे इतनी ग़ैर-ज़िम्मेदाराना बात सोचने लग गई। मेरा मन उमड़ने-घुमड़ने लगा। लगा एक बार बुक्का मार कर ज़ोर से रो पड़ूँ सब कुछ बाहर आ जाए। बीता सब आँखों के सामने घूमता रहा और न जाने कब आँख लग गई।

सुबह आँख खुली तो देखा बिस्तर पर दूसरी तरफ़ अविनाश सो रहा था। रात वह कब आया कुछ पता ही नहीं चला। यह हमारी पहली रात थी जब हम दो अजनबी एक ही बिस्तर पर बिना एक भी शब्द बोले सोए थे। एक तरह से अच्छा ही हुआ बात होती तो मैं गुस्से में न जाने क्या कह जाती या फिर रोने लगती।

कमरे की खिड़की बाहर की तरफ़ खुलती थी, ज़रा-सा पर्दा खिसका कर देखा तो अभी सुबह होने वाली थी थोड़ा अंधेरा था हवा अच्छी चल रही थी। बाउंड्री वॉल के उस तरफ़ सड़क के पार चाय की छोटी-सी दुकान पर थोड़ी सी हलचल थी। दुकान वाला तैयारी में जुटा था दो-तीन लोग चाय के इंतज़ार में खड़े बीड़ी फूँकते बतिया रहे थे। सड़क पर ज़्यादा चहल-पहल शुरू नहीं हुई थी। इक्का-दुक्का गाड़ियाँ सड़क पर आ-जा रही थीं। धीरे से बाथरूम का दरवाज़ा खोलकर मैं तैयार होने लगी। अब तक कमरे के बाहर से कुछ आवाज़ें सुनाई देने लगी थीं। बाहर निकली तो देखा दालान में पड़ी डाइनिंग टेबल पर माँ जी और वह लड़की चाय पी रही थीं। मुझे देखते ही वह हाथों की मुटिठयाँ बाँधकर नथुने फड़काती उठ खड़ी हुई और बिस्किट की प्लेट को हाथ से धक्का देकर नीचे गिराते हुए अपने कमरे की ओर भागी।

'तुम क्यों आई हो यहाँ। हमारी जिंदगी में दखल देने.. जाओ यहाँ से...निकलो बाहर'

'पंकजा....यह क्या बचपना है। इधर आओ...' माँजी ने आवाज़ दी पर उसने सुन कर भी अनसुना कर दिया और ज़ोर से कमरे का दरवाज़ा बंद कर लिया। मुझे बहुत गुस्सा आया अभी चौबीस घंटे भी नहीं हुए हैं और यह दूसरी बार... और वह भी सुबह-सुबह...

मैं दाँत पीसते हुए चुपचाप खड़ी रह गई। तब तक मेरी चाय भी आ गई थी। वहीं पास में दस-बारह साल का उसका भाई एक कुर्सी पर बैठा ज़ोर-ज़ोर से हाथ-पाँव हिला रहा था। सामने रखे खाने को आधा खा रहा था आधा गिरा रहा था। मेरा मन ख़राब हो गया। यह सही था कि मुझे स्थिति की थोड़ी बहुत जानकारी थी पर उसका सामना ऐसे होगा इसकी कल्पना नहीं की थी।

'आओ बैठो... चाय पियो। सब ठीक हो जाएगा धीरे-धीरे...असल में अपनी माँ की जगह किसी और को देखना..'

'समझती हूँ पर क्या बच्चों से पहले बात नहीं की थी...' मैंने धीरे से पूछा।

'की थी अविनाश ने...मैंने भी की थी...पर अब वह बच्ची नहीं रही...समझाना कठिन है। प्रणव को तो वैसे भी कुछ समझ नहीं आएगा।'

'मतलब..'

'उसे जल्दी चीज़ें समझ नहीं आतीं। थोड़ा मंदबुद्धि है, उसे तो रोज़मर्रा के सभी कामों में भी सहायता करनी पड़ती है। दरअसल डिलीवरी के समय कुछ कॉम्पलीकेशन हो गए थे जिससे ऑक्सीज़न की कमी का दिमाग़ पर असर पड़ गया।' मेरी तरफ़ देखते हुए पूछा उन्होंने...'अविनाश ने बताया तो होगा तुम्हें...'

'हाँ.. थोड़ा बहुत...' तभी प्रणव के हाथ से खाना नीचे गिर गया और वह आँ-आँ करता उसे उठाने की कोशिश करने लगा। मेरा तो मूड ही उखड़ गया था।

घर नहीं पागलखाना लग रहा था। हर तरफ एक अलग-सी अव्यवस्था। कैसे रह पाऊँगी यहाँ! क्या होगा! ये क्या कर डाला मैंने..? इसकी कल्पना की थी क्या? क्या सोचा था कि धड़ल्ले से सबकी ज़िंदगियों में घुस जाऊँगी और खुल जा सिम-सिम बोलते ही दिलों के बंद दरवाज़े खुलते जाएँगे और बिना मेहनत के सब चुटकी बजाते ही जादू से ठीक हो जाएगा!!

क्रमशः ..... पृष्ठ 53 पर

काले घोड़े

— मुहम्मद सलमावी (मिस्र के लेखक)

देश से निष्कासन के दौरान मिस्र के एक लेखक की आत्महत्या की कहानी

— डॉ. मुहम्मद कुतुबुद्दीन (अनुवादक)

लंदन की जिंदगी में मैं इतना रच-बस गया था कि मिस्र का दृश्य धीरे-धीरे पीछे छूटने लगा। हालाँकि वह मेरे अंतर्मन में मौजूद था जो समय-समय पर सामने आता रहता था। जब मैंने उपन्यास लिखना शुरू किया तो महसूस हुआ कि मैं लंदन के बजाय अपने-आप मिस्र और मिस्र में बिताई हुई जिंदगी के बारे में लिख रहा हूँ। मैंने अभी शुरुआती अध्याय ही लिखा था कि तक़दीर एक बार फिर मेरा दरवाजा खटखटाने लगी और मुझे देश छोड़ने का आदेश दे दिया गया। इस बार इस दृश्य में चचा रऊफ नहीं थे और न ही बंदर थे, न तो भावनाएँ थीं और न कोई मजाक़ बल्कि वहाँ सच्चाई थी जिन्होंने बेरहमी से मुझे दबोच लिया था।

यह मेरी डायरी का अंतिम अध्याय है, क्योंकि आज मैं अपनी जिंदगी ख़त्म कर दूँगा। मेरा सर गुब्बारे की तरह फूला जा रहा है और आज पहले की तरह कलम पर मेरी अंगुलियों की पकड़ भी मजबूत नहीं है बल्कि कलम ही उन अंगुलियों का रुख़ मोड़ रहा है और अपनी मर्जी से उन्हें चला रहा है, मेरे रात और दिन की डायरी में जरूरी बातें मुझसे लिखवा रहा है। अब अंत समय आ चुका है और मैं उसके सामने बेबस हूँ। मैंने थोड़ी शराब पी ली है क्योंकि बगैर मदहोशी के मैं यह कदम नहीं उठा सकता और मुझे आशंका है कि पूरे होश व हवास के साथ उसे अंजाम नहीं दे सकता। यह कोई बुजदिली और आगे-पीछे सोचने की बात नहीं है। होश व हवास इंसान को सोचने और बार-बार विचार-विमर्श करने पर मजबूर करता है और मैं तो जरूरत के मुताबिक विचार कर चुका हूँ अब फैसला लेने का समय आ गया है।

मैंने दिसंबर की इस सर्द रात में शराब के साथ-साथ नींद की दस गोलियाँ भी खा ली हैं। कहा जाता है कि शराब के साथ नींद की गोलियों का असर दो गुना हो जाता है। इस शीशी में छब्बीस गोलियाँ हैं। इनमें से चार गोलियाँ मैंने केवल इस कारण ली हैं क्योंकि डॉक्टर ने उन्हें अनिद्रा की दवा के तौर पर लेने के लिए कहा था। लेकिन यह सारी गोलियाँ मैं एक बार में नहीं खाऊँगा ताकि मैं इस आख़िरी अध्याय को पूरा कर सकूँ। सम्भव है कि मैं उल्टी कर दूँ और बाक़ी गोलियाँ न लूँ। लेकिन मैं यह नहीं चाहता। मैं अटल फैसला लेता हूँ। मैं सारी गोलियाँ निगल जाऊँगा। यह शाश्वत शांति और आराम की गोलियाँ हैं। मैं बिना किसी झिझक के साबित क़दमी के साथ मौत की ओर बढ़ रहा हूँ। मैंने सोचा कि उस दिन के जश्न में अपनी जिंदगी ख़त्म करूँ जिस दिन इस दुनियाँ में मैं आया था, यानी अपने जन्मदिन के उत्सव पर जिसमें कुछ दिन ही बाक़ी हैं। लेकिन मैं इससे ज्यादा इंतजार नहीं कर सकता, न एक दिन और न ही एक घंटा। वह घड़ी आ चुकी है और अब मुझे कूच करना है।

किसी के मन में यह प्रश्न आ सकता है कि उस पल को मैं डायरी में लिखने का इच्छुक क्यों हूँ? लेकिन यह मेरी जिंदगी की महत्वपूर्ण घटनाओं पर आधारित डायरी

है जिसकी सबसे बड़ी घटना यह मौत होने वाली है, तो फिर कैसे मैं इसको शामिल न करूँ? आख़िरी अध्याय तक मुझे अपने जीवन की कहानी पूरी करनी है। मेरा अध्ययन बताता है कि इंसानों के एक समूह का व्यवसाय मरे हुए लेखकों की जिंदगी को पूरा करना है। वह उस कमी को पूरा करना चाहते हैं जिसे लेखक अपने पीछे छोड़ जाता है। जैसे वह कहते हैं कि लेखक ने एक जानलेवा बीमारी के कारण आत्महत्या कर ली या बचपन में खोए हुए माँ की प्यार की तलाश में उसने महिलाओं से इश्क़ में अपनी जान दे दी। लेकिन मैं नहीं चाहता कि मेरी जिंदगी बच्चों की परीक्षा में आने वाले सवाल "ख़ाली जगह भरें" की तरह हो। मैं अपने देश का सबसे बड़ा लेखक नहीं हूँ। न मैं 'अक्काद' हूँ, न 'ताहा हुसैन' और न ही 'तौफ़ीक़ अल हकीम'। लेकिन मैंने अपने इकलौते उपन्यास के कारण यहाँ लंदन में साहित्यिक स्थान हासिल किया है। मैंने उसे प्रकाशित किया और विभिन्न भाषाओं में उसका अनुवाद हुआ है। इसलिए अब मेरा नाम दुनियाँ भर में मशहूर हो चुका है। मेरी आत्महत्या की खबर यकीनन साहित्य की दुनियाँ में दिलचस्पी के साथ सुनी जाएगी। इसलिए मैं अपनी डायरी में उस जगह को ख़ाली क्यों छोड़ूँ जबकि मौत अचानक मुझे आकर दबोच चुकी है और ऐसा लग रहा है कि मौत के फरिश्ते ने ही मेरे कूच का समय चुना है। मैं अपनी कहानी खुद पूरी करूँगा। बगैर ख़ाली जगह छोड़े, जिन्हें मेरे बाद कोई दूसरा पूरा करे। कितनी ही बार शुद्ध किए उपन्यास को मैंने पूरा करना चाहा, लेकिन अफसोस कि अधूरे बच्चे की तरह उस अधूरे उपन्यास को हस्तलिपि की शक्ल में इस डायरी के साथ छोड़ जाऊँगा।

मैं अब आराम से और गोलियाँ निगल सकता हूँ...दो... चार...छह...आठ...नौ गोलियों को मैंने शीशी से निकाला और शराब के साथ निगल गया।

इस सर्दी की तरह चालीस सख़्त सर्दियों के मौसम गुजर गए, जब मैंने मिस्र के 'अलेक्जेंड्रिया' शहर के एक बड़े कॉप्टिक परिवार के यहाँ जोरदार बारिश बरसती रात में आँखें खोली। मेरी माँ कराहती रही, मूसलाधार बारिश होती रही और डॉक्टर नहीं आया। यहाँ तक कि मेरी माँ ने बगैर किसी सहारे के मुझे जन्म दे दिया। अब उनकी चीखें रुक गई थीं और मेरी चीखें शुरू हो गई थीं।

पिता का निधन मेरे बचपन ही में हो चुका था और मेरा उन्हें देखना न देखने के ही बराबर था। वह कैसे थे? मेरे लिए यह बताना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है। जब मैं आठ साल का हुआ, तो मेरी माँ ने दूसरे आदमी से शादी कर ली। अब मैं उनकी ममता से भी वंचित हो चुका हूँ। वह मेरी जिंदगी से ऐसे निकल चुकी है कि उनके बारे में कुछ पता न चल सका। अलेक्जेंड्रिया में उनका परिवार और 'काहिरा' में मेरे पिता का परिवार, दोनों फर्निचर के बेकार टुकड़े की तरह मुझे बाँटने लगे। आख़िर में उन लोगों ने मुझे अपनी खाला "नादिरा" के पास छोड़ दिया जो अपने इकलौते बेटे के पलायन कर जाने और पति के निधन के बाद अकेली रह रही थी। लेकिन वह भी मुझे ज्यादा दिनों तक बर्दाश्त नहीं कर सकीं और मुझे 'विक्टोरिया कॉलेज' के स्कूल में दाखिल कर दिया। वहाँ 'हुसैन बिन तलाल' जो बाद में जॉर्डन के बादशाह हुए, 'अदनान खाशुकजी', 'यूसुफ शाहीन', 'उमर शरीफ' और अन्य छात्र मेरे साथी बन गए। स्कूल ने मेरी जिंदगी में एक मौलिक विरोधाभास पैदा कर दिया और विरोधाभास ही मेरी जिंदगी की नियति बन गई क्योंकि मैंने अच्छी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। शेक्सपियर के ड्रामे, डिकेंस, शार्ले ब्रांट और टॉम्स हार्डी के उपन्यासों को पढ़ा। परन्तु मैं अंग्रेजों को नापसंद करता था और अपने साथियों के साथ विरोध प्रदर्शन में निकलता था। उनके ख़िलाफ नारे लगा कर अपने वतन की आजादी की मांग करता था।

अंग्रेजी साहित्य के प्रोफेसर श्री 'ग्रिफेट' मेरे सबसे अच्छे शिक्षक थे। अंग्रेजी भाषा में मेरी उत्कृष्टता और अच्छी समझ-बूझ की हमेशा प्रशंसा करते थे। मगर जब भी उनको पता चलता कि मैं प्रदर्शन में उनके मुताबिक़ 'आम लोगों' के साथ निकलता हूँ, तो मुझे डाँटते और इन प्रदर्शनों को 'जंगल राज' का नाम देते थे। वह मुझसे हर बार कहते "बेटे! अपनी पढ़ाई पर ध्यान दो और राजनीति से दूर रहो वरना स्वयं को बर्बाद कर दोगे और कहीं के न रहोगे, न पढ़ाई में और न राजनीति में।"

जब मेरी खाला 'नादिरा' अपने बेटे के पास स्विट्जरलैंड चली गई और हमेशा के लिए अपने देश को छोड़ दिया तो मैं काहिरा में उसी स्कूल की एक शाखा में चला गया। मैं हफ्ते के छह दिन स्कूल में गुजारता था और सातवें दिन सारे छात्र हफ्ते के आख़िर में छुट्टी का दिन बिताने के लिए अपने रिश्तेदारों के पास चले जाते थे, लेकिन मैं बाहर से आए हुए छात्रों के साथ रहता जिनका मिस्र में कोई रिश्तेदार नहीं था कि उनके यहाँ जाते। एक बार हम लोग हफ्ते के आख़िर में छुट्टी के दिन 'इस्माइलिया' में मुक्केबाजी की रिंग के पास बैठ कर आने वाले सप्ताहांत की छुट्टी बिताने का प्लान करने लगे ताकि हम काबिज फौजियों के ख़िलाफ जारी प्रदर्शन में भाग ले सकें। जब छुट्टी का दिन आया तो हम इस्माइलिया में अंग्रेजी फौज के केंद्र के सामने खड़े होकर अपनी शानदार अंग्रेजी में नारे लगा रहे थे, "तुम लोग हमारे देश से निकल जाओ।" और हम दूर से फौजियों पर कंकरियाँ और मिट्टी फेंक रहे थे। वह हमारे सामने ख़ामोश बेजान खड़े थे, मानो वह लोग 'मैडम तुस्साद संग्रहालय' में मोम की प्रतिमा हों। दूसरे दिन से स्कूल आकर कक्षा में अंग्रेजी साहित्य की विशेष चीजें पढ़ने लगे और ग्रेट ब्रिटेन के इतिहास का अध्ययन करने लगे।

मुझे अब भी वह मशहूर प्रदर्शन याद है जिसमें फिरंगियों के वफादार और काहिरा के शासक 'सलीम जकी पाशा' की हत्या हुई थी। अब मैं उन दिनों स्कूल से निकल कर मेडिकल कॉलेज में दाखिला ले चुका था जहाँ अभी कुछ ही दिन हुए थे, उस समय फिलिस्तीनी युद्ध के बाद शांति वार्ता जनता के गुस्से का विषय बन चुका था। वह 4 दिसंबर 1948 का दिन था। मुझे अच्छी तरह याद है कि उस दिन मैंने मौत को पहली बार अपनी आँखों से देखा था। हम लोग कॉलेज के आँगन में जमा हुए और हमारे निकलने से पहले ही सलीम जकी अपने नेतृत्व में अचानक हथियार से लैस फौजियों को लेकर आ गए जो छात्रों को बेरहमी से मारने लगे। कुछ ही मिनटों में मैंने देखा कि मेरा क्लास साथी और सबसे प्यारा मित्र 'उमर' खून में लथपथ मेरे पास पड़ा है। मैंने चीखते हुए उसको अपनी बाहों में उठाया। उस समय छात्र सुरक्षाबल पर पत्थर और ज्वलनशील बोतलें फेंकने लगे। जब मैंने उमर को गोद में उठाया तब वह जिंदगी को अलविदा कह चुका था। उसी वक़्त मैंने छात्रों को शोर मचाते हुए सुना कि सलीम जकी मारे जा चुके हैं जिन्हें मारने की कई बार कोशिश की जा चुकी थी। लेकिन मैं अपने दोस्त की मौत के सदमें में घिरा हुआ था जिसे मैं हमेशा के लिए खो चुका था जिस तरह मैंने अपने माता पिता को खो दिया था और जिनके चेहरे भी क़रीब-क़रीब भूल चुका हूँ।

1952 में जब क्रांति आई तो मैं शुरू में बहुत ज्यादा उत्साही था। फिर धीरे-धीरे यह उत्साह ठंडा पड़ता चला गया। पूरा देश बादशाह के त्यागपत्र और बादशाहत के खात्मे पर खुश था। मैं व्यक्तिगत रूप से अपने ख़ानदान से हटकर कृषि सुधार के क़ानून से खुश था। क्योंकि मैंने देखा था कि विशाल भूमि के मालिक ख़ानदान के लोग किसानों से एक-एक पाई किस सख़्ती से वसूल रहे थे। मैं अपने रिश्तेदारों के पास केवल पढ़ाई का खर्च, कपड़ा-लत्ता या जेब-खर्च लेने जाता था। मुझे पता नहीं था कि मैं उनसे पैसा क्यों माँगता हूँ जबकि मेरे मामा और चाचा के बेटे किसी के आगे हाथ नहीं फैलाते थे।

मैं अलेक्जेंड्रिया में अपनी सबसे बड़ी खाला 'फिरदौस हानम' के यहाँ महीने का खर्च लेने जाता और दक्षिण मिस्र से आए हुए मजदूर किसानों के साथ अपनी बारी का इंतजार करता था। मेरी खाला दोबारा मेरे आने से खुश होती थी। मुझे चुमकारती, प्यार करती और मेरी पढ़ाई और हाल-चाल अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषा में पूछती थीं। फिर भी किसानों की तरह एक-एक पाई का मुझसे हिसाब होता था।

उस समय मुझे शरारत भरी ख़ुशी महसूस हो रही थी जब काहिरा में अपने चाचा 'अदली बिक' के पास बैठा हुआ देख रहा था कि वह अपने ख़ानदान को दो सौ एकड़ से ज्यादा की सम्पत्ति के इकरारनामा पर हस्ताक्षर कर रहे थे जो कृषि सुधार क़ानून के मुताबिक़ कृषि संपत्ति की आख़िरी सीमा है। मैं यह बात कह रहा हूँ और मेरा विवेक मुझे धिक्कार रहा है। लेकिन मैं क्या करता, मैं तो मालदार ख़ानदान से संबंध रखने वाला एक भिखारी था।

फिर 'स्वेज युद्ध' हुआ जो ब्रिटेन की धोखेबाजी से भरी हुई विदेश नीति पर आधारित थी। अब मैं फिरंगियों से नफरत करने लगा। लेकिन उस नफरत ने मुझे 'बकवोशी क्रांति' की गोद में नहीं डाला जिसका देशभर में दबदबा

था। मैं कुछ मित्रों के साथ कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गया जहाँ तर्क, वैज्ञानिकता और समाजवाद के आदर्श पाए जाते थे या कुछ ऐसा ही मुझे उस समय लगा था। मगर जल्द ही बौद्धिक ठहराव और बंद दिमाग के कारण पार्टी छोड़ने पर मजबूर हो गया। क्या यह मेरी जिंदगी का दूसरा अंतर्विरोध है जैसा कि मेरे चाचा 'रऊफ' ने कहा? मैं नहीं जानता। जो जानता हूँ वह यह है कि मैं पार्टी के सदस्यों के बीच रहता था, हम एक ही भाषा बोलते थे और मजदूरों और किसानों के अधिकार की मांग करते थे, जबकि क्रांति के नेता लोग झूठे पूँजीवाद के जीवित उदाहरण थे जो वास्तविक क्रांति की गति को रोक देता है।

एक दिन मेरे चचा रऊफ ने मुझे बुलाया जो मेरे ऊपर कुछ मेहरबान थे। उनका घर 'गीजा' में स्थित चिड़ियाघर के सामने था। हमेशा की तरह सलाम, गले मिलना और हाल-चाल पूछने के बाद एक बच्चे की तरह उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा और बगैर यह बताए हुए कि हम कहाँ जा रहे हैं, हम लोग घर से निकल गए। सड़क पार कर हम चिड़ियाँघर गए और वहाँ देखा कि टिकट और मूंगफली का एक पैकेट ले रहे हैं और फिर मुझे लेकर चिड़ियाघर के अंदर चले गए।

चिड़ियाघर के अंदर बंदरों के गुफा के पास मुझसे कहने लगे, "हम यहाँ आराम से बातें कर सकते हैं।" वह बंदरों की ओर मूंगफली फेंकते हुए कहने लगे, "मिस्र में तमाम घरों की तरह मेरे घर की भी निगरानी की जा रही है। लेकिन मुझे यक़ीन है कि वह बंदरों की निगरानी नहीं कर रहे हैं।" मन में आया कि मैं उनसे कहूँ कि निश्चित रूप से वह लोग बंदरों की निगरानी नहीं कर रहे हैं और हमारे निकलने की कोई वजह नहीं थी। लेकिन उन्होंने मेरी हथेली में कुछ मूंगफलियाँ डाल दीं और मुझे इशारा किया कि मैं भी बंदरों को खिलाऊँ। फिर कानाफूसी करते हुए उन्होंने कहा, "मेरे पास पक्के सबूत हैं कि तुम्हारी भी निगरानी की जा रही है।" मैंने लापरवाही से जवाब दिया, "इसका मतलब कि मैं बंदर नहीं हूँ।" लेकिन मेरे चचा रऊफ मजाक़ के मूड में नहीं थे। उन्होंने कहा, "नहीं तुम बंदर नहीं हो, तुम जंगली गदहे हो, तुम्हें राजनीति से क्या मतलब? ख़ानदान का जो भी व्यक्ति राजनीति में आया वह कठिनाइयों से दो-चार हुआ। तुम्हारे मारे गए दादा इसके बेहतरीन उदाहरण हैं और इस कम्यूनिज्म की कहानी क्या है? हमारे ख़ानदान में कोई भी कम्युनिस्ट नहीं है। तुम ऊँचे ख़ानदान के बेटे हो, किसान या मजदूर के बेटे नहीं हो। इसलिए तुम्हें इन सब चीजों से क्या गरज।"

चचा रऊफ अपने इन तमाम सवालों के जवाब लिए बगैर बोले, "उन्होंने लालची निगाहों से आस-पास देखा और मेरे हाथ में आस्ट्रेलियाई पाउंड का एक नोट और दस मिस्री पाउंड का दूसरा नोट पकड़ा दिया। फिर आदेश देते हुए कहा, "यहाँ से सीधे गिजा जाओ और अलेक्जेंड्रिया जाने वाली ट्रेन पकड़ लो। तुम्हारी खाला 'दोसा' तुम्हारे लिए लंदन का हवाई जहाज का टिकट ख़रीद देगी और कल या तो तुम लंदन में रहोगे या जेल में। तुम जो चाहो पसंद करो।"

चचा रऊफ की बात ख़त्म हुई, अब उनके पास मूंगफली का एक ही दाना बचा था। उन्होंने उसे अपने मुँह में डाल लिया और घर वापस जाने के लिए मुड़े। मैंने बंदरों के सामने खुद को अकेला पाया। मेरी समझ से वह स्नेह भरी नजरों से मुझे देख रहे थे। फिर एक-एक करके इधर-उधर हो गए।

मेरा सर चकरा रहा है और अभी भी शीशी में बची सात गोलियाँ मुझे घूर कर देख रही हैं। बीस गोलियों के साथ यह भी अंदर जाएँ न कि उन्नीस गोलियों के साथ जो इससे पहले जा चुकी है...चार...छह...सात गोलियाँ, इस शराब का मजा कितना कड़वा हो गया है!

लंदन शहर बादल से भरा और उदास था। इस राजधानी की यह मेरी पहली यात्रा नहीं थी, जिसका सूरज कभी नहीं डूबता था? कई साल ठहरने के दौरान मैंने यहाँ इसे ढूँढा लेकिन पाया नहीं। साल के हर मौसम में इसका इंतजार किया लेकिन वह नजर नहीं आया।

मैंने अनुवाद का काम किया। वह अरबी से अंग्रेजी में अनुवाद नहीं था। क्योंकि मेरी अरबी कमजोर थी बल्कि वह अनुवाद फ्रांसीसी भाषा से अंग्रेजी भाषा और इसके विपरीत था। मैं केवल मिस्री बोलचाल की भाषा बोलता था जिसे मैंने सड़कों पर सीखा था क्योंकि घर में या ख़ानदान के दूसरे घरों में जहाँ हम जाते या रात गुजारते थे, वहाँ या तो फ्रांसीसी भाषा में बात करते या अंग्रेजी भाषा में। कभी-कभी हमारी बात-चीत उन सब भाषाओं का मिश्रण होती थी। स्कूल में हफ्ते में केवल एक विषय अरबी भाषा का पढ़ाया जाता था

और उसमें भी पास होना कोई जरूरी नहीं था। इसी कारण हम बहुत ज्यादा परवाह नहीं करते थे। हम पर मुसीबत आ जाती थी जब कोई अंग्रेज टीचर हमें अरबी बोलते हुए पकड़ लेते थे। उस समय हमें एक लेक्चर सुनना पड़ता था जो बार-बार सुनने के कारण हमें जबानी याद हो गया था। उसका सारांश यह था कि हमारे माता-पिता स्कूल की भारी फीस मुश्किल से भरते हैं ताकि हम अंग्रेजी सीखें। फिर सजा के तौर पर हमको बाहर नहीं निकलने दिया जाता था बल्कि हमें क्लास में रखकर सौ बार अंग्रेजी में लिखने के लिए कहा जाता था : "मुझे स्कूल में अरबी में बात नहीं करना चाहिए।" अरबी भाषा में मेरी कमजोरी मेरी नींद उड़ा रही थी क्योंकि मैं मिस्र का निवासी हूँ और तमाम कठिनाइयों के बावजूद मिस्र मुझे प्रिय है। लेकिन मैं उसकी मातृभाषा में अपनी बात नहीं कह सकता। मैंने ताहा हुसैन को फ्रांसीसी भाषा और तोफीक अल हकीम को अंग्रेजी भाषा में पढ़ा और जब लिखने का समय आया तो दूसरों की भाषा में लिखा। यह उनकी भाषा थी जिनसे आजादी बचपन से मेरी राष्ट्रीय इच्छा थी और अब उन लोगों के देश में मुझे मजबूरन रहना पड़ रहा है। उसके बावजूद अंतर्विरोध की गहराइयों में जाते हुए मैं मानता हूँ कि मैं इंग्लैंड में शांति की जिंदगी गुजार रहा हूँ। क्योंकि मैं अंग्रेजों को अच्छी तरह जानता हूँ। उनकी जबान की तरह उनके मिजाज को भी अच्छी तरह पहचानता हूँ और उनके साहित्य की तरह उनके इतिहास को भी समझता हूँ। 'विक्टोरियन कॉलेज' में शैक्षणिक वर्ष बेकार नहीं गए थे। उसने हमें फिरंगियों जैसा बना दिया था जिनका इतिहास हमलोग "ब्रिटिश सभ्यता" के नाम से पढ़ते थे। इसलिए हम सब की कोशिश होने लगी कि हम उस सभ्यता का अंग हो जाएँ। हम लंदन में रहें और अंग्रेज महिला से शादी करें।

मैं जिस प्रकाशन गृह में अनुवाद का काम करता था वहीं 'मिसेज आन विल्सन' संपादक के रूप में काम करती थीं। वह प्रकाशन वाले मसौदों की समीक्षा करतीं और कुछ घटाकर या बढ़ाकर या स्टाइल बदल कर बदलाव की मांग करती थीं। इसीलिए मेरा काम उनसे सीधे जुड़ा हुआ था। जिसके कारण हमारा संबंध बहुत मजबूत हो गया और हमारी औपचारिक संगति जल्द ही गहरी दोस्ती में बदल गई। फिर भड़कते हुए भावनाओं ने शारीरिक संबंध का रूप ले लिया। इसलिए मैं 'इरलेस कोर्ट' में अपना निवास स्थान छोड़कर विकसित क्षेत्र 'चेल्सी' में उसके फ्लैट में आ गया। मैं उससे रोजाना इश्क लड़ाता। हम एहसास के ऐसे भँवर में डूब जाते जो हमें अथाह गहराई में ले जाता जिसका पहले हमको कभी अनुभव नहीं हुआ था। मैं खुद से बार-बार पूछता : "क्या मैं इस महिला से प्यार करता हूँ जो मुझसे आयु में बड़ी है या फिर वह केवल शारीरिक आवश्यकता है? कभी-कभी काम का समय पूरा होने का बहुत इंतजार होता ताकि उसके साथ बिस्तर पर जा सकें हालाँकि कभी-कभी तो उसके क़रीब जाने की भी ताक़त नहीं होती थी। मदहोशी की हद तक एक साथ शराब पीते थे लेकिन वह सिगरेट नहीं पीती थी इसलिए मैं कभी-कभी बहाना बनाता कि मैं सिगरेट पीने के लिए बाहर जा रहा हूँ और घर छोड़ देता।

लंदन की जिंदगी में मैं इतना रच-बस गया था कि मिस्र का दृश्य धीरे-धीरे पीछे छूटने लगा। हालाँकि वह मेरे अंतर्मन में मौजूद था जो समय-समय पर सामने आता रहता था। जब मैंने उपन्यास लिखना शुरू किया तो महसूस हुआ कि मैं लंदन के बजाय अपने-आप मिस्र और मिस्र में बिताई हुई जिंदगी के बारे में लिख रहा हूँ। मैंने अभी शुरुआती अध्याय ही लिखा था कि तक़दीर एक बार फिर मेरा दरवाजा खटखटाने लगी और मुझे देश छोड़ने का आदेश दे दिया गया। इस बार इस दृश्य में चचा रऊफ नहीं थे और न ही बंदर थे, न तो भावनाएँ थीं और न कोई मजाक़ बल्कि वहाँ सच्चाई थी जिन्होंने बेरहमी से मुझे दबोच लिया था। पासपोर्ट की वैधता समाप्त हो चुकी थी और मिस्री दूतावास ने उसके नवीकरण से इनकार कर दिया था और मुझे मिस्र वापसी का आदेश दे दिया था। "हम आपको केवल यात्रा कार्ड दे सकते हैं जिस से आप यात्रा कर सको। नया वीजा तो केवल मिस्र में स्थित वीजा डिपार्टमेंट से ही प्राप्त किया जा सकता है।" यह बात उस अधिकारी ने कही जो देखने वाले अपने मोटे चश्मे और सामने लटकती हुई तोंद के साथ मुझसे मिला। ऐसा लग रहा था कि वह बहुत दिनों से मिस्र के एक सरकारी डिपार्टमेंट में हो। मिस्री दूतावास का वह मेरा पहला और आख़िरी दर्शन था।

नई समस्यायों के समाधान तक रुकने की अवधि बढ़ाने की कार्रवाईयों के बारे में जानकारी लेने के लिए दूसरे दिन ब्रिटेन के गृह मंत्रालय के कार्यालय गया लेकिन अंग्रेज अधिकारी बदमिजाज था। उसकी गरदन वाली लाल खून की छोटी नसें फूल गई। वह मिस्री दूतावास के अपने साँवले और बदसूरत समान स्तर के अधिकारी के साथ सहयोग नहीं कर रहा था।

मुझे देश छोड़ना ही था, लेकिन मैं कहाँ जाता? मैं मिस्र के उस कैदख़ाने में नहीं जाऊँगा जहाँ से मैं बच निकला था।

कुछ हफ्तों बाद जर्मनी के उत्तर में 'हैम्बर्ग' शहर के बंदरगाह पर काम करने गया। मैंने वहाँ जैसी तेज ठंड और अपमान कभी नहीं देखी थी। तहख़ाने में एक छोटे कमरे को गर्म करने का मेरे पास कोई साधन नहीं था। यह कमरा बंदरगाह के पास एक इमारत में था। जब तेज ठंड जमा देने वाली कई रातों में मैं नहीं सो सका तब पास वाले कमरे से ऊँचे तार के माध्यम से मैंने बिजली चोरी की और एक छोटे हीटर से उसे जोड़ दिया जो कभी काम करता था और कभी नहीं। उसके बाद मेरी हालत कुछ ठीक हुई। मैं जब इस्तेमाल किए हुए बिजली की क़ीमत देने में सक्षम हुआ तो अपने पड़ोसी के दरवाजे को खटखटाया और आवश्यकतानुसार बिजली की चोरी पर माफी मांगी और खर्च किए हुए बिजली की क़ीमत उसे देना चाहा लेकिन उसने तुरन्त जर्मन पुलिस को बुला लिया। अब आपको क्या बताऊँ की जर्मन पुलिस कैसी होती है?

जर्मनी में मेरा कोई मित्र नहीं था। ड्यूटी का समय पूरा होने के बाद मेरे पास कोई काम नहीं होता था। कभी-कभार मैं 'रेपबेन' की सड़कों पर निकल जाता जिसकी दुकानों के सामने कपड़ों, किताबों या घरेलू सामान की कोई नुमाइश नहीं होती थी बल्कि वेश्याएँ होती थी। हर शोकेस में एक अधनंगी महिला बैठी होती थी। उनमें गोरी और साँवली भी थी, लाल और काले बाल वाली लड़की भी थी। दुबली-पतली और मोटी भी थी, लम्बी और छोटी कद वाली भी थी। मैं अपनी पसन्द की लड़की चुनता और उससे अपनी यौन वासना पूरी करता था। लेकिन उन मुलाक़ातों में बहुत पैसे खर्च होते थे। जब मैं वहाँ जाने पर मजबूर होता तो अपने खाने के पैसे में कटौती करता था। यह इसलिए क्योंकि मेरी आय एक साथ इन दोनों इच्छाओं को पूरा करने के लायक़ नहीं थी। यहाँ तक की मेरी जान-पहचान मिस 'हेदफैक' से हुई, जो हालाँकि चालीस साल की थीं मगर 'रेपबेन' जाने के लिए मुझे पैसे दे देती थीं। मगर मैं अपनी जिंदगी के जिस ख़ालीपन से दो-चार था उसे वह भर नहीं सकती थी। यानी वह मानसिक ख़ालीपन जिसे यौन आनंद भी पूरा नहीं कर सकता था। वह एक बड़ा काला सुराख़ था जो हर चीज को निगल लेता है। मैं उस महिला के साथ यौन इच्छा पूरी करता फिर अपने दर्दनाक क़ैदखाने की तन्हाइयों में वापस आ जाता जहाँ मैं रहता था और कभी-कभी तो मिस्र का क़ैदखाना भी उस जगह से कम डरावना लगता था।

मैं इन परिस्थितियों में अपना उपन्यास लिखता रहा और उसका एक-एक अध्याय लंदन में 'मिसेज आन' के पास समीक्षा करने के लिए भेजता रहा। जब मेरे ठहरने की समस्या का समाधान हो गया तब उपन्यास को एक किताब के रूप में प्रकाशन की तैयारी के लिए दोबारा लंदन आया। सभी संकेत उत्साहजनक थे। जिस आलोचक ने भी उसे पढ़ा उसकी प्रशंसा की। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि यह उपन्यास इतना सफल होगा और अंग्रेजी साहित्य जगत इस गर्मजोशी के साथ इसका स्वागत करेगा। बेशक मैंने यह उपन्यास उनकी भाषा में लिखा था लेकिन उसका विषय शुद्ध मिस्री था। उसके चरित्र मिस्री थे और घटनाएँ मिस्र में घटी थी। उसमें फौजी शासन की आलोचना थी लेकिन साथ-साथ ब्रिटेन के क़ब्जे की निंदा थी।

आख़िरकार यह मेरी इच्छानुसार जिंदगी की शुरुआत थी। निश्चित रूप से मैं ऐसा लेखक बनूँगा जिसकी किताबें हर भाषा में प्रकाशित होंगी। इसलिए जब साहित्यिक सफलता के साथ-साथ वित्तीय संतुष्टि भी हुई तो मैंने क़र्ज अदा करना शुरू कर दिया। यहाँ तक कि उन भारी क़र्जों को भी चुकाने लगा जो जर्मनी में मेरे ऊपर हो गए थे और जिंदगी में पहली बार सुकून महसूस करने लगा। मैं मिसेज 'ऑन' के साथ उसके फ्लैट में रहने के लिए दोबारा आ गया और पहले की तरह संबंध बनाने लगा। मानो जर्मनी में जो मेरे साथ गुजरा था वह सप्ताहांत की छुट्टियाँ थीं।

शराब और कड़वी हो रही है या मौत का मजा है जिसे मैं हर ग्लास के साथ घूँट-घूँट पी रहा हूँ। मैं जानलेवा दर्द महसूस कर रहा हूँ जो हथौड़े की तरह मेरे सर को कुचल रहा है। लेकिन जल्द ही मैं उससे छुटकारा पा जाऊँगा और अपनी इस बेकार जिंदगी से भी आजाद हो जाऊँगा। मुझे बेहोशी का भी एहसास हो रहा है जो मेरे अंगों में धीरे-धीरे दाखिल हो रही है। कितना अंतर्विरोध है। भाग्य मुझे केवल कुछ मिनटों की मोहलत दे दे ताकि मैं बची-खुची कहानी पूरी कर लूँ।

मेरी जिंदगी अपने वतन के 'ख़ुमासीन' ऋतु में उस आसमान की तरह हो चुकी थी जिसमें न तो नीलापन था और न ही सफेदी। जिंदगी की तमाम ऐसी घटनाएँ ऐसे ही गुजर गए जैसे तेज रफ्तार सफेद बादल जिन्हें पीले मिट्टी वाली हवा उड़ा ले जाती हो, जिसके कारण यह एक जगह ज्यादा देर तक नहीं रुकते बल्कि जल्द ही छुप जाते हैं और इंसान खुद से पूछने लगता है : मेरी जिंदगी का क्या मतलब है? इंसान की जिंदगी एक सफल उपन्यास के प्रकाशन में छिपी हुई नहीं हो सकती है। नहीं जानता कि क्या अपने मक़सद को सही प्रकार से मैं व्यक्त कर रहा हूँ...मेरा सर चकरा रहा है और मैं फोकस नहीं कर पा रहा हूँ। मैं कौन हूँ? मैं मिस्र का निवासी हूँ और मैं अपनी भाषा भी अच्छी तरह नहीं जानता हूँ। मैं एक राष्ट्रवादी हूँ और मुझे एहसास नहीं है कि मैं पूरे तौर पर अपने देश का निवासी हूँ। मैं एक मालदार घराने का फक़ीर आदमी हूँ। मैं एक ऐसे समाज का ईसाई हूँ जिसके अधिकतर लोग दूसरे धर्म को मानते हैं। मेडिकल कॉलेज में दाख़िला लिया लेकिन उससे निकल गया। कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुआ लेकिन उससे त्यागपत्र दे दिया और अब मैं इस समाज में अजनबी हूँ जहाँ से देश निष्कासन किया गया हूँ। मैं एक घमंडी और स्वार्थी इंसान हूँ जो अपनी आत्मकथा एक अप्रकाशित डायरी में लिख रहा है। ठीक उसी समय उसके अन्दर हीनता की भावना है जिसने शर्म को उसके व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण गुण बना दिया है। एक बदसूरत इंसान जो छोटी काली दाढ़ी वाले बकरे की तरह हो, वह एक ऐसी महिला से इश्क़ करता है जो उससे कई साल बड़ी है। लेकिन उसे नापसंद भी करता है।...तो मैं क्या हूँ? क्या मैं यह हूँ या वह हूँ? मैं कौन हूँ? मेरी जिंदगी की क्या क़ीमत है? और क्या हो जाएगा अगर मैं इस दुनियाँ से गायब हो जाऊँ जिससे मैं थोड़ी देर बाद जल्द ही निकलूँगा। कुछ नहीं होगा। इसलिए कि मैं कुछ नहीं हूँ। बल्कि मैं एक वस्तु हूँ और उसका विरोधाभास भी हूँ। विरोधाभास मुझे सभी दिशाओं में खींच रहे हैं और ऐसा लगता है कि जल्द ही मुझे टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

जिंदगी और मौत के इस अनोखे लम्हे में अब मेरे सामने बड़े काले घोड़े नजर आ रहे हैं। ये वे घोड़े हैं जिन्हें लोग उस सजायाफ्ता आदमी के चारों और बाँध देते थे जिन्हें भयंकर रूप से फाँसी देना होता था। फिर उन घोड़ों को कोड़ा मारते। हर घोड़ा दूसरे घोड़े के विपरीत दिशा में चलता यहाँ तक कि शरीर के तमाम अंग अलग-अलग हो जाते।

फाँसी का यह तरीक़ा मध्य काल में लागू था लेकिन 1610 में फ्रांस के शासक 'हेनरी पअ' की हत्या हुई तो उनके हत्यारे को उसी प्रकार फाँसी दी गई ताकि यह आख़िरी व्यक्ति हो जिसके ख़िलाफ यह अमानवीय फैसला दिया गया हो। अब घोड़े मेरी नजरों के सामने हैं। मुझे याद दिला रहे हैं कि वह मेरे जन्म के समय से मेरे साथ रहे हैं। मेरी हड्डियों को तोड़े और मेरी कठिनाई को दूर किए बगैर पूरी जिंदगी मुझे ताक़त के साथ विपरीत दिशाओं में खींच रहे हैं? अब मैं उन्हें पहली बार देख रहा हूँ। जंगली काले घोड़े जो चाँद कि रोशनी में साए की तरह लग रहे हैं। यह जमीन पर अपनी पूँछ फटकारते हुए अब चलने को तैयार हैं। यह अपनी मर्जी से दौड़ सकते हैं और अब मैं उस सुकून का अहसास करूँगा जिसे पूरी जिंदगी महसूस नहीं कर सका।

अब मैं कलम नहीं पकड़ सकता...एक भयानक भँवर मुझे निगल रहा है। घोड़े दौड़ रहे हैं...चाँद मुझे पुकार रहा है ...घोड़े काले हैं...चाँद काला...भँवर काला है...हर चीज... काली है।

❖

एसोसिऐट प्रोफेसर, अरबी एवं अफ्रीकी अध्ययन केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110067

..... पृष्ठ 31 का शेष **(स्टेपिंग स्टोन)**

मुताबिक लॉरेन से शादी कर ली और प्रताप? शायद मैं सबसे बेवकूफ़, सीधा था तो कुछ सोच नहीं पा रहा था। काम करने में इतना व्यस्त रहा कि गर्लफ्रेंड कोई बनाई नहीं। नौकरी ऑफर नहीं हुई। अब एक ही चारा था कि जॉब एप्लीकेशन लगाओ और इंतज़ार करो।

अक्सर माँ पूछती कि कहीं नौकरी लगी? पिताजी उससे बड़ी उम्मीदें लेकर बैठे थे। महीने में दो बार मामा के घर जाता तो वे भी यही प्रश्न करते। मन में भविष्य के प्रति अनिश्चितता थी। भारत वापिस जाना नहीं चाहता था, और यहाँ रहने के लिए वीज़ा की ज़रुरत थी। जल्दी नौकरी मिल जाएगी यह आशा भी समाप्त हो रही थी। साल के अंत में नौकरी मिलती भी कहाँ है? सोचते हुए सर दर्द से फटने लगता।

यहाँ रहने के लिए काम करना ज़रूरी था। परीक्षा की वजह से कुछ दिन से फ़ैक्ट्री नहीं गया था, अब जब तक हूँ यही करना होगा। सोचते हुए मैं घर से निकला, बस पकड़ी और फ़ैक्ट्री पहुँच गया।

देखते ही रॉबर्ट बोला, 'हे मेट! तुम कहाँ थे? एग्ज़ाम्स ठीक हो गए?'

मैंने बुझे मन से कहा, 'यस मेट। ऑल गुड। नौकरी ढूँढ रहा हूँ।'

'ज़रूर मिलेगी। डोंट यू वरी।'—कहते कहते रॉबर्ट ने उसे धौल मारी।

जैसे ही मैं अंदर गया, सोफ़िया अपने कमरे से भागी आई, 'हे प्रट, लॉन्ग टाइम, नो सी।' वह हँस कर मुझे किस कर रही थी कि अचानक मेरे दिमाग़ में कुछ कौंधा। एक आईडिया....ऐसा आइडिया जो मेरी सभी चिंताओं को दूर कर सकता था। मैंने सोफ़िया से हिम्मत करके कहा, 'आई मिस्ड यू टू सोफ़िया।'

सोफ़िया ने मेरी तरफ़ देखा, मैंने सोफ़िया की तरफ़ शायद पहली बार इतने इंटरेस्ट से देखा। हम दोनों की आँखें मिली, सोफ़िया की भूरी आँखें ख़ुशी से चमक रहीं थी, उसका मासूम दिल धड़क रहा था, मैंने मजबूती से उसका हाथ पकड़ा और कहा, 'शाम को काम के बाद कॉफ़ी के लिए चलें?'

सोफ़िया ने कहा, 'श्योर। वी विल गो' ख़ुशी-ख़ुशी वह अंदर भाग गई।

शाम को रॉबर्ट से कहकर वो दोनों कॉफ़ी के लिए गए। रॉबर्ट को मुझ पर पूरा विश्वास था। कार में सोफ़िया की ख़ुशी देखते ही बनती थी। बैठते ही उसने मेरे हाथ पर हाथ रख दिया। एक हाथ से गाड़ी चलाते-चलाते कहने लगी, 'प्रट, आई लव यू।'

मैंने भी उसका हाथ चूमा और बोला, 'आई लव यू टू'

हाथ में हाथ थामे हम कॉफ़ी हाउस पहुँचे, उसका गाल चूम कर मैंने धीरे से पूछा, 'शादी करोगी मुझसे?'

सोफ़िया के दिल की धड़कन जैसे रुक गई, शर्म से गाल गुलाबी हो गए, आँखों में लाल डोरे तैरने लगे। पहले ही बहुत भावुक क़िस्म की लड़की थी। इतनी बड़ी ख़बर पर आँखों में आए। सोफ़िया एक ऐसी लड़की जिसका दिल पानी की तरह स्वच्छ था, जिसके मन में मैल तो क्या किसी के लिए दुर्भावना भी न थी, सुंदर ऐसी कि मोनालिसा तस्वीर से उतर कर उसमें समा गई हो। सच है जब भगवान इतना कुछ देता है, तो कुछ कमी छोड़ ही देता है। सोफ़िया मन से बहुत भोली और भावुक थी, दुनियादारी कुछ समझती न थी।

हम दोनों कुछ देर आपस में लिपटे बैठे रहे। जाने कितनी देर तक किस करते रहे, एक दूसरे को सहलाते रहे। मन जब बेकाबू होने लगा तो मैं उठ खड़ा हुआ, 'चलो रॉबर्ट से तो बात करें।'

लौट कर मैंने रॉबर्ट से सोफ़िया का हाथ माँगा, 'कैन आई मैरी योर डॉटर?'

'व्हाट...? माई सन तुमने क्या कहा? फिर से कहो माई सन।' रॉबर्ट जैसे विश्वास नहीं कर पा रहा था।

'मैं सोफ़िया से प्यार करता हूँ, क्या मैं उससे शादी कर सकता हूँ?' मैंने दोहराया।

रॉबर्ट ने आगे बढ़कर उसे गले से लगा लिया, 'यू डोंट नो माय सन, तुमने मेरी कितनी बड़ी परेशानी हल कर दी। गॉड ब्लेस यू माय सन।'

उसने आगे बढ़कर सोफ़िया का हाथ मुझे पकड़ाते हुए कहा, 'गॉड ब्लेस यू बोथ। ईश्वर तुम्हें सारी खुशियाँ दे।'

मामा को पता लगा तो उनका फ़ोन आया, 'प्रताप पुत्तर, तुमने जो किया सोचकर ही किया होगा। तुम्हें सोफ़िया के बारे में पता ही होगा। एक बार फिर सोच लो, रॉबर्ट मेरा बहुत अच्छा दोस्त है। कुछ ऊँच-नीच न हो इसका ध्यान रखना।'

मैंने मामा को तसल्ली दी, बस इतना अनुरोध जरूर किया कि अभी वीज़ा औपचारिकताओं को पूरा करने के लिए कोर्ट मैरिज ही करेंगे, तो इंडिया में किसी को न बताएँ। बाद में जब इंडियन रीति-रिवाज़ से शादी करेंगे तो पूरे परिवार को बुला लेंगे। जल्द ही दोनों की शादी की डेट तय हुई और कोर्ट मैरिज हो गई। रॉबर्ट ने दोनों को हनीमून के लिए इटली भेजा।

कुछ महीने बाद मुझे ऑस्ट्रेलियन सिटीजनशिप के साथ-साथ नौकरी भी मिल गई। सब बहुत खुश थे, सोफ़िया मुझे सर आँखों पर रखती। रॉबर्ट कभी नई घड़ी ले आता कभी नए ब्रांडेड कपड़े। शादी की पहली वर्षगाँठ पर उनको गाड़ी भेंट की, 'माय सन, आय एम सो हैप्पी, तुमने हमारी सोफ़िया को जितनी ख़ुशी दी है, कोई नहीं दे सकता, मैं तुम्हारे लिए कुछ भी कर सकता हूँ।'

पर सिर्फ़ मैं जानता था कि सब कुछ ठीक होकर भी ठीक नहीं था। माँ बाप को इसकी भनक भी न थी कि मैं शादी-शुदा हूँ। इधर सोफ़िया का बचपना देख मैं तंग आने लगा था। जब नाराज़ होती तो घर का सारा सामान तहस-नहस कर देती। घंटों उसे मनाना पड़ता। पर जब ख़ुश होती तो बच्चों-सी तालियाँ बजाने लगती। मानसिक रूप से हमारा कोई मैच न था। न कोई बात ठीक से समझती, न बता पाती। बस सेक्स एन्जॉय करती। ऐसा लगने लगा था कि मैंने किसी सेक्स डॉल से शादी कर ली हो।

कब तक चलेगा यह नाटक? मेरे मन में सोफ़िया के प्रति जो प्रेम था धीरे-धीरे चिढ़ में बदल रहा था। मैं नौकरी से देर से आता तो सोफ़िया रोती मिलती, अपना ऑफ़िस का काम कर रहा होता तो आकर छेड़खानी करने लगती। एक दिन खीज कर मैंने कह ही दिया, 'सोफ़िया, आय एम फ़ैड अप विथ यू (मैं तुमसे तंग आ गया हूँ), प्लीज़ फ़ॉर गॉड सेक, लीव मी अलोन (भगवान के लिए मुझे अकेला छोड़ दो), मुझे नहीं मालूम मैंने तुमसे शादी क्यों कर ली।'

इतना कहना ही था कि हतप्रभ-सी सोफ़िया ने मुझे देखा ज़ोर से रोती अपने कमरे में भागी। इससे पहले कि मैं कुछ करता वो अपना बैग उठा, कार में बैठ अपने पिता के घर निकल गई।

मुझको पता था उसने सोफ़िया के मासूम दिल को चोट लगाई है और वह मुझे कभी माफ़ नहीं करेगी। पर मन में किसी कोने से आवाज़ आई, 'चलो अच्छा हुआ उससे पीछा छूटा। आख़िर कब तक उसे झेलता मैं? माँ से क्या कहता? रूप की परी तो लाया हूँ पर दिमाग़ी हालत ठीक नहीं है।'

एक घंटे के बाद ही रॉबर्ट का फ़ोन आया, 'माय सन, ये तुमने अच्छा नहीं किया। मेरी बेटी का दिल दुखाया।'

मैंने कुछ ज़्यादा कहना ठीक न समझा। ऑफ़िस के काम में बिज़ी हो गया, सोफ़िया गई तो एक हफ़्ते तक आई नहीं। मैंने तो जैसे उससे पीछा छुड़ाने की ठान ही ली थी।

उस दिन ऑफ़िस में बैठा था कि मामा का फ़ोन आया, 'प्रताप मुझे तुमसे यह उम्मीद नहीं थी। मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम मेरे दोस्त रॉबर्ट की बेटी के साथ यह हरक़त करोगे।'

'मामा, ऑफ़िस का बहुत काम है, मैं हर वक्त उसके आगे पीछे तो नहीं घूम सकता। बस कुछ कह दिया तो नाराज़ हो गई।' मैंने मामा को सफ़ाई दी।

'बात यह नहीं है, तुम भी और इंडियंस की तरह निकले। जब तुम उससे शादी के लिए मान गए थे तभी से मुझे तुम पर शक था। सिटीजनशिप और नौकरी मिलते ही

सोफ़िया बुरी लगने लगी। अब उसे छोड़ देना चाहते हो।' मामा गुस्से में कह रहे थे।

'नहीं मामा, मैं उसे मना लाऊँगा' मैंने बुझे मन से कहा।

'तुम समझते क्या हो? तुमने मासूम लड़की का ट्रस्ट तोड़ा है। रॉबर्ट का फ़ोन आया था, वो कभी भी सोफ़िया को तुम्हारे पास नहीं भेजेगा।' मामा ने कहा।

'नहीं मामा, ऐसा नहीं है। मैं उसे मना लूँगा।' कहने को तो मैंने कह दिया पर मुझे पता था कि मैं ऐसी भूल कभी नहीं करूँगा। मैं एक इमोशनली चैलेंजिंग लड़की के साथ ज़िंदगी गुज़ारने को तैयार नहीं था। शायद कुछ दिन तक रॉबर्ट ने मेरे आने और माफ़ी माँगने का इंतज़ार किया और फिर टूटे दिल से डाइवोर्स के पेपर भेज दिए।

मामा ने सुना तो फ़ोन पर सिर्फ़ इतना कहा, 'प्रताप एक बच्चे से बढ़ कर तुम्हारे लिए सब कुछ किया और तुमने... ? तुमने मेरा विश्वास तोड़ा, रॉबर्ट को धोखा दिया और उस मासूम सोफ़िया के दिल के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। समझ लो कि मेरे लिए तुम मर गए।'

मैंने तलाक़ के पेपर्स पर साइन कर दिए और दूर एक कंट्री साइड में गैस स्टेशन खरीद लिया। दिल में जो गिल्ट था वह किसी तरह मैं उससे उबर न पाता था। अब मैं अकेला रहता, ख़ुद खाना बनाता, खाता। माँ को मामा ने पहले ही बहुत कुछ बता दिया था। जब माँ ने पूछा तो मैंने कुछ भी नहीं छिपाया। जल्द ही बड़ी बहन की शादी हो गई। माँ कुछ दिन के लिए ऑस्ट्रेलिया आई तो मुझे समझाया, 'देखो प्रताप, इंडिया में किसी को इस बारे में नहीं पता। तुम्हारा और सोफ़िया का साथ बस इतना ही था, अब अपनी ज़िंदग़ी को कब तक रोकोगे। मैं चाहती हूँ तुम अब अपना घर बसा लो। और हाँ छोटे को भी यहीं बुलाकर पढ़ा लेते तो उनका जीवन बन जाता।'

मैंने माँ की बात समझी पर सोफ़िया मन के कोने में कहीं अब भी थी, एक अपराध भाव भी था। पर छोटे भाई की शिक्षा का प्रबंध कर दिया। छोटा भाई अगले साल सिडनी के एक विश्वविद्यालय में आ गया। हर वीकेंड मेरे पास आता और बड़े भाई का फ़र्ज़ निभाते हुए मैं उसे बाहर घुमाने ले जाता, कभी शॉपिंग करा देता, पढ़ने को उत्साहित करता रहता। मुझे भी जीने का कुछ मकसद मिला। तीन साल बाद जब इंडिया गया तो माँ ने अपनी सहेली अमिता आंटी की बेटी मेघा से मिलाया। मेघा एक इंटेलीजेंट, पढ़ी-लिखी, एवरेज लुकिंग लड़की थी। जल्द ही हम दोनों घुल-मिल गए, मैंने मेघा से कुछ भी न छिपाया। मेघा ने धैर्य से मेरी बात सुनी और यही कहा, 'प्रताप जो हो गया उसे तो बदल नहीं सकते। अच्छा लगा कि तुमने मुझ पर ट्रस्ट किया।' जल्दी ही हमारी शादी हो गई और हमने अपनी नई ज़िंदग़ी शुरू की।

कुछ सालों में छोटे भाई संदीप ने मेडिसन की पढ़ाई पूरी की और डॉक्टर बन गया। छोटी बहन की शादी यहीं सिडनी में संदीप के डॉक्टर दोस्त से हो गई। कुछ वर्षों बाद माँ, पिताजी भी सिडनी आ गए। पत्नी, बच्चों और भाई-बहन और माता-पिता से भरे परिवार में रहकर मैं भूल चुका था कि सोफ़िया भी कभी मेरी ज़िंदग़ी का एक हिस्सा थी। अपनी व्यस्त ज़िंदग़ी में मुझे कभी यह जानने की ज़रुरत ही महसूस नहीं हुई कि सोफ़िया कहाँ है और कैसी है। वह सोफ़िया, जिसे उसने 'स्टेपिंग स्टोन' की तरह ही इस्तेमाल किया था, क्या मुझे भूल पाई है या माफ़ कर पाई है?

और उम्र के इस पड़ाव पर जब मेरे पास सब कुछ है अचानक सोफ़िया जैसे मेरी आँखों के सामने आकर खड़ी हो गई है और अपनी मासूम आँखों से देखते हुए मुझसे प्रश्न पूछ रही है, 'व्हाई प्रट व्हाई मी?' और मैं निःशब्द, निरुत्तर सोच रहा हूँ कि क्या वाक़ई मैंने अपने दिमाग के कंप्यूटर से सोफ़िया की फाइल पूरी तरह डिलीट कर दी थी?

❖

कवयित्री एवं लेखिका
1, लेघ प्लेस, वेस्ट पेनांट हिल्स, 2125, एनएसडब्ल्यू, ऑस्ट्रेलिया
फोन : +61 403 116 301
ई-मेल : rekha_rajvanshi@yahoo.com

..... पृष्ठ 34 का शेष **(कटी नाक का रहस्य)**

मुस्कराते हुए उसकी तरफ देख रही थी। ऐसा लग रहा था कि जैसे वह उसका पोपट होता देखकर अपनी हँसी दबाने की कोशिश कर रही थी।

म्यूजियम ज्यादा बड़ा नहीं था। करीब दो घंटे में उनका टूर समाप्त हो गया।

''सॉरी, मेरी वजह से तुम फोटो नहीं ले पाए...'' म्यूजियम से निकलकर नीरजा ने बनावटी अफसोस जताया, ''मुझे नहीं मालूम था कि तुम्हें यक्षिणी की फिगर इतनी ज्यादा पसंद आ गयी थी।''

''किसने कहा कि नहीं ले पाया?'' सुवीर ने मुस्कराते हुए मोबाइल उसकी ओर बढ़ाया, ''ये देखो...''

नीरजा ने मोबाइल में देखा, सुवीर ने यक्षिणी के तीन-चार फोटो ले लिए थे।

''छी...मैं अभी इन्हें डिलीट कर देती हूँ।'', वह उसे परेशान करने के लिए बोली।

''कर दो...'' सुवीर ने उसे चुनौती देते हुए कहा। वह जानता था कि नीरजा ऐसा नहीं करेगी।

''सोच लो...''

''बोला न कर दो।''

''तुम इन फोटोज का करोगे क्या?'' उसने बात बदलते हुए पूछा।

''इनकी मदद से इस कटी नाक का रहस्य जानने की कोशिश करूँगा...''

''मान लो जान लिया, फिर क्या करोगे?''

''कम से कम एक नया आर्टिकल तो लिख ही लूँगा।''

''तुम्हारा भी जवाब नहीं।'' नीरजा ने उसकी पीठ पर धौल जमाई, ''हर जगह अपने काम की चीज खोज ही लेते हो।''

इस बात को एक सप्ताह बीत चुका था। सुवीर ने गूगल और दूसरी सर्च साइट्स पर इस फोटो के जरिए काफी खोजबीन की थी। लेकिन, अभी तक उसे कोई काम की जानकारी हासिल नहीं हो पा रही थी। वह काफी परेशान था, लेकिन इस परेशानी की वजह यह नहीं थी कि वह कोई पुख्ता जानकारी नहीं निकाल पाया था, बल्कि वे सपने थे, जो म्यूजियम वाली घटना के बाद उसे अक्सर आने लगे थे। किसी में वह देखता कि बिना नाक वाली यक्षिणी उसके पास खड़ी चुनौती दे रही है कि अगर दम है तो मेरे बारे में जानकर दिखाओ, किसी में वह देखता कि नाक एक नाव बन गई है, जिसमें वह और नीरजा सवार हैं और नाव समुद्री तूफान में हिचकोले खा रही है। किसी सपने में वह नीरजा को यक्षिणी में बदलते देखता तो किसी में यक्षिणी को अपने सामने गिड़गिड़ाते हुए पाता, जो उससे अपनी नाक वापस दिलाने में मदद करने की विनती कर रही होती थी।

इस बीच वह नीरजा से दो-तीन बार मिला तो था, लेकिन इन सपनों के बारे में उसे कुछ नहीं बताया था, क्योंकि उसे लग रहा था कि अगर उसने नीरजा से इस बारे में कुछ कहा तो वह उसका मजाक बनाएगी और या फिर उसे पागल समझेगी। लेकिन, अब उसकी परेशानी इतनी ज्यादा बढ़ गई थी कि उसे किसी के साथ शेयर करना जरूरी लग रहा था और उसके पूरे सर्किल में सिर्फ नीरजा ही ऐसी थी, जिस पर वह सबसे ज्यादा विश्वास करता था और जिसके साथ अपनी हर बात आसानी से शेअर कर सकता था।

''क्या हुआ? बड़े डिस्टर्ब्ड लग रहे हो?'' नीरजा ने उसके चेहरे की ओर देखते हुए प्यार से पूछा।

वे इस समय एन्ड्यूरा कैफे में बैठे हुए थे, जो मीटिंग के लिए उनकी फेवरेट जगह थी।

''लग रहा हूँ ना?''

''ऑफकोर्स...''

''चलो, कॉफी खत्म कर लो....फिर कहीं चलते हैं।'' सुवीर बोला, ''वॉकर्स स्ट्रीट पर चलते हैं।''

''सही है, वॉकिंग की वॉकिंग, टॉकिंग की टॉकिंग....'' इस बात पर नीरजा के साथ-साथ सुवीर भी मुस्करा दिया।

करीब बीस मिनट बाद वे वॉकिंग स्ट्रीट के किनारे लगी एक बेंच पर बैठे थे। दोपहर का समय था, इसलिए वहाँ पर काफी शांति थी। बस बीच-बीच में एकाध कार या टूव्हीलर उधर से गुजरते थे तो लगता था कि यह स्ट्रीट शहर का ही एक हिस्सा है। वर्ना तो किसी जंगल में होने का अहसास ही वहाँ छाया रहता था। सुवीर उसे अपने हर सपने के बारे में डिटेल्स में बता चुका था। उसे यह देखकर अच्छा लगा कि उसकी अपेक्षा के विपरीत नीरजा ने बड़ी गंभीरता से उसकी बात सुनी थी और अब भी उसका चेहरा गंभीर था।

''क्या सोचा?'' नीरजा ने अपनी आँखें ऊपर उठाई। सुवीर को अपने चेहरे पर नजर गड़ाए देख वह अचकचा गई।

''नीरू...'' सुवीर हिचकिचाते हुए बोला, ''....कैन आई किस यू?''

''व्हाट?'' नीरजा हड़बड़ाकर बोली।

''सॉरी...'' सुवीर घबरा गया। ''पता नहीं कैसे मेरे मुँह से यह निकल गया।''

''मन में रहा होगा, तभी तो मुँह से निकला होगा...''

''नहीं, नहीं...''

''झूठ मत बोलो...'' नीरजा ने आँखें तरेरीं।

सुवीर नजरें झुकाए हुए था।

''अच्छा, अपनी आँखें बंद करो।'' नीरजा ने बड़े मिठास भरे स्वर में कहा।

सुवीर ने जैसे ही अपनी आँखें बंद कीं, नीरजा ने अपनी दाएँ हाथ की तर्जनी को उसकी ठोड़ी के नीचे लगाकर उसका चेहरा ऊपर उठाया और अपने गुलाब की पंखुड़ियों जैसे नरम होठों को धीरे से उसके होठों की ओर बढ़ाया। अचानक अपने चेहरे पर उसकी साँसों की गरमाहट को महसूस करते ही सुवीर की आँखें खुल गईं और जैसे ही उसकी नजर नीरजा के चेहरे पर पड़ी उसे जैसे करंट-सा लगा और वह घबराकर पीछे हट गया। उसने देखा कि नीरजा के चेहरे पर नाक का कहीं नामोनिशान नहीं था।

''क्या हुआ?'' उसके व्यवहार में अचानक आए इस बदलाव से हैरान नीरजा ने पूछा।

''तुम्हारी नाक...'' कहते-कहते सुवीर रुक गया, क्योंकि नीरजा की नाक सही-सलामत थी।

''क्या हुआ मेरी नाक को...?'' वह चिढ़कर बोली, ''लगता है उस खसमखानी ने तुम्हें पागल कर दिया है।''

''अब तो मुझे भी यही लगने लगा है?'' सुवीर थके स्वर में बोला।

नीरजा को अचानक उस पर बहुत दया आई और अपने व्यवहार पर अफसोस होने लगा। उसने सुवीर के कंधे पर धीरे से हाथ रखते हुए कहा, ''चिंता मत करो, हम कोई न कोई सॉल्यूशन निकाल लेंगे।''

''कैसा सॉल्यूशन?''

''मेरी दीदी की बड़ी ननद एक साइक्रियेट्रिस्ट हैं। अगर तुम कहो तो उनके पास चलते हैं।'' उसने डरते-डरते कहा, ''देखो, मुझे गलत मत समझना।''

''नॉट एट ऑल, मैं जानता हूँ कि तुम जो करोगी, मेरे अच्छे के लिए ही करोगी।''

उस रात सुवीर ठीक से सो नहीं पाया। जरा-सी आँख लगती, यक्षिणी के सपने उसे घेर लेते। कभी वह यक्षिणी को नीरजा में बदलते देखता, तो कभी नीरजा को यक्षिणी में... दोनों की उससे एक ही शिकायत थी कि वह उनकी नाक वापस दिलाने में कोई मदद नहीं कर रहा है। खैर, रात को साढ़े-तीन चार बजे उसकी आँखें लगीं और जब वह जागा तो उसके फोन की रिंग बज रही थी। उसने आँखें मलते हुए देखा, नीरजा का फोन था।

''क्या हुआ, इतनी देर से रिंग जा रही है, फोन क्यों नहीं उठाया।'' नीरजा ने शिकायत की।

''सॉरी, बाथरूम में था।'' उसने झूठ बोला।

''सच क्यों नहीं कहते कि अभी तक सो रहे थे?'' वह बोली, ''तबियत तो ठीक है ना?''

''हाँ, बस रात को ठीक से सो नहीं पाया था?''

''उसी कलमुँही की वजह से ना...?' वह खीझकर बोली।

सुवीर ने कोई जवाब नहीं दिया।

''ठीक है, तुम तैयार हो जाओ। मेरी बात हो गई है। बारह बजे डॉक्टर दीदी के पास चलना है।

''सही रहेगा?'' वह झिझकते हुए बोला।

''टेंशन मत लो, वो एक्सपर्ट हैं। कोई न कोई सॉल्यूशन जरूर बता देंगी।''

''ओके, तुम मुझे उनका लोकेशन और एड्रेस सेंड कर देना। मैं टाइम पर वहाँ पहुँच जाऊँगा। बाय....''

''बाय, सी यू...''

बारह बजे, वे डॉ. शिखा गोयनका के चेंबर में उनके सामने बैठे हुए थे। वह एक बेहद अनुभवी और सुलझी हुई डॉक्टर थीं। उन्होंने दोनों की पूरी बात बड़े सब्र और संजीदगी के साथ सुनीं। पूरी बात सुनकर उन्होंने सुवीर और नीरजा को समझाया कि सुवीर इस समय परफेक्शन नाम की डिसीज की

तरफ बढ़ रहा है, जो ओसीडी (ऑब्सेसिव कम्पल्सिव डिसऑर्डर) जैसी खतरनाक तो नहीं है, लेकिन परेशान काफी करती है। इसमें आदमी को चीजों को उनके परफेक्शन में देखने की आदत पड़ जाती है और कहीं भी कुछ इम्परफेक्ट दिखा कि वे बेचैन हो उठते हैं और जब तक उसे परफेक्ट न कर दें, उनका मन किसी चीज में नहीं लगता।

नीरजा ने सवालिया निगाहों से सुवीर की ओर देखा। उसने सहमति में सिर हिला दिया।

''फिर क्या किया जाना चाहिए?'' नीरजा ने पूछा।

''एज फॉर एज दिस केस इज कन्सर्न, जस्ट पुटिंग द नोज ऑन दैट आइडोल मे बी एन इजिएस्ट ऑप्शन, इफ द म्यूजियम परमिट्स...'' डॉ. शिखा मुस्कराते हुए कहने लगी, ''...बट इट इन जनरल, दिस इज ए प्रॉब्लम नीडेड टू बी टेक केअर्ड इमीडिएटली।''

इसके बाद वे उन्हें समझाने लगीं कि किस-किस तरह की एक्सरसाइजेज से इससे छुटकारा पाने में मदद मिल सकती है।

तब तक डॉ. शिखा की असिस्टेंट कॉफी लेकर आ चुकी थी। तीनों कॉफी की चुस्कियाँ लेने लगे। जब वे डॉ. शिखा के सेंटर से बाहर निकले तो नीरजा काफी असहज महसूस कर रही थी। उसकी ये हालत सुवीर से छिपी नहीं रही।

''अब तुम्हें क्या हुआ?'' उसने पूछा।

''चलो, कहीं चलकर बैठते हैं।'' नीरजा ने उसके सवाल का जवाब न देते हुए कहा।

''ओलम्पिया चलें, यहाँ से पास ही है।''

''कहीं भी चलो।''

ओलम्पिया में वे एक टेबल पर आमने-सामने बैठे थे।

''क्या लोगी?''

''कुछ स्नैक्स मँगवा लेते हैं। साथ में चाय भी मँगा लेना।''

''ओके...'' सुवीर ने इशारे से वेटर को बुलाया और उसके ऑर्डर लेकर जाने के बाद नीरजा से मुखातिब हुआ, ''अब बताओ, क्या बात है?''

''तुम्हें परफेक्ट चीजें अच्छी लगती हैं....'' वह हिचकते हुए कहने लगी, ''...लेकिन, मैं तो परफेक्ट नहीं हूँ ना... क्या तुम मुझे भी नापसंद करने लगोगे?''

''कैसी अजीब बातें कर रही हो?'' वह बोला, ''फॉर मी, यू आर मोर दैन परफेक्ट स्वीट हार्ट।''

''फिर भी...'', नीरजा के चेहरे पर अभी भी तनाव था।

तभी वेटर ने चाय और फ्रेंच फ्राइज की प्लेट लाकर टेबल पर रख दी।

उसने एक स्टिक उठा ली और धीरे-धीरे उसे कुतरने लगी।

''तो क्या सोचा शिखा दीदी के सजेशन के बारे में...'' नीरजा ने चाय का कप उठाते हुए उससे पूछा।

''सजेशन तो अच्छा है।'' वह बोला, ''लेकिन, एकदम असली जैसी नाक बना पाना आसान नहीं है।''

''कोशिश तो करते हैं...'' वह मुस्कराई। ''आखिर मेरी डिजाइनिंग स्किल्स कब काम आएँगी।''

''यानी?''

''यानी कि तुम मुझे उस आइडोल के फोटो फॉरवर्ड करो, मैं उससे मैच करती हुई एक नोज डिजाइन करती हूँ, फिर तुम उसके हिसाब से किसी मूर्ति बनाने वाले से एक नाक बनवा लेना।''

''तुम ऐसा कर सकती हो?'' उसने हैरानी से पूछा।

''ऑफकोर्स मिस्टर परफेक्शनिस्ट...बस तुम बनने के बाद यह मत बोलना कि नाक परफेक्ट नहीं बनी है।'' नीरजा ने उसे छेड़ा।

''सवाल ही पैदा नहीं होता। मैं कितना भी परफेक्शनिस्ट सही, लेकिन इतना अनरीयलिस्टिक भी नहीं हूँ कि यह न समझ सकूँ कि 21वीं सदी में बाइस सौ साल पुरानी नाक ढूँढ पाना पॉसिबल नहीं है।''

''गुड... वैरी गुड...!''

दो दिन बाद नीरजा ने उसे दो पिक्चर व्हाट्स एप्प किए, जो उसने एक फोटो एडिटिंग सॉफ्टवेअर की मदद से तैयार किये थे। पहले में सिर्फ नाक का 3डी इमेज था और दूसरे में वही नाक सुवीर के भेजे फोटो में यक्षिणी के चेहरे पर नाक की जगह पर सेट की गई थी।

कैसी है? (अगला मैसेज था।)

तुम्हारी ज्यादा अच्छी है। (रिप्लाई)

फेस विद टीयर्स ऑफ जॉय ईमोजी (नीरजा)

पहले बता देना था, अपनी ही भेज देती। (नीरजा)

इतनी मेहनत क्यों कराई। ग्रिनिंग फेस ईमोजी (नीरजा)

पहले यक्षिणी की नाक कहाँ देखी थी। विंकिंग फेस ईमोजी (सुवीर)

स्माइलिंग फेस विद स्माइलिंग आईज ईमोजी (नीरजा)

एनी वे, नाइस वर्क। थंब अप ईमोजी (सुवीर)

थैंक्स एंड बाय। टीसी। (नीरजा)

टीसी। हैव ए गुड डे (सुवीर)

नीरजा ने तो अपना काम कर दिया था। अब सुवीर के सामने अगला चैलेंज था ऐसा मूर्तिकार खोजना, जो इस चित्र को देखकर एक सही रंग-रूप वाली नाक तैयार करके दे सके। सुवीर ने शहर के मूर्तिकारों के लिए गूगल सर्च करना शुरू किया तो उसे तभी अपने एक कॉलेज फ्रेंड जयंत की याद आई। जयंत एक इनोवेटर था, जिसने अपना एक थ्रीडी पिंटर डेवलप किया था। वह इन दिनों ईएनटी डॉक्टरों की रिसर्च में हेल्प के लिए आर्टिफिशयल नोज और ईयर्स बनाकर सप्लाई कर रहा था।

'यस, यही सही रहेगा।' उसने खुद को शाबासी देते हुए जयंत का नंबर डायल कर दिया।

''हैलो सर, बड़े दिनों बाद याद आई हमारी...'' जयंत की गर्मजोशी भरी आवाज सुनाई दी।

सुवीर ने बिना कोई साफ-सफाई या भूमिका बनाए उसे पूरी कहानी कह सुनाई। अलबत्ता, नीरजा वाला हिस्सा वह बड़ी सफाई से छिपा गया, क्योंकि जयंत उसका इतना भी क्लोज नहीं था कि उससे पर्सनल बातें शेअर की जा सकें। और नीरजा को तो वह जमाने भर की नजरों से महफूज रखना चाहता था।

जयंत ने उसे आश्वस्त किया कि वह उसे आइडोल और ग्राफिक्स से बनी नाक के पिक्चर्स भेज दे। वह अपनी ओर से पूरी कोशिश करेगा कि उसके हिसाब से काम हो जाए।

एक हफ्ता जरूर लग गया, लेकिन जयंत ने सुवीर की उम्मीद से बेहतर काम किया था और उसकी नाक एक छोटे से प्लास्टिक बॉक्स में उस तक पहुँचा दी थी। सुवीर ने उसका शुक्रिया अदा किया और जब उसे पैसे देने लगा तो जयंत ने पैसे लेने से साफ मना कर दिया। जयंत के जाने के बाद उसने नीरजा को फोन किया, ताकि उसे बता सके कि नाक आ गई है। अभी तक उसने नीरजा के बार-बार पूछने पर भी यह नहीं बताया था कि नाक कौन बना रहा है। वह उसे सरप्राइज देना चाहता था।

''नाक आ गई है...'' नीरजा के हैलो बोलते ही उसने सबसे पहला डॉयलॉग यही बोला।

''गुड... कैसी है?'' नीरजा ने पूछा।

''आओगी तो खुद ही देख लेना।''

''ओके, लेकिन आज तो मुश्किल है। कल सेकेंड हाफ में म्यूजियम के बाहर ही मिलते हैं।''

''ओके...डन!''

अगले दिन वे दोनों, म्यूजियम के चीफ क्यूरेटर मि. मुदलियार के सामने बैठे थे। सुवीर पहले ही अपना विजिटिंग कार्ड उनके पास भिजवा चुका था, इसलिए उसे उन तक पहुँचने में ज्यादा बाधाओं का सामना नहीं करना पड़ा था।

''यस डीयर फ्रेंड्स, व्हाट कैन आई डू फॉर यू....?'' उन्होंने विनम्रता से पूछा।

जवाब में सुवीर ने अपने पॉकेट से नाक वाला बॉक्स निकालकर उनके सामने रख दिया।

''व्हाट इज दिस यंग मैन?'' उनकी पेशानी पर बल पड़ गए।

''ए स्माल गिफ्ट फ्रॉम द टू ट्रू आर्ट लवर्स....'' सुवीर बड़े रहस्यमयी अंदाज में मुस्कराया।

''बट...''

''सर आप खोलकर तो देखिए।''

मि. मुदलियार ने अनमने ढंग से बॉक्स उठाया और उसे खोला। अंदर एक नाक का मॉडल देखकर वे सकपका गए।

''व्हाट इज दिस? इज इट ए समकाइंड ऑफ प्रैंक टू मी?'' वह नाराजगी भरे स्वर में बोले।

''नो सर, मैं तो.....'' सुवीर को अंदाजा नहीं था कि उन्हें बुरा लग सकता था।

तभी उसके कुछ कहने से पहले नीरजा ने उसका हाथ थपथपाकर उसे चुप होने का इशारा किया और खुद मोर्चा

संभाल लिया। इसके बाद नीरजा ने उसे पंद्रह दिन पहले म्यूजियम में आने से लेकर नकली नाक बनवाने तक की पूरी कहानी सुना दी।

जब वह अपनी बात पूरी कर चुकी तो वह यह देखकर हैरान रह गई कि मि. मुदलियार जोर-जोर से हँस रहे थे। उन्हें देखकर लग रहा था कि वह अपनी हँसी दबाने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन रोक नहीं पा रहे हैं।

''सॉरी...'', वे जैसे-तैसे खुद पर काबू पाते हुए बोले, ''...लेट मी शो यू वन थिंग।''

दोनों ने प्रश्नवाचक नजरों से उनकी ओर देखा।

''आप लोग मेरे साथ आईए...'' कहकर वे उठे और अपने टेबल की दाईं ओर बने साइड डोर से निकल गए। नीरजा और सुवीर के पास उन्हें फॉलो करने के अलावा कोई चारा नहीं था।

दो-तीन गलियारों से गुजरने के बाद वे उसी गैलरी में आ पहुँचे, जहाँ पर यक्षिणी की प्रतिमा डिस्प्ले की गई थी।

''लुक एट हर...'' यक्षिणी वाले डिस्प्ले केस के सामने पहुँचकर मि. मुदलियार ने उंगली उठाकर इशारा किया।

यह देखकर दोनों को जबर्दस्त शॉक लगा कि वहाँ यक्षिणी की प्रतिमा उसी तरह मुस्करा रही थी, जैसी पंद्रह दिन पहले मुस्कराते हुए दिखी थी। बस इस बार उसका चेहरा पहले जैसा भयानक नहीं लग रहा था, क्योंकि उसकी आँखों और होठों के बीच उसकी वही नाक मौजूद थी, जिसने पिछले दो हफ्तों से उन दोनों की नाक में दम किया हुआ था।

''ये नाक...'' नीरजा ने हकलाते हुए कुछ कहने की कोशिश की।

''...चलिए, ऑफिस में चलकर बात करते हैं।'' मि. मुदलियार ने सुवीर की पीठ पर टैप किया।

''सो माई डियर यंग मैन एंड यंग लेडी। इस स्टैच्यू की एक स्टोरी आपने सुनाई, एक मैं सुनाता हूँ।'' मि. मुदलियार ने मुस्कराते हुए बताना शुरू किया।

कुल जमा कहानी यह थी कि यह यक्षिणी की प्रतिमा नीरजा और सुवीर के म्यूजियम में आने वाले दिन से तीन-चार दिन पहले ही गैलरी में लाई गई थी। इससे पहले उसे ओपेन ग्राउंड में डिस्प्ले के लिए रखा गया था। वहीं से गैलरी में लाते हुए, उसकी नाक कहीं टूट कर गिर गई थी। उस समय किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था, लेकिन बाद में जब किसी विजिटर ने इस बात की शिकायत की तो नाक की तलाश शुरू हुई, जो उसी ओपेन ग्राउंड में उग आई घास में छिपी पड़ी थी। यही माना गया कि शायद किसी शरारती दर्शक ने उसे तोड़ दिया होगा। नाक तो मिल गई थी, लेकिन उन दिनों म्यूजियम का प्रमुख कन्जर्वेटर छुट्टी पर था। जब वह लौटा तो उसने नाक की मरम्मत कर उसे प्रतिमा के चेहरे पर इतनी सफाई के साथ वापस लगा दिया कि कोई अंदाजा नहीं लगा सकता था कि कुछ दिनों के लिए वह नाक यक्षिणी के चेहरे को छोड़कर चली गई थी।

जब मि. मुदलियार अपनी बात पूरी कर चुके तो सुवीर और नीरजा, बेवकूफों की तरह एक-दूसरे को देखे जा रहे थे।

''अब इस नाक का क्या करें?'' सुवीर ने चुप्पी भंग करते हुए नीरजा से पूछा।

''इसे मैं आपकी ओर से गिफ्ट मानकर अपने पास ही रख लेता हूँ, इफ यू डॉन्ट माइंड...'' उन्होंने मुस्कराते हुए जवाब दिया और नाक के बॉक्स को उठाकर अपनी ड्रायर में रखने लगे।

"श्योर सर...'' उन्होंने मि. मुदलियार से इजाजत लेते हुए कहा और उनके कमरे से बाहर निकल गए।

''सो, व्हाट नेक्स्ट?'' नीरजा ने म्यूजियम से बाहर आकर सुवीर की ओर देखा। ''ये किस्सा तो खत्म हुआ।''

''हाँ, मगर एक और किस्सा शुरू हो चुका है...'' सुवीर उसकी आँखों में झाँकते हुए मुस्कराया। ''एंड आई होप, ये किस्सा खत्म होने के लिए नहीं है। एम आई राइट...?''

''यस....यू आर!'' नीरजा ने प्यार से उसे देखा और पार्किंग में खड़ी अपनी एक्टिवा की ओर बढ़ गई।

❖

9, अन्विता अपार्टमेंट, प्लॉट नं. 185,
बाजीप्रभु नगर, नागपुर-440033 (महाराष्ट्र)
मोबाइल नं. 9922424597

..... पृष्ठ 37 का शेष **(एक नई सुबह)**

गहरी-गहरी साँस लेकर अपने आप को संयत करने ही लगी थी कि अविनाश आ गया। माँ को विश किया और मेरी तरफ़ एक नज़र डाल कर प्रणव के गाल पर हाथ फेरा और केवल एक कप चाय पीकर बाहर निकल गया।

'शाम को पंकजा से बात करूँगा।'

पंकजा का चिल्लाना ज़रूर उसने अंदर से सुना होगा। थोड़ी देर में माँ जी भी उठकर किचन में चली गईं। मैं वहीं टेबल पर अपनी ठोढ़ी के नीचे दोनों हाथ रखे मुँह दबाए सामने बैठे प्रणव को देखते सोचने लगी कि क्या बारह साल माँ की देखभाल करने के बाद मैंने फिर वही कदम इसलिए तो नहीं उठा लिया कि एक ढर्रे में जीने की आदत पड़ गई थी या अकेलेपन से भागकर बच्चों और पति का साथ ढूँढ रही थी। एक बसा-बसाया घर...नए सिरे से घर बसाना क्या ज्यादा आसान होता इस उम्र में। अपने आप पर कुछ ज्यादा ही भरोसा कर लिया था। पर यहाँ तो सिर मुँड़ाते ही ओले पड़ने लगे।

यह क्या हो गया है मुझे! इतनी जल्दी हिम्मत हारने लगी हूँ! नहीं...नहीं... समझाने लगी अपने आपको...पंकजा की जगह अगर मैं होती तो क्या बर्दाश्त कर पाती किसी का दख़ल अपनी ज़िंदगी में! उसे समझना पड़ेगा मुझे और समय देना पड़ेगा। समझाने लगी अपने आपको कि दख़लंदाज़ी तो है। थोड़ा मन शांत हुआ। देखूँगी...कोशिश तो करनी पड़ेगी। दोपहर के खाने के बाद मौसी जी भी वापस चली गईं और शाम तक न मैं अपने कमरे से बाहर निकली न पंकजा।

सात बजे के क़रीब अविनाश लौटा। थका हुआ था, आते ही हाथ-मुँह धोया और माँ से बात करने लगा। पंकजा और प्रणव के बारे में पूछा। मैं कमरे में ही खिड़की के पास रखी मेज़ पर बैठी बाहर ताकती उसके अंदर आने का इंतज़ार कर रही थी। पूरा दिन यूँ ही कमरे में बंद गुज़र गया था। अजीब बोरियत लग रही थी, ज़रूरत से ज़्यादा लंबा दिन। अंदर आ कर उसने मेरे कंधे को धीरे से छूकर बाहर आकर माँ और अपने साथ चाय पीने के लिए कहा। हम दोनों के बीच यह पहला संवाद था। सब कुछ कितना यंत्रचालित-सा। कल से आज तक की दिनचर्या कितनी ख़ामोश और बोझिल। समझ नहीं आ रहा था कि किससे क्या बात की जाए। पंकजा अभी भी कमरे के अंदर ही थी। पर यह ज़रूर था कि अविनाश के आते ही घर में जान आ गई थी या हो सकता है मैं बड़ी बेसब्री से उसका ही इंतज़ार कर रही थी, आखिर वही तो मेरा इस घर और बाकी लोगों के बीच की कड़ी है।

रात के खाने के समय अविनाश के बार-बार बुलाने पर पंकजा डाइनिंग टेबल पर आई तो सही पर वही नाटक... ज़ोर-ज़ोर से गुस्से से चम्मच प्लेट पटकने लगी। अविनाश के मना करने पर मेरी ओर गुस्से से देखती हुए रोने लगी। ठीक से खाना भी नहीं खाया। आधा खाना छोड़ कर कमरे में भाग गई। खाना खाने की मेरी इच्छा ही ख़त्म हो गई। बड़ी मुश्किल से खाना निपटा। मैं तो अपने कमरे में चली आई और रात काफ़ी देर तक पंकजा के कमरे से अविनाश के समझाने की और सामान इधर-उधर फेंके जाने की आवाज़ें आती रहीं। मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। अविनाश जब कमरे में आया तो परेशान-सा निढाल होकर बिस्तर पर मेरी कुर्सी के सामने बैठ गया।

'सॉरी प्रिया, पंकजा के रवैए के लिए। समझ सकती हो कि उसके लिए कितना कठिन है तुम्हें स्वीकार करना।'

'और तुम्हारे लिए!' मैंने धीरे से पूछा।

'मैं कामिनी से बहुत प्यार करता था। अब भी मैं उसे भूल नहीं पाया हूँ। हमारा बीस साल का साथ था। सब इतना कठिन होगा सोचा नहीं था।'

'इस सबमें मैं कहाँ आती हूँ। मेरे लिए तो सब पहला ही है, नया और अनजाना। मेरे लिए तो और भी कठिन है. तुम सब तो फिर भी एक ही हो। तुम्हारा पूरा परिवार है। मैं ही मिसफ़िट हूँ। जानती हूँ तुम कहोगे कि मुझे पहले मालूम था और शायद तुम्हें भी, फिर भी न जाने मुझे ऐसा क्यों लग रहा है कि मैं जानबूझ कर एक ज़बरदस्त बवंडर के बीच आ फँसी हूँ जिसके थमने के बाद न जाने क्या बाकी रहेगा और क्या उड़ा ले जाएगा!!'

मेरे दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर वह मेरी उंगलियों को धीरे-धीरे अँगूठे से सहलाता रहा। हम काफ़ी देर तक यूँ ही अपने-अपने में बंद कुछ सोचते बैठे रहे फिर गहरी साँस लेकर धीरे से उठते हुए मेरे कंधे को हल्के से दबाते हुए बोला—'मुझे थोड़ा वक्त दो प्रिया...' और उठते हुए उसने मेज़ पर रखी हुई फ़ोटो पर हाथ फिराया।

कितनी देर तक हम दोनों बिस्तर पर एक दूसरे की तरफ़ पीठ किए अपनी-अपनी जंग लड़ते सोने की कोशिश करते रहे। वक्त तो मुझे भी चाहिए था बारह साल बाद नई राह पर

चलने के लिए। कहने-सुनने के लिए तो बहुत कुछ था पर बीच में, बहुत दूरी थी। मेरे लिए उसके हाथों का स्पर्श तपती धूप में छाँव का एक छोटा-सा टुकड़ा था।

ज़िंदग़ी की गाड़ी धीमी रफ़्तार से चटकी पटरियों पर अटकती हुई चलने की कोशिश करने लगी। इससे पंकजा का रवैया बद से बदतर होने लगा। उसे लगने लगा कि मैं कहीं जाने वाली नहीं हूँ। मेरी हर बात और काम से चिढ़ने लगी। हर चीज़ में अपनी माँ से मेरी तुलना करने लगती। मेरी माँ ये करती थी ऐसे करती थी वैसे करती थी। ये मत छुओ, वह मत करो। माँ जी भी अक्सर उसकी तरफ़दारी करने लगतीं इससे उसे और शह मिलती। मैं हर पल बीते हुए कल की उपस्थिति अपने चारों तरफ़ महसूस करती। मैं रोज़ एक नई सुबह की कामना करती। वह अविनाश के सामने ज़रूर कुछ ज्यादा बोलती नहीं थी गुस्से में तन्नाई जैसे-तैसे खाना निगल लेती पर उसके जाते ही शुरू हो जाता सब फिर से। दो महीने से ज़्यादा हो गए। मेरा धीरज भी अक्सर टूटने की कग़ार पर आ जाता। लगता ज़ोर से एक थप्पड़ लगा दूँ। जानती हूँ यह कोई हल नहीं है इससे और समस्या बढ़ जाएगी पर हर चीज़ की हद होती है...बहुत मुश्किल से रोकती अपने आपको। मुसीबत भी तो मैंने ही मोल ली है। कितनी बार मैंने ख़ुद उससे बात करने की कोशिश की। मैं कहना चाहती थी कि मैं उसकी माँ नहीं उसकी दोस्त बनना चाहती हूँ, पर वह कुछ सुनने को तैयार नहीं थी।

पता नहीं क्यों उसने पढ़ाई छोड़ दी थी। साल हो गया घर बैठे। मुझे आश्चर्य हुआ कि अविनाश ने पढ़ाई छोड़ने से उसे रोका क्यों नहीं। यह क्या बात हुई, इतनी बड़ी लड़की सारा दिन घर में फालतू बैठी ख़ुराफ़ात में लगी रहती है। स्कूल जाती तो कम से कम दूसरे बच्चों के साथ मन बहलता और सोच में भी बदलाव आता। यह क्या कि फेल हो जाने और झगड़ा करके स्कूल से भाग जाने पर स्कूल ही छुड़ा दिया। लगाने थे दो-चार हाथ...इतना भी क्या लाड...कोई छोटी बच्ची तो नहीं है, आगे क्या होगा! अचानक अपने पापा की याद आ गई, कितना प्यार करते थे मुझे, मेरी किसी बात को कभी नहीं टालते थे। सब पापा ऐसे ही होते हैं शायद...पर फिर भी यह तो...अपनी माँ के कमरे में अपने पिता के साथ मुझे देखकर, कर तो कुछ नहीं पाती थी पर आग-बबूला हो जाती। ग़लती से भी उसकी माँ की किसी चीज़ को हाथ लगा देती तो आसमान सिर पर उठा लेती। घर के लोगों के दिलों के साथ-साथ घर की, कमरे की हर चीज़, हर जगह पर अपने लिए एक छोटी सी जगह तो बनानी ही पड़ेगी मुझे। अब तो कितने महीने हो गए। कहीं से तो शुरुआत होनी होगी। पर क्या यह आसान होगा। सबको थोड़ा-थोड़ा वक्त देते हुए मेरा वक्त तो रेत की तरह मुट्ठी से फिसलता जा रहा है....मेरा वजूद...और अविनाश भी तो सहज नहीं हो पा रहा है। हम दोनों वक्त की प्रतीक्षा में वहीं अटके खड़े हैं।

प्रणव से भी पंकजा काफ़ी नाराज़ रहने लगी है। क्योंकि उसको मुझसे कोई फ़र्क नहीं पड़ रहा था। वह उसका साथ नहीं दे पाता था। मैंने सोच लिया था कि वह न सही कम से कम प्रणव को तो ज़रूर किसी स्पेशल स्कूल में भेजना पड़ेगा वहाँ प्रशिक्षित शिक्षकों से उसे कुछ सीखने को मिलेगा और दूसरे बच्चों का साथ भी। उस दिन जब मैंने डाइनिंग टेबल पर यह बात चलाई तो अविनाश ने कहा कि वह ऐसे स्कूलों के बारे में पता करेगा पर पंकजा एक़दम उखड़ गई। एक़दम से उठ खड़ी हुई...चेहरा लाल और आँखों में आँसू।

'तुम खुद उसकी देखभाल नहीं करना चाहती हो न मेरी माँ की तरह! वे कितना ख्याल रखती थी उसका। तुम तो चाहती हो कि वह घर से बाहर रहे। तुम हम दोनों को इस घर से बाहर निकाल देना चाहती हो। पापा भी कितना बदल गए हैं जब से तुम आई हो कितना गुस्सा करने लगे हैं। हम दोनों को प्यार नहीं करते। हमें तुम्हारी ज़रूरत नहीं है...निकलो हमारे घर से।'

उसने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे खींचना शुरू कर दिया तभी मैंने ज़ोरों से उसका हाथ पकड़कर झटक दिया और अपने कमरे की तरफ़ जाने के लिए पलटी ही थी कि तभी अविनाश का ज़ोरदार चांटा पंकजा के गाल पर पड़ा।

'बस बहुत हो गया। अब और बर्दाश्त नहीं करूँगा। ये तुम्हारी नई माँ हैं और ये कहीं नहीं जा रही हैं। यहीं रहेंगी हम सब के साथ। नो मोर टैंट्रम्स। तंग आ गया हूँ रोज़-रोज़ के तुम्हारे नाटक से...समझा-समझाकर हार गया हूँ।' और वह उठ कर कमरे की तरफ़ जाने के लिए बढ़ा।

'आपने मुझे मारा पापा....मेरे ऊपर हाथ उठाया... इनकी वजह से आपने...ये मेरी माँ नहीं है...ये मेरी कोई नहीं हैं। मैं आपसे कभी बात नहीं करूँगी,' और वह सुबकने लगी।

माँ जी पंकजा को गले से लगाकर सिर पर हाथ फेरने लगीं। वह और ज़ोर-ज़ोर से रो-रोकर कह रही थी कि अब वह इस घर में नहीं रहेगी चली जाएगी कहीं। बात इतनी बढ़ जाएगी मैंने भी नहीं सोचा था। यह सब नहीं होना चाहिए था पर अब तो तीर हाथ से निकल चुका था। हालाँकि मैं भी तंग आ गई थी और अक्सर मेरा भी मन उसे चांटा लगाने का करता था पर इससे तो मेरे लिए उसके मन में और ज़्यादा नफ़रत पैदा हो गई। पर अब जो भी होगा देखा जाएगा।

कमरे में जब मैं आई तो अविनाश बिस्तर पर आँखों के ऊपर हाथ रखे लेटा हुआ था। धीरे से मैं उसके बगल में पलंग का सहारा लेकर बैठ गई। उसके बगल में अधलेटी हुई मैं किसी तरह बातों का सिरा पकड़ने की कोशिश कर रही थी।

'सॉरी, अविनाश मेरी वजह से...'

'तुम्हारी वजह से नहीं...मैं ही बच्चों को समझ नहीं पाया। हम सब एक भंवर में फँस गए हैं। मेरी वजह से तुम भी...जो भी हो पर यह नहीं होना चाहिए था..ठीक नहीं हुआ..मुझे अपने गुस्से के ऊपर क़ाबू रखना चाहिए था। मैंने आज तक कभी बच्चों के ऊपर हाथ नहीं उठाया।'

उस रात अविनाश बहुत बेचैन था। पहली बार उसका हाथ उठा था। बहुत बुरा लग रहा था उसे। रह-रह कर अपने को कोस रहा था। मेरा मन हो रहा था कि उसे बाहों में भर लूँ पर अविनाश न जाने क्या सोचे। हम दोनों के बीच अब भी एक फासला था। अक्सर मेरा मन होता मैं उससे लिपट कर ख़ूब रोऊँ और वह मेरे बाल सहलाता रहे। हम दोनों एक दूसरे से सब कह-सुन डालें। कमरे में फैली उसकी हल्की ख़ुशबू हर समय उसके यहीं कहीं मेरे आस-पास होने का एहसास दिलाती और मेरी बेचैनी बढ़ाती। मैं उसको अपने भीतर बहुत गहरे तक महसूस करने लगी हूँ। हर पल एक सुंदर एहसास। पास बहुत पास होते जाने की प्यास जागने लगी है। यह मुझे क्या हो रहा है! मेरे भीतर यह कैसी चाहत जाग रही है! मुझे तो लगता था कि मेरे सारे एहसास ख़त्म हो गए हैं, सब मर गया है मेरे भीतर। यह कैसी अजब-सी बेचैनी है इतने पास होकर भी मीलों लंबी दूरी है। क्या अविनाश भी ऐसा कुछ महसूस करता होगा मेरे लिए!! बीच-बीच में चौंक कर सुनने लगती जो वह बोल रहा था। बता रहा था मुझे कुछ, पर मैं कहाँ कुछ सुन रही थी। काफ़ी देर तक वह बोलता रहा, उसने अभी तक मुझसे कभी इतनी बातें नहीं की थीं। बस मतलब भर की ही। तभी अचानक मेरी कमर को अपनी बाहों में पकड़कर मेरी गोद में सिर रख कर फफक पड़ा—'थक गया हूँ प्रिया मैं अकेले सब झेलते-झेलते...मेरा कल मुझे पीछे खींचता है और तुम...तुम मेरा आज हो, फिर भी कहीं कुछ है जो हमारे बीच है। सुन रही हो न तुम। मैं सब पीछे छोड़ कर आगे बढ़ना चाहता हूँ। समझ पाओगी न मुझे...बोलो..थाम लो मुझे।

क्या बोलती मैं..! था क्या कुछ बोलने के लिए! सब कुछ तो था यहीं इन बाहों के घेरे में.....

और आँखों में कल नई सुबह के सपने....

पूना...

अविनाश निंबालकर

यह क्या किया मैंने...देहरी पर उसे यूँ ही छोड़ दिया बिना सोचे कि वह इस घर में अपरिचित लोगों के बीच नितांत अकेली केवल मेरे भरोसे आई है! माँ तो गई थी न पंकजा को मनाने, अगर मैं न जाता तो कौन-सा पहाड़ टूट जाता? पंकजा को तो मैं जानता हूँ न.. फिर...जितना सोचता हूँ उतना पछताता हूँ अपनी इस हरकत पर.. क्या करूँ अब। क्या सोचती होगी वह मेरे बारे में कि कहीं भी मैं ऐसे ही उसे कभी भी अकेली छोड़ दूँगा। क्या कहूँगा उससे कि मैं ऐसा ही हूँ! शायद कमरे में बैठी मुझसे शादी के अपने इस निर्णय पर पछता रही हो। सोच रहा हूँ मुझसे शादी का निर्णय क्यों लिया होगा उसने। शायद मेरी तरह वह भी अकेलेपन से घबरा गई होगी। पर मुझसे ही क्यों...हम दोनों जानते कहाँ थे पहले से एक दूसरे को....

घड़ी देखी रात काफ़ी देर हो गई है। बारह बजने वाले हैं। बिस्तर के एक तरफ़ सिमटी-सी सोई हुई प्रिया....उसने ज़रूर मेरा इंतज़ार किया होगा। मैं ही तो उसके और घर के सब लोगों के बीच की कड़ी हूँ। मैंने जानबूझ कर थोड़ी देर कर दी थी। उसका सामना करने से बच रहा था। पर कब तक यूँ अवॉइड करूँगा। कल देखूँगा। पंकजा को समझाना इतना कठिन होगा सोचा नहीं था। पहले जब उससे इस संदर्भ में बात की थी तब तो ज़्यादा कुछ बोली नहीं थी। क्या वाक़ई मैंने ग़लती कर दी है दोबारा शादी करके! कामिनी के जाने के बाद ये दो साल कितने कठिन रहे हैं हम सबके लिए, प्रणव के पैदा होने के बाद से ही वह धीरे-धीरे ऐसी टूटी कि फिर

पूरी तरह से उबर ही नहीं पाई और उसके जाते ही मानो धुरी से छिटक गए हम सब। सब कुछ बिखर गया। घर, बच्चे और माँ...पंकजा तो अजब घुन्नी-सी हो गई। लगातार फेल होने लगी। बात-बात पर सबसे लड़ाई झगड़ा, रोना-धोना, ज़िद्द...तो क्या मैंने सिर्फ़ सब समेटने के लिए ही दोबारा शादी की है! अपने मन में झाँकता हूँ तो वहाँ कुछ और भी दिखता है। मैं ख़ुद भी तो कितना टूट गया हूँ। दिल में छाया घना अंधेरा और सबके बीच रहते हुए भी निपट सन्नाटा सोने नहीं देता। गहरी नींद में डूबी प्रिया को देखते सोच रहा हूँ कि कहाँ खींच लाया हूँ मैं उसे...उठा पाएगी वह मेरे बीते कल का बोझ...मैंने जो जिया है बीस साल वह ऐसे ही तो नहीं कहीं चला जाएगा। पर उसके लिए तो ज़िंदगी की नई शुरुआत है, नए सपने, नई उमंग, नई चाह...उतर पाऊँगा मैं उसकी उम्मीदों पर ख़रा! यह तो सोचा ही नहीं था कि मेरे कल और उसके आज के बीच के लंबे फासले को मुझे ही तय करना है। क्या मैं सब भूलकर कभी पूरा उसका हो पाऊँगा?

कल फिर पंकजा से बात करूँगा। मेरे बिस्तर पर लेटी प्रिया...कितना अलग रहा है। देर तक सोने की कोशिश करते-करते कब नींद लगी पता नहीं। सुबह उठा तो डाइनिंग हाल में फिर वही झगड़ा...क्या सोचती होगी वह कहाँ आ गई हूँ कल से आज तक और कुछ सुना ही नहीं। कौन है उसका यहाँ, कितना पछता रही होगी। मैं भी तो कहाँ कुछ कर पा रहा हूँ। चुपचाप सब बर्दाश्त कर रही है। क्या करूँ मैं?

दिन निकलते जा रहे हैं। घर एक ढर्रे पर चल रहा है। माँ को समझाया भी है कि ग़लत बात पर पंकजा की तरफ़दारी न करें बल्कि उसे स्थिति को समझाएँ। प्रिया ने भी कई बार उससे बात करने की कोशिश की है पर वो है कि कुछ सुनने के लिए तैयार ही नहीं है। प्रिया को क्या गुस्सा नहीं आता होगा? क्यों बर्दाश्त कर रही है वह यह सब। क्या मेरे लिए या फिर बर्दाश्त करने की उसमें इतनी ताक़त है। मेरे लिए क्यों... मैंने क्या दिया है उसे! सोचता हूँ पंकजा को कुछ दिनों के लिए दीदी के पास मुंबई भेज दूँ। दूर रह कर ठंडे दिमाग़ से कुछ सोचने समझने के लिए। पर डरता हूँ कि वह और भी भड़क जाएगी घर सिर पर उठा लेगी। इस सबके लिए प्रिया को ही दोष देगी। समझ नहीं आता क्या करूँ। प्रिया ठीक कहती है प्रणव को स्पेशल स्कूल में डाल देना चाहिए। पंकजा की भी पढ़ाई शुरू करवानी पड़ेगी तब शायद सब ठीक होगा।

पंकजा के इस तरह भड़क कर प्रिया को बुरा-भला कहना और उसका हाथ पकड़कर खींचना मैं बर्दाश्त कैसे करता और मेरा हाथ उठ गया। पहली बार मैंने हाथ उठाया। क्या करता आखिर हद होती है बर्दाश्त की भी। वह जो कह रही थी ग़लत था क्या...इतनी बातें सुनने के बाद भी उन दोनों के लिए ही सोच रही है। मेरी ख़ातिर ही तो। पर यह सही नहीं हुआ। यह मैं क्या कर बैठा। इसका उल्टा ही असर होगा पंकजा पर। पर प्रिया की और बेइज़्ज़ती नहीं होने दूँगा कहीं तो रोकना होगा इस सबको। फिर क्यों बुरा लग रहा है मुझे। भीतर ही भीतर जल रहा हूँ क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। कैसे सब पलट दूँ!!

आँख बंद करते ही कभी पंकजा का लाल चेहरा आँखों के सामने घूम जाता है तो कभी प्रिया का अपमान से लाल हुआ चेहरा। तो क्या प्रिया को यूँ ही जलील होने दूँ सिर्फ इसलिए कि वह जानबूझकर इस खाई में कूद पड़ी है और उसका यहाँ कोई नहीं है और महीनों से बेइज़्ज़ती बर्दाश्त कर रही है...मैं ऐसा नहीं होने दे सकता। उसका क्या कुसूर है क्या सिर्फ़ इसलिए कि वह इस घर में अपने मन से आई है! फिर मैं भी तो उतना ही ज़िम्मेदार हूँ बल्कि और ज़्यादा क्योंकि मैं ही उसे लाया हूँ फिर सारा गुस्सा वही क्यों झेले। बस अब और नहीं। गुस्सा तो उसे भी आता होगा। वह किससे कहे अपनी बात। मैं भी उसका कुसूरवार हूँ।

जब सब समझता हूँ तब मैं क्यों नहीं जा पा रहा हूँ उसके क़रीब। क्यों नहीं झटक देता कल को और उसे जकड़ लेता अपनी बाहों में...सारे गिले शिकवे दूर कर देता! कितनी बार लगा कि खींच लूँ अपने करीब, कमरे में आते-जाते..उसके नरम बालों की खुशबू भर लूँ अपने भीतर। कितनी बार उसके हाथों के स्पर्श ने सिहरन पैदा की है। क्या रोकता है मुझे! फिर क्यों इतने अकेले हैं हम दोनों इतने पास होकर भी। मेरे पास बैठी वह क्या वही सोच रही होगी जो मैं सोच रहा हूँ!! शायद कुछ अलग भी। मेरा कल उसके कल से अलग जो है।

मैंने आँख उठाकर उसकी तरफ़ देखा वह मेरी बातें सुन रही थी और उसका चेहरा आँसुओं से तर था....उसकी आँसुओं से झिलमिलाती आँखों में न जाने क्या था कि मैं अपने को रोक नहीं पाया और उसकी गोद में सिर रखते ही मेरे सब्र का बाँध टूट पड़ा।

मुंबई

मिसेज नीला शर्मा

'अरे तुम!' अचानक उसे अपने दरवाज़े पर खड़ा देख कर मैं आश्चर्यचकित रह गई। वह मिठाई का डिब्बा लिए अपनी बुआ और फूफाजी के साथ दरवाज़े पर खड़ी थी। मैंने उन्हें अंदर बुलाया। उसने मुझे बताया कि वह पास हो गई है। मेरे पैर छूकर बोली—'थैंक्स मिस...' इतना ख़ुश मैंने उसे कभी नहीं देखा था। उसकी आँखों में चमक लौट आई थी।

उसकी बुआ बोलीं—'आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। आपने हमारी पंकजा हमें लौटा दी। आपकी बहुत तारीफ़ करती है, मैंने नोट किया है कि आपके संपर्क में आने के बाद उसमें बहुत बदलाव आया है।' और वे उसकी तमाम बातें करती रहीं।

मेरी आँखों के सामने वह दिन घूम गया जब अटैंडेंस रजिस्टर में सब नामों के आख़िर में पेंसिल से लिखा नया नाम पंकजा अविनाश निंबालकर देखकर मैंने आँख उठा कर देखा तो दूसरी बेंच के एक़दम कोने में बैठी वह दुबली-पतली लड़की दिखाई दी थी। स्टाफ़ रूम में मिसेज शिंदे ने बताया था कि मेरी क्लास में एक नई लड़की दो दिन पहले आई है चूँकि मैं छुट्टी पर थी इसलिए उन्होंने उसका नाम पेंसिल से सबसे अंत में लिख दिया है। अब तो सत्र शुरू होकर लगभग एक महीना हो चुका है। इतनी देर से..! सोचा किसी दूसरे शहर से ट्रांसफ़र होकर यहाँ एडमीशन लिया होगा! पढ़ाते-पढ़ाते कई बार मेरा ध्यान उसकी तरफ़ गया पर वह सिर झुकाए कॉपी पर पेंसिल से न जाने क्या कर रही थी। उसका ध्यान क्लास में बिल्कुल नहीं था। पूरे लेक्चर में वह कहीं और खोई हुई थी। जबकि कुछ लड़कियाँ बीच-बीच में एक दूसरे से बातें भी कर रही थीं। होता है कभी-कभी, पर उसके चेहरे पर एक अलग-सा सूनापन और बेपरवाही थी जैसे बस शरीर से वहाँ बैठी हो मन कहीं और हो। इस उम्र में इतनी उदासी!! किसी से बात नहीं कर रही थी। घंटी बजी तो चौंक कर उठ खड़ी हुई खोई-खोई सी।

दो हफ़्ते गुज़र गए। वह वैसे ही आती और पूरे दिन हर पीरियड में खोई-सी चुपचाप बैठी रहती। किसी से कोई बात नहीं करती थी। कुछ बच्चों ने कोशिश भी की बात करने की पर वह मिक्स ही नहीं होती थी। इंटरवल में भी कोने में बैठी रहती। मेरे पूछने पर इतना ही बताया कि वह पूना से अपनी बुआ के पास रहने के लिए आई है। इतनी-सी उम्र में पता नहीं उसे कौन-सा ग़म खाए जा रहा था इस उम्र के बच्चों की चुलबुलाहट, मस्ती, बेफ़िक्री, आँखों की चमक और दोस्त उससे कोसों दूर थे। पूना में उसने ग्यारहवीं के बाद पढ़ाई छोड़ दी थी। बहुत पूछने पर भी कारण नहीं बताया। मैंने उसे कोने से हटाकर बीच में बिठाया और क्लास मॉनीटर सत्या से सभी पिछले नोट्स के ज़ेरॉक्स करके उसे दिलाए। सत्या भी अब उसे अपने साथ रखने लगी थी। धीरे-धीरे कुछ और लड़कियाँ भी उसे अपनी ओर खींचने लगीं। बच्चों के दिल कितने साफ़ होते हैं पर उसके दिल में न जाने क्या था जो वह पूरी तरह खुल नहीं पाती थी।

वह क्यों मुझे अपनी ओर खींच रही है मेरा ध्यान सब को छोड़कर उसकी ही ओर क्यों खिचता है? ऐसा तो है नहीं कि किसी और की कोई समस्या ही न हो। तो फिर, पता नहीं क्यों, पर रह-रह कर उसका ध्यान आ जाता। मैं उसके भीतर जमी गाँठों को खोलने की कोशिश करना चाहती थी शायद इसलिए कि उसकी आँखों का सूनापन मुझे कहीं कचोटता था। मुझे लगता कि अपने भीतर की लड़ाई वह अकेली कैसे लड़ पाएगी। किसी से बात करे तो शायद कोई हल निकले। एक दिन जब क्लास जल्दी छूट गई और मैं फ़्री थी, मैंने उसे रोक लिया और खाली क्लास में एकदम पीछे कोने की बेंच पर उसके साथ बैठकर यूँ ही मुंबई, उसकी बुआ और उनके परिवार के बारे में पूछती रही। वह कभी बोलती छोटे-छोटे वाक्यों में, कभी चुप हो जाती। मैं देख रही थी कि वह बात नहीं करना चाहती है। पता नहीं उसके भीतर क्या चल रहा था। एकदम बंद कर लिया था अपने आपको। पर उस दिन के बाद मुझे देखकर धीरे से गुड मॉर्निंग मिस जरूर कहती। इसी बीच हुए दो विषयों के यूनिट टेस्ट में उसने केवल एक-एक प्रश्न के छोटे से उत्तर केवल प्वाइंट्स में लिखे पर सही। मतलब उसे विषय तो मालूम थे केवल विस्तार नहीं किया था। उसमें मार्क्स भी मिले। उससे उसमें थोड़ा उत्साह जागा। सत्या से थोड़ा

खुलने लगी थी पर अपने बारे में कुछ नहीं बोलती थी। राखी का त्योहार आने वाला था। सब लड़कियाँ कपड़ों, मिठाई, गिफ़्ट्स की चर्चा में चहकती रहतीं। मैंने देखा कि इन दिनों वह ज़्यादा ही चुप रहने लगी है। बार-बार मैं सोचती हूँ कि क्यों मैं उसमें इतनी रुचि ले रही हूँ मेरा उससे क्या संबंध है! मेरी क्लास की एक स्टूडेंट ही तो है। शायद बस एक कन्सर्न...एक अपने में सिमटती जाती ज़िंदगी के लिए। वह सबसे अलग जो है। फिर एक दिन मैंने अकेले में उससे पूछा—'क्या बात है पंकजा तुम फिर चुप रहने लगी हो। किसी ने कुछ कहा है क्या?'

'नहीं मिस...ऐसे ही।'

'लगता है घर की याद आ रही है!!

घर का नाम सुनते ही टप से दो आँसू लुढ़क पड़े...तुरंत पोंछते हुए बोली....'सॉरी मिस।'

'इट्स ओ.के. बताओगी नहीं तो कैसे पता चलेगा। शायद मैं तुम्हारी कुछ मदद कर सकूँ।'

'कोई मेरी मदद नहीं कर सकता।' पहली बार वह इतना बोली।

'कोशिश तो करो। मैं बताऊँ..तुम थोड़ा रो लो दिल हल्का हो जाएगा..मैं किसी से कुछ नहीं कहूँगी।'

वह थोड़ी देर यूँ ही खड़ी रही फिर बोली..'मुझे अपने छोटे भाई की याद आ रही है.'

'क्यों तुमने राखी नहीं भेजी...और कौन है घर में?'

'नहीं भेजी राखी...पापा, दादी...'

'और माँ.... ?' उसकी आँखों में आँसू भर आए।

'माँ नहीं हैं...दो साल हो गए...पापा ने अभी कुछ दिन पहले दूसरी शादी कर ली है।'

मेरे सामने उसके गुमसुम रहने का कारण साफ़ हो गया।

'पापा से बात होती है?'

'वे करते हैं फोन बुआ को हर दूसरे दिन पर मैं उनसे बात नहीं करती।'

'राखी भेजना है?'

'बुआ लाई हैं, पर मुझे नहीं भेजना। मना कर दिया है मैंने। उस घर से मुझे कुछ लेना देना नहीं।'

'ऐसा नहीं कहते....सोचो ज़रा...भाई से तो लेना देना है न। और सोच लो कल तक...चलो कल बात करते हैं।'

इतनी बातें करके वह कुछ शांत लग रही थी।

दूसरे दिन उसने राखी मुझे दिखाई। मैं जानती हूँ कि वह राखी भेजना चाह रही है पर हिचकिचा रही हैं। गुस्सा जो है, नाराज़ होकर आई है घर से।

एक काग़ज़ पर मैंने उसका नाम लिखवाया और उसमें राखी लपेट कर कहा कि बुआ से पोस्ट करवा दे।

थोड़े दिन बाद उसने बताया कि पापा ने एक ड्रेस और पैसे भेजे हैं पर उसने ड्रेस खोलकर नहीं देखी है। पापा से बहुत नाराज़ है। उनकी भेजी कोई चीज उसे नहीं चाहिए। अब वह मुझसे बीच-बीच में कभी-कभी कुछ बताने लगी थी।

दीवाली पर मेरे बहुत समझाने पर उसने पूना एक कार्ड भेजा जिस पर दादी, पापा और प्रणव का नाम तो लिखा पर अपनी माँ का नाम नहीं लिखा बहुत कहने पर भी राज़ी नहीं हुई, पर एक छोटी शुरुआत थी। फ़ोन पर अब भी पापा से बात नहीं करती थी।

क्लास में अब भी चुप रहती थी पर सत्या और मुझसे खुलने लगी थी। मैं अक्सर खाली समय में उससे थोड़ी बहुत बात कर लेती थी पता नहीं क्यों मेरा उससे लगाव बढ़ता जा रहा था। शायद इसलिए कि वह बिल्कुल अकेली थी और मुझ पर भरोसा करने लगी थी।

दिसंबर के महीने में एक दिन बोली कि पूना से पापा ने उसके जन्मदिन पर एक कार्ड भेजा है जिस पर प्रिया का साइन भी है और उसके नाम प्रिया की एक चिठ्ठी भी है जो उसने खोली ही नहीं है।

मुझे उसी से मालूम पड़ा कि उसकी नई माँ का नाम प्रिया है और वो नासिक की हैं।

मैंने उससे कहा...'पत्र का जवाब चाहे मत देना, पढ़ो तो सही लिखा क्या है।'

'बिल्कुल नहीं मुझे उनसे कुछ लेना-देना नहीं है, उनसे मेरा कोई संबंध नहीं है।'

'अच्छा यह बताओ वे खुद तो नहीं आई हैं तुम्हारे घर। तुम्हारे पापा शादी करके उन्हें अपने साथ लाए हैं फिर तुम पापा से इतनी नाराज़ क्यों नहीं हो जितना उनसे?'

थोड़ी देर चुप रहकर बोली...'मुझे वो बिल्कुल अच्छी नहीं लगतीं। मेरी मम्मी नहीं हैं वो...उन्होंने मेरे पापा को हमसे छीन लिया। मेरे पापा ने उनकी वजह से मुझ पर हाथ उठाया।' वह रुँआसी हो आई।

'क्यों...क्या ऐसे ही..तुमने क्या किया था?' प्रश्न सुनकर थोड़ी देर के लिए चुप्पी छा गई। फिर उसने सारा किस्सा टुकड़े-टुकड़े में बताया।

'पर ये बताओ जैसा तुम बता रही हो उसके अनुसार उन्होंने तो कभी कुछ कहा ही नहीं। क्या तुमने कभी उनके नज़रिए से भी देखने की कोशिश की। उनकी तो पहली शादी है...उनके भी तो कुछ सपने कुछ इच्छाएँ होंगी। शादी करते ही दो बच्चे मिल गए जो उन्हें स्वीकारने को कतई तैयार नहीं। और तुम्हारा भाई भी...पापा ने भी तो कुछ सोचा ही होगा शादी करने से पहले!

'तो!! उन्होंने ख़ुद शादी की है सब जानते हुए। हमारी क्या गलती ?' उसकी आवाज़ थोड़ी तेज़ होने लगी थी।

'ठीक है उन्होंने ख़ुद शादी की है। सोचा होगा सँभाल लेंगी सब। पर तुमने उन्हें मौका ही नहीं दिया। उन्हें एक मौका दो पंकजा प्लीज़। तुम्हारा एक घर है। पापा हैं, भाई है, जहाँ तुम कभी भी हक़ से आ-जा सकती हो। रिश्ते यूँ ही नहीं तोड़ दिए जाते। उनका पत्र तो पढ़ो एक बार।'

सुनती रही पर कुछ बोली नहीं। पता नहीं सुन भी रही थी या नहीं। मैं सोच रही थी कि उसके दिमाग में निरंतर क्या चलता रहता होगा। कितना गुस्सा और विद्रोह भरा है उसके मन में। क्या कुछ किया जा सकता है।

फिर बहुत दिनों तक उसने कोई बात नहीं की। मैंने भी कुछ पूछा नहीं बस ऐसे ही चलता रहा फिर एक दिन उसने मुझे प्रिया का पत्र दिखाया। पत्र खुला हुआ था। मतलब उसने पढ़ा था और फाड़ा नहीं था। इसका अर्थ क्या वही था जो मैं चाह रही थी

प्रिय पंकजा,

जन्मदिन की बहुत-बहुत शुभकामनाएँ। यह नहीं पूछूँगी कि कैसी हो। जानती हूँ बहुत नाराज़ हो मुझसे। पर मैं नाराज़ नहीं हूँ, न ही तुम्हारे पापा। उम्र के जिस पड़ाव पर तुम हो वहाँ मैं भी ऐसे ही रिएक्ट करती। तुम्हें बताऊँ, मेरी भी माँ नहीं हैं। पापा के बाद वे बारह साल मेरे साथ रहीं। मैं महसूस करती हूँ उस कमी को। कोई नहीं भर सकता उस कमी को। सच मानो मैं तुम्हारी माँ की जगह नहीं लेना चाहती...ले भी नहीं सकती। हम सबकी अपनी-अपनी जगह है एक दूसरे की ज़िंदग़ी में। माँ नहीं दोस्त बनना चाहती हूँ तुम्हारी। बनाकर तो देखो। बनोगी क्या मेरी दोस्त। मेरे लिए थोड़ी-सी जगह बना पाओगी क्या अपने मन में?

पंकजा क्या हम अपनी-अपनी जगह बचाए रखते हुए भी थोड़ी-थोड़ी जगह सबके लिए नहीं बना सकते। मेरे लिए भी क्या आसान है सब कुछ! सोचा था हम दोनों ज़रूर एक दूसरे को समझ पाएँगे। थोड़ा समय ज़रूर लगेगा। समझ रही हो न। एक दूसरे को मौक़ा तो देकर देखें। तुम्हें घर से इस तरह दूर करके मैं क्या अपने को कभी माफ कर पाऊँगी। यह घर पहले तुम्हारा है। हम सब तुम्हें बहुत मिस करते हैं।

प्रिया

मैंने पत्र पढ़कर उसे वापस करते हुए उसकी तरफ़ देखा। वह वैसे ही बैठी थी चुपचाप। मैंने कुछ कहा नहीं इतने दिनों बाद उसने पत्र पढ़ा। फाड़ा नहीं और मुझे दिखाया। कुछ तो चल रहा होगा दिमाग़ में।

परीक्षाएँ पास आ रही थीं। प्रिपरेशन लीव हो गई थीं। बीच में कभी वह लाइब्रेरी या किसी प्रॉब्लम को पूछने के लिए आती थी। मैं भी काफी व्यस्त हो गई। फिर परीक्षाएँ, कॉपी करेक्शन। पेपर ख़त्म होने के बाद एक बार मिलने आई थी पर ज़्यादा बात नहीं हो पाई। छुट्टियों में बुआ के साथ घूमने जाने वाली थी। वैसे भी वह पहले के मुकाबले काफी संभल गई थी। और फिर आज अचानक मेरे घर पर.. ..पास हो गई है यह तो मुझे मालूम था।

'और अब आगे क्या पंकजा?' मैंने पूछा।

'एक मौका तो देना चाहिए न मिस।' कह कर वह हौले से मुस्कराई।

मैं खुश थी कि वह उड़ने के लिए धीरे-धीरे पंख खोल रही है।

❖

ए-10 बसेरा, दिन क्वारी रोड, देवनार
मुंबई-400088 मोबाइल : 9819162949
ई-मेल : kathabimb@gmail.com

..... पृष्ठ 21 का शेष **(त्रिपुरा की जमातिया जनजाति की पारंपरिक पूजा-पद्धति)**

अनुष्ठान से पहले लांप्रा पूजा की जाती है। इस पूजा में जमातिया समाज के प्रत्येक स्त्री एवं पुरुष भाग ले सकते हैं।

3. गॉरिया पूजा :

उक्त सभी पूजाएँ संपन्न होने के बाद बाबा गॉरिया की पूजा की तैयारी की जाती है। वस्तुत: गॉरिया पूजा ही जमातिया जनजाति का आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र बिंदु है। उनके द्वारा लगभग चार सौ बीस वर्षों से गॉरिया नामक लोक देवता की पूजा की जा रही है। इस पूजा के दौरान यानी चैत्र अंतिम दिन से वैशाख के छठे दिन तक इस समाज के लिए अन्य देवी-देवताओं की पूजा मनाही है। त्रिपुरा में इस समुदाय के दोनों अकराओं के निर्देशन में दो जगहों पर गॉरिया पूजा मनाई जाती है। दोनों गॉरिया देवताओं के अलग-अलग नाम हैं-बिया गोनांग और बिया कोरोई। दोनों की पूजा एक साथ, पर अलग-अलग स्थानों में (खेरफाङ के आंगन में) की जाती है, मगर ग्राम परिक्रमा केवल 'बिया गोनांग बाबा गॉरिया' की ही होती है।

जमातिया हदा द्वारा बाबा गॉरिया की पूजा कैसे की जाती है, आइए इसे समझते हैं-

(क) चुकबार[16]:

चुकबार यानी देशी शराब। गॉरिया पूजा शुरु होने से ठीक सात दिन पहले खेरफांग के घर लाम्प्रा पूजा की जाती है। पूजा के बाद खेरफांग के घर के आंगन में औरतें चूल्हा बनाती है। अचाई द्वारा चूल्हा पूजा के बाद पूरी विधि-विधान के साथ बाबा गॉरिया के लिए 'चुकबार' बनाई जाती है। मान्यता है कि बाबा गॉरिया को 'चुकबार' बहुत पसंद है, इसलिए मुख्य पूजा के दिन बाबा की बाङचाई[17] में स्थापना के बाद नियमानुसार पूजा कर सबसे पहले भोग के रूप में 'चुकबार' चढ़ाई जाती है। देवता की जब ग्राम परिक्रमा कराई जाती है तब भी 'चुकबार' को 'लाङखा[18]' में डालकर गाँव के जिन घरों में बाबा की स्थापना की जाती है। वहीं 'लाङखा' को भी बाबा के चरणों के सामने रखी जाती है। एक-दो ग्राम परिक्रमा के बाद बाबा को बीच-बीच में 'लाङखा' में रखी हुई चुकबार चढ़ाई जाती है।

(ख) रायदाङ :

गॉरिया पूजा और जमातिया समाज व्यवस्था को समझने के लिए 'रायदाङ' को जानना बहुत जरूरी है। इस समाज में 'रायदाङ' भक्ति, शक्ति और शासन के प्रतीक है। जिसे धारण करने का अधिकार केवल हदा अकरा एवं खेरफांग को है। जिस दिन से वे 'रायदाङ' धारण करने के अधिकारी बन जाते हैं। उस दिन से वे जमातिया समाज के पालक अर्थात पिता कहलाते हैं। उनकी जिम्मेदारी समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाना और अपराधी को 'रायदाङ' के माध्यम से सही रास्ता दिखाना है। सामाजिकों में जितनी भक्ति, आस्था एवं विश्वास बाबा गॉरिया के प्रति है, उतनी ही श्रद्धा, भक्ति एवं आस्था 'रायदाङ' के प्रति भी।

(ग) हारि बुइसू :

हारि बुइसू के दिन सुबह-सुबह गाँव के कुछ लोग खेरफांग के घर में रखीं बाबा की पूजा से संबंधित चीजें यथा बाबा का मुखौटा, त्रिशूल, दाव, नाक्रि[19], ढोल, बर्तन, पिछले साल दान मे मिले कपड़े आदि को निकालकर नदी पर ले जाते हैं और इन सभी चीजों को अच्छे से धोकर बाङचाई पर सुखा देते हैं। उसी दिन कुछ लोगों के द्वारा गॉरिया अचाई और बारुआ[20] के साथ पास के निर्धारित जंगल में जाकर बाँसों की पूजा की जाती है, इसके बाद तीन चुनिंदा बांस काटकर खेरफांग के आँगन वाली बाङचाई पर लाकर रख दिए जाते हैं। इसके बाद शाम को नदी किनारे पर बनी बाङचाई और खेरफांग के आंगन में बनी बाङचाई दोनों की पूजा की जाती है। खेरफांग के यहाँ रात भर कीर्तन होता है। खेरफांग के आंगन में, अकरा, पांचाई और चकदिरी के घर में हारि बुइसू से लेकर सेना तक रोज रात को कीर्तन होता है, जिसमें बाबा गॉरिया की महिमा के गीत गाए जाते हैं। कीर्तन के दौरान नृत्य जमातिया भक्तजन बाबा लीन होकर नृत्य भी करते हैं।

(घ) महाबुइसू :

दूसरे दिन यानी महाबुइसू के दिन इन तीनों बाँसों को खेरफांग के घर के आँगन की बाङचाई से निकालकर नदी में धोया जाता है, फिर नदी किनारे वाली बाङचाई में ले जाकर काट-छीलकर बाबा गॉरिया की प्रतिमा बनाई जाती है। इस प्रतिमा पर ताजा सूत के सफेद कपड़े लपेटे जाते हैं, उसके बाद दान में मिले कपड़ों को बाँधा जाता है और बाँस के ऊपरी सिरे पर बाबा गॉरिया के मुखड़े का प्रतीक सोने का मुखौटा लगा दिया जाता है। इसके बाद बाबा गॉरिया की पूजा करके प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है और खेरफांग वाली बाङचाई में लाकर आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। बाबा गॉरिया के दोनों ओर त्रिशूल भी स्थापित किए जाते हैं। इसके बाद पूरे रीति-रिवाजों के साथ बाबा गॉरिया की पूजा की जाती है। इस पूजा के दौरान बतख के अंडे, धान, खोई[21], केले के पत्ते, कपास, दूब, लाङखा आदि का उपयोग किया जाता है। यह पूजा दिन-भर चलती है। इस दौरान कबूतर, बकरों और भैंसे की बलि दी जाती है। इस पूजा में अन्य पशुओं की बलि निषिद्ध है।

(ङ) बाबा की गाँव परिक्रमा :

महाबुइसू के अगले दिन सुबह खेरफाङ वाली बाङचाई में

बाबा की पूजा होती है, फिर अचाई के निर्देशानुसार बाबा गॉरिया को बाङचाई से निकालकर ग्राम-परिक्रमा के लिए ले जाया जाता है। इसमें अचाई, बगला, पांचाई, चकदिरी, बलि देने वाले, दरिया, बाबा गॉरिया का कीर्तन-समूह, हरसिनि-तंगनाईरग[22], अन्य भक्तगण आदि शामिल होते हैं। यह परिक्रमा सेना तक दिन-रात हदा द्वारा निर्धारित गाँवों में चला करती है। प्रत्येक गाँव में ये समूह सबसे पहले चकदिरी के घर पहुँचता है, वहाँ पहले से बने आसन पर बाबा गॉरिया की स्थापना की जाती है, पूजा एवं बलि होती है, इसके बाद ये उस गाँव के प्रत्येक हिंदू जमातिया घरों में जाकर पूजा करते हैं। गौरतलब है कि इस समूह का हिंदू जमातिया घरों के अलावा किसी अन्य धर्मानुयाई के यहाँ जाना निषिद्ध है। अगर किसी घर में कोई नवजात पैदा हुआ है, या हाल ही में मृत्यु हुई है, यानी अशौच हुआ है, वहाँ भी यह समूह प्रवेश नहीं करेगा। इसके लिए जगह-जगह संकेत देने के लिए खङ[23] गाड़ दिए जाते है। पूजा करके यह समूह अगले घर के लिए प्रस्थान कर जाता है। इसके तुरंत बाद उस घर में बगलाओं का एक समूह पहुँचता है, वे उस घर के सभी सदस्यों को अपने सामने बिठाकर देशी शराब पीते हुए उनके सुख-समृद्धि की कामना करते हैं। इस तरह सेना तक यह प्रक्रिया चलती रहती है।

(च) सेना :

सेना यानी वैशाख के छठे दिन तक ग्राम परिक्रमा के लिए निकले इस समूह को दोपहर तक वापिस खेरफांग के घर में पहुँचना होता है। वहाँ आकर बाङचाई में बने आसन पर बाबा की पुनः स्थापना की जाती है। पहले दिन की तरह पूरी रीति-रिवाजों के साथ बाबा की पूजा होती है। महाबुइसू के दिन अथवा ग्राम-परिक्रमा के दौरान किसी कारण से जो लोग बाबा के नाम की बलि नहीं चढ़ा पाते, वे लोग सेना के दिन कबूतर, बकरों और भैंसें की बलि देते हैं। बलि के बाद बाबा की अंतिम पूजा होती है, उनसे अगले साल फिर आने की प्रार्थना की जाती है। इसके बाद खेरफांग के आँगन में बनी बाङचाई से उन्हें निकालकर ढोल बजाते हुए तीन चक्कर लगाए जाते हैं, फिर सब लोग नदी किनारे बनी बाङचाई में पहुँचते हैं। वहाँ भी बाङचाई के तीन चक्कर लगाए जाते हैं। इसके बाद बाबा के सारे कपड़े, उनका मुखौटा आदि निकाले जाते हैं, फिर मोताई बालनाई उन्हें कंधे पर रखकर बीच नदी में उतरता है और उनका विसर्जन कर हाथ जोड़ते हुए विदा कर देता है। इसके बाद सारे लोग नदी में स्नान करते हैं। इसी के साथ दोनों बाङचाई में प्रयोग हुए बांसों आदि का भी विसर्जन कर दिया जाता है।

4. मायलुमा-खुलूमा[24] :

जमातिया समुदाय में पारिवारिक स्तर पर यह पूजा साल में दो बार की जाती है। एक सेना के दिन यानी बाबा गॉरिया के विसर्जन के बाद सभी जमातिया परिवारों के द्वारा घर आकर मायलुमा एवं खुलूमा की पूजा की जाती है। मान्यता है कि बाबा गॉरिया जाने से पहले साल भर के लिए जमातिया समुदाय के स्वास्थ्य, सुख-समृद्धि का ध्यान रखने की जिम्मेदारी मायलुमा एवं खुलूमा देवियों को देकर जाते हैं। दूसरा जब झूमखेत से नई फसलें पहली बार घर लाई जाती है। नए चावल से भरे हुए दो कलशों को कपास की माला और फूलों से सजाकर मायलुमा-खुलूमा देवियों के प्रतीक बनाए जाते हैं। इसे स्थानीय भाषा में रंदक[25] पूजा भी कहा जाता है। यह पूजा गाँव के अचाई या परिवार के कोई एक सदस्य द्वारा पारिवारिक कल्याण के लिए संपन्न की जाती है। पूजा सामग्रीः केले की पत्तियाँ, पके केले, चावल, चीनी, बताशे, आँवा (नए चावल से बनी मिठाई) आदि।

5. केर पूजा[26] :

हदा अकरा के निर्देशानुसार यह पूजा हर साल प्रत्येक गाँव में लुकू चकदिरी द्वारा सुविधानुसार अलग-अलग तिथियों में संपन्न किए जाते हैं। 'केर पूजा' के माध्यम से इस समुदाय के लोग लोक से परलोक तक की यात्रा करते हैं। यह पूजा उनके जीवन के हरेक पहलू से जुड़ी हुई हैं। जन्म से लेकर मृत्यु एवं उसके बाद तक के संस्कारों में यह पूजा की जाती है। जिसमें 'खङ' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। किसी एक गाँव में जब यह पूजा की जानी होती है, तब सबसे पहले लुकू अचाई (गाँव के पुजारी) अपने सहयोगियों के साथ ग्राम परीक्षण करता है और गाँव की मुख्य सड़क से जुड़ने वाले हर एक रास्ते पर चिरे हुए ताजे बाँस गाड़ देता है, जिन्हें 'खङ'[27] कहा जाता है। यह आवागमन निषेध के प्रतीक हैं। पूजा के दौरान गाँव वालों का खङ से बाहर जाना और बाहर के लोगों का गाँव अर्थात खङ के भीतर प्रवेश पूरी तरह निषिद्ध है। इसके अलावा जबतक पूजा हो रही होती है गाँव वालों का नदी-घाटों, झूमखेतों, खेतों एवं शिकार आदि के लिए जंगलों में जाना मनाही है। पूजा के दौरान गाँव में किसी बच्चे का जन्म या किसी

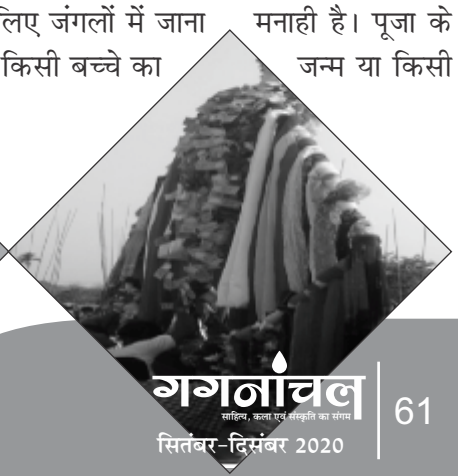

की मृत्यु दोनों को अशुभ माना जाता है। पूर्व में पूजा आरंभ होने से पहले ही गर्भवती स्त्रियों और मृत्यु से जूझ रहे व्यक्ति को गाँव की सीमा से बाहर ले जाने का निर्देश दिया जाता था, क्योंकि पूजा के समय हँसना-रोना, गाना-बजाना, यहाँ तक कि एक शब्द भी बोलना मना है। पूजा संपन्न होने के बाद वे सब पुनः गाँव लौट सकते हैं। अगर इस दौरान गाँव के बाहर ही किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो बाहर ही उस व्यक्ति का अंतिम संस्कार कर दिया जाता है। इसके पीछे मान्यता है कि सृष्टि के आरंभ में जन्म और मृत्यु दोनों ही नहीं होते थे, इसलिए उस परंपरा का पालन किया जाता था। माना जाता है कि इस नियम का उल्लंघन होने पर पूरे साल गाँव वाले बीमार पड़ते हैं और उनका अमंगल होता है। वर्तमान में इस संबंध में अचाई का निर्णय एवं निर्देश ही महत्वपूर्ण है।

साधारणतः यह पूजा सुबह से शाम तक की जाती है। पूजा से एक दिन पहले सारी रात चकदिरी के घर कीर्तन किया जाता है। पूजा के बाद अचाई अपने सहयोगियों के साथ गाँव की परिक्रमा करते हुए प्रत्येक घर में 'मुद्रा'[28] (मंत्रोच्चारित बाँस का छोटा चुंगा) बाँधते हैं। मुद्रा की गाँठ एक ही साँस में बाँधी जाती है। ये सारे कार्य लुकू चकदिरी के माध्यम से संचालित किए जाते हैं। स्थानीय भाषा में इसे 'कामि मुद्रा खामा' भी कहा जाता है।

इस दिन गाँव में एक साथ कई देवी-देवताओं की पूजा की जाती है, यथा-लांप्रा, बुरासा, नाक्रि (गाँव सुरक्षा देवता), आकाथा, बिकाथा, चौत्र सेङगोरा, केर, तोय सोकाल (जल देवी) आदि। उल्लेख्य है कि यह जनजाति मूर्ति की पूजा नहीं करते हैं बल्कि वे ताजे वाथोई बाँस, जिसे स्थानीय भाषा में वाथप कहा जाता है या मिट्टी की कलश से इन देवी-देवताओं के प्रतीक बनाते हैं। पूजा में बकरे की बलि दी जाती है। बड़े-बड़े रोगों, महामारियों (कलेरा, मलेरिया आदि बीमारी), प्राकृतिक दुर्भिक्ष, अपदेवताओं की कुदृष्टि से गाँव वालों की रक्षा, उनकी सुख-समृद्धि, शांति एवं उनकी मंगल कामना के लिए यह पूजा की जाती है।

केर पूजा वाले दिन ही शाम को गाँव की सीमा में नाक्रि/दुवारी फमानि अथवा खि-बोथार पूजा की जाती है। यहाँ नाक्रि गाँव-रक्षा देवता के प्रतीक है। अनेक नियमों का पालन करते हुए यह पूजा-पद्धति पूरी की जाती है। इस पूजा में कतुवा साला और नाजिसाला नामक दो व्यक्तियों की जीवन-कथा सुनाई जाती है। इस कथा को अन्य किसी भी जगह और समय में सुनाना निषिद्ध है। अचाई जब यह कथा सुनाकर खत्म करने वाले होते हैं तब मुख्य पूजा शुरू किया जाता है। पूजा के दौरान बात करना, हँसना-रोना, मजाक करना आदि मना है। मान्यता है कि ऐसा करने पर गाँव वालों का अशुभ और अमंगल होता है। इस पूजा में तीन कबूतरों की बलि दी जाती है। बलि के बाद सहयोगी अचाई साँस बंद करके नाक्रि एवं कबूतरों को वहीं जमीन में गाड़ देता है। उसके बाद अचाई पूजा-समाप्ति की घोषणा करता है और सारे लोग पास के नदी-घाट आदि में नहाकर चकदिरी के घर चले आते हैं। सारे गाँव वाले 'सेमा'[29] जानने के लिए चकदिरी के घर समवेत होते हैं।

6. बलङ सुवामा[30]:

अन्य सभी जनजाति समुदाय की भाँति जमातिया जनजाति भी मूलतः प्रकृति की पूजा करती है। उनके समाजपति यानी हदा अकरा की निगरानी में हर साल बलङ सुवामा पूजा की जाती है। इस दिन प्रकृति-देवता से जमातिया समुदाय की सुख-शांति, समृद्धि, उनकी जमीन और जंगल की सुरक्षा, उनकी खुशहाली जीवन की प्रार्थना की जाती है। साथ ही हदा की संतानों को बताया जाता है कि प्रकृति उनके पिता हैं, उनका आदर और सम्मान करना उनकी पहली ज़िम्मेदारी है। अनावश्यक जंगल को न काटें और न जलाएँ जितनी ज़रुरत है उतना ही जंगल को प्रयोग में लाएँ हदा अकरा के गाँव की सीमा वाले जंगल में उन्हीं के नाम से यह पूजा दी जाती है। इस दिन एक साथ कई देवी-देवताओं यथा-थुनाइरग, बनिरग, बुरासा, जङपिरा और हायचुकमा आदि की पूजा की जाती है। थुनाइरग-बनिरग देवताओं की पूजा में दो बकरे, बुरासा देवता की पूजा में एक बकरा, जङपिरा की पूजा में एक बतख एवं हायचुकमा देवी की पूजा में दो बतखों की बलि दी जाती है। इसके अलावा खोई, चावल, केले, बताशे, देशी शराब, नए वस्त्र आदि सामान भोग के रूप में चढ़ाए जाते हैं। भोग में चढ़ाए गए प्रसाद को गाँव के किसी भी परिवार में ले जाने की मनाही है। इसलिए पूजा स्थल में ही भोजन की व्यवस्था की जाती है। सभी देवताओं के प्रतीक ताजे वाथोई बाँस से बनाए जाते हैं। पहले यह पूजा अगहन महीने में की जाती थी, अब अषाढ़ के महीने में की जाती है। यह पूजा हदा अचाई द्वारा संपन्न की जाती है। इस पूजा में हदा द्वारा बनाई गई पूजा समिति के सदस्य, हदा अकरा के गाँव के स्त्री-पुरुष एवं अन्य जमातिया गाँवों के चुनिंदा स्त्री-पुरुष शामिल होते हैं। जैसा कि हर पूजा

से पहले लांप्रा दी जाती है, उसी तरह 'बलङ सुवामा' पूजा से पहले भी अकरा के आंगन में लांप्रा दी जाती है।

7. माय खुलूमा :

'बलङ सुवामा' पूजा के दिन ही हदा अकरा के घर 'माय खुलूंमा' पूजा की जाती है। इस दिन पूरे समुदाय की ओर से माय खुलूमा एवं लांप्रा पूजा एक साथ की जाती है। यह पूजा जमातिया समुदाय में धन-संपत्ति की समृद्धि एवं उनकी खुशहाली की कामना के लिए की जाती है। उल्लेख्य है कि केवल इसी दिन हदा अकरा के घर के भीतर लांप्रा पूजा की जाती है। अन्य दिनों में यह पूजा आंगन में की जाती है।

पूजा में प्रत्येक जमातिया परिवारों में सुख-शांति, समृद्धि, फसलों में वृद्धि की कामना की जाती है। खुलूमा देवी की पूजा के लिए घर के भीतर एक झूला बनाया जाता है। जिसमें एक आंवा बोथाई[31] को झूले में लिटाकर दुलार किया जाता है। औरतें लोरी गाती हुई उसे सुलाती हैं। यह पूजा हदा अचाई द्वारा की जाती है।

8. कोथार चिब्रोई मोताई (चौदह देवता)

जमातिया जनजाति में कोथार चिब्रोई मोताई (चौदह देवता) की पूजा भी अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस समाज में चौदह देवताओं की पूजा मुख्य रूप से बच्चे के अन्नप्रसन एवं विवाह के समय ही की जाती है। इसकी स्थापना मुख्य घर के द्वार के सामने की जाती है। प्रतीक रूप में चौदह वाथोई[32] बाँस के छोटे-छोटे टुकड़े (वाथो) द्वार के सामने गाड़े जाते हैं। चौदह देवताओं की स्थापना से पहले स्थान या जगह को पवित्र किया जाता है। जगह पवित्र करने के बाद उसे वाथोई बाँस से बेड़ा बनाकर सुरक्षित किया जाता है और उसके दो प्रवेश द्वार बनाए जाते हैं।

9. संगोत्रां आमा :

पारिवारिक सुख-शांति, समृद्धि एवं उन्नति हेतु यह पूजा की जाती है। इसके अलावा घर की कोई भी अमूल्य वस्तु खो जाने पर देवी माँ को स्मरण किया जाता है और वस्तु मिलने के बाद, घर के किसी सदस्य की तरक्की होने पर या अन्य कोई शुभ समाचार मिलने पर देवी संगोत्रां मां की पूजा की जाती है। पूजा के दौरान कमलापति 33 की कथा सुनाई जाती है। यह पूजा संध्या समय की जाती है। कथा के बीच में बकरे की बलि दी जाती है, बलि के बाद कथा पूरी की जाती है। अचाई ही कथा सुनाए यह जरूरी नहीं है, घर का कोई भी बुजुर्ग कथा सुना सकता है। इस पूजा के अलावा अन्य किसी अनुष्ठान या सामान्य दिनों में इस कथा को सुनाने की मनाही है।

10. हजाईगिरी :

जमातिया समाज में साल में एक बार दुर्गा पूजा के सातवें दिन अर्थात दशहरे के बाद यह पूजा की जाती है। चावल से भरे हुए हाँडी से देवी माँ का प्रतीक बनाया जाता है। पारिवारिक शांति, सुख-समृद्धि, विकास और फसलों में वृद्धि के लिए यह पूजा की जाती है। इस समाज में हजाईगिरी के दिन झूठ बोलना एवं चोरी करना गलत नहीं माना जाता है, परन्तु अमूल्य या महँगी वस्तुओं की चोरी करने की मनाही है। इस दिन घर-घर में कई पकवान और मिठाई बनाए जाते हैं, जिसे गाँव के बच्चों के लिए रख दिया जाता है। मौज-मस्ती के बीच गाँव के हर उम्र के लोग समूह/ग्रुप बनाकर ढेर सारी ताज़ी हरी सब्ज़ियाँ, फलों (नारियल, पपीता, सीताफल, गन्ने आदि), मछलियों, मुर्गे-मुर्गियों, बतखों आदि की चोरी करते हैं। जिन्हें वे दूसरे दिन मिल बाँटकर खाते हैं। यह उत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया जाता है। इस दिन कई सांस्कृतिक अनुष्ठान, कथावाचन, गीत-नृत्य आदि का आयोजन किया जाता है। इस पूजा में बलि नहीं दी जाती है।

11. हाङग्राई :

जमातिया समुदाय द्वारा बड़े उत्साह एवं आनन्द के साथ पोष-संक्रांति का पालन किया जाता है। स्थानीय बोली में इसे हाङग्राई कहा जाता है। मान्यता है कि हाङग्राई के दिन व्यक्ति पशु-पक्षियों के उठने से पहले भोर में उठकर नहाता है, तो उसके शरीर का कष्ट दूर होता है। बड़े रोगों से उसे मुक्ति मिलती है, उसका कल्याण होता है। इस दिन गृहस्वामी एवं स्वामिनी स्नान के बाद सबसे पहले रंदक[34] को प्रणाम करते हैं। उसके बाद वे घर के बड़े-बुजुर्गों सहित गाँव के बड़े और गुरूजनों के पाँव छूकर

उनका आशीर्वाद लेते हैं। बच्चे नहाकर सबसे पहले माता-पिता फिर बड़े-बुज़ुर्गों के पाँव स्पर्श कर उनका आशीर्वाद लेते हैं। युवक-युवतियाँ मिलकर इस दिन विशेष भोजन की व्यवस्था करते हैं। गाँव के नवविवाहित दम्पत्तियों को इस दिन घर बुलाकर भोजन कराने का रिवाज़ है। इससे संबंधों में मिठास बनी रहती है। साथ ही इस दिन गत वर्ष हुए मृतकों की अस्थि विसर्जन कर गाँव के बड़े-बुज़ुर्गों को भोजन कराने की परंपरा है।

12.

बुरासा मोताई[35] :

यह पूजा अपदेवताओं की बुरी नज़रों से मुक्ति पाने के लिए की जाती है। प्राय: बच्चों के ऊपर बुरासा मोताई की नज़र रहती है। यदि कोई बच्चा दोपहर में जंगल या किसी निर्जन स्थान में अकेला खेलता है। रात की अंधेरे में अकेला घूमता है तो उसे बुरासा मोताई की नज़र लगती है। स्थानीय भाषा में इसे 'बुरासा सिलि नाङ' कहा जाता है। यदि शिशु दिन में स्वस्थ रहता है पर संध्या होते ही डर से काँपने लगता हो, ज़ोर-ज़ोर से रोता हो, बार-बार सोते से जागकर रोने लगता हो, उसे बुख़ार आदि आता हो, किसी बड़े के हाथ-पाँव में अचानक दर्द उठने लगे तो बुरासा की नज़र लगी है, इस आशंका से गाँव के अचाई के पास जाकर लोग अपनी समस्याएँ कहते हैं। अचाई दिन और तिथि देखकर बुरासा की पूजा करता है। यह पूजा कई समय में की जाती है, जैसे-दोपहर की सिलि होने पर दोपहर में, संध्या सिलि

की पूजा संध्या में, रात की सिलि की पूजा रात में की जाती है। बुरासा पूजा में बकरे या मुर्गे की बलि दी जाती है। बुरासा देवता की पूजा घर-आंगन से दूर निर्जन जगह में ही की जाती है। प्रसाद को घर ले जाना निषिद्ध है इसलिए पूजा-स्थल में ही भोजन की व्यवस्था की जाती है। पूजा समग्री-ताजे वाथोई बाँस का जोड़ वाला हिस्सा, जिसे वाथो कहा जाता है, चावल, केले, खोई, चीनी, बताशे, कच्ची हल्दी आदि।

13. नक्सु मोताई[36] :

जमातिया समाज में नक्सु मोताई (शांति, कुंति एवं विश्वरी देवियाँ) की पूजा भी प्रचलित है। परिवार में इन देवियों की स्थापना समाज से छुपाकर किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी के घर से लौटने के बाद उल्टी करता हो, उसे चक्कर आने लगता हो, उसे सिर दर्द होने लगता हो तो लोग अचाई के पास निदान के लिए जाते हैं। अचाई ध्यान लगाकर बता देता है कि उसे नक्सु मोताई की बुरी नज़र लगी है। स्थानीय भाषा में इसे 'थिकाना नायमोङ' कहा जाता है। उसके बाद अचाई मंत्र पढ़कर बीमार व्यक्ति के ऊपर पवित्र जल छिड़कता है, जिससे वह ठीक हो जाता है। या फिर पसा खालाइसा अर्थात केले, बताशे, चीनी, थोड़े से चावल से तीनों देवियों को स्मरण कर भोग लगाया जाता है। यह एक तरह से परिवार विशेष द्वारा की जाने वाली पूजा है।

14. नवारी खर :

ज़मीन के नीचे कोई बड़ी सुरंग या गड्ढे को स्थानीय बोली में नवारी खर कहा जाता है। लोक मान्यता है कि घर के आस-पास कोई पुराना और बड़ा सुरंग या बड़े पेड़ की जड़ें घर के भीतर आ जाए तो अशुभ होता है। इससे घर के लोग बीमार पड़ने लगते हैं। ऐसे में कुछ लोग अचाई के निर्देशानुसार या तो निवास स्थान बदल लेते हैं या फिर अपदेवता की कुदृष्टि से परिवार वालों की रक्षा एवं स्वास्थ्य लाभ के लिए अचाई बुलाकर वे नवारी खर की पूजा कराते हैं। इस पूजा में बतख या मुर्गे की बलि दी जाती है। यह पूजा दोपहर में की जाती है।

15. बोरोईरग :

जमातिया समाज में परिवार का कोई सदस्य यदि बहुत दिनों से बीमार रहने लगता है तो अचाई बुलाकर बोरोईरग नामक पूजा देने की प्रथा प्रचलित है। इस पूजा में सात देवियों को एक साथ भोग लगाया जाता है। ये देवियाँ बहनें मानी जाती है। जिनकी कुदृष्टि पड़ने से व्यक्ति बीमार/अस्वस्थ रहने लगता है। इसकी पूजा ताजे बाँस का मचान बनाकर उसके ऊपर पका हुआ चावल, आंवा (चावल की बनी मिठाई), खोई आदि का भोग

लगाकर संपन्न किया जाता है। इस पूजा में बतख, मुर्गे, कबूतर, बकरे, कछुए आदि की बलि दी जाती है।

16. आमि कोथोई एवं मोखा कोथोई :

जमातिया समाज में इन्सानों का ही नहीं पशु-पक्षियों का भी श्मशान घाट बनाया जाता है। खासतौर पर बिल्ली और बन्दरों का। इनका श्मशान घाट गाँव से दूर ही बनाया जाता है। लोक मान्यता है कि बिल्ली एवं बंदर की मृत्यु स्थान के संपर्क में यदि कोई व्यक्ति आता है या ऐसे स्थान पर बच्चे खेल-कूद करें तो वे बीमार पड़ते हैं। जिनसे मुक्ति या रक्षा के लिए अचाई द्वारा मुर्गे की बलि देकर श्मशान घाट की पूजा की जाती है। यह पूजा दोपहर या साँझ को ही दी जाती है।

उक्त सभी पूजाओं के अलावा, होली, दीवाली, दुर्गापूजा आदि सभी हिंदू देवी-देवताओं की पूजा इस जनजाति द्वारा की जाती है।

वर्तमान में शिक्षा, आधुनिकता, शहरीकरण, भूमंडलीकरण एवं बाह्य संस्कृति के प्रभाव से धीरे-धीरे इसमें काफ़ी बदलाव आ गया है। ये सभी पूजा-पद्धतियाँ जमातिया जनजाति को जातीय एवं सामाजिकता की पहचान देती हैं। जिनके अनुपालन से समाज और अधिक संगठित होता है तथा सभी व्यक्ति अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक होते हैं।

संदर्भ :

1. देबबर्मा एवं त्रिपुरा सरनेम लिखने वाले समुदाय के लोग इसके अंतर्गत आते हैं।
2. त्रिपुरा का इतिहास ग्रंथ
3. 'मॉडर्निटी इन ट्रेडीशनरू ए हिस्टोरिकल स्टडी ऑफ द जमातिया ट्राइब ऑफ त्रिपुरा': डॉ. के. बी जमातिया, पृ 32, अक्षर प्रकाशन, त्रिपुरा, 2007
4. वही, पेज नं 33
5. लोक देवता
6. 'मॉडर्निटी इन ट्रेडीशन: ए हिस्टोरिकल स्टडी ऑफ द जमातिया ट्राइब ऑफ त्रिपुरा'रू डॉ. के. बी जमातिया, पृ 34, अक्षर प्रकाशन, त्रिपुरा, 2007
7. वही पेज नं 34
8. समाज पति
9. बिना भुजा वाले बाबा गॉरिया
10. भुजा वाले बाबा गॉरिया
11. एक तरह की सीमा-रेखा
12. पवित्र
13. अशौच
14. बलि पूजा
15. माँ त्रिपुर सुन्दरी की पूजा, जो कि उदरपुर, गोमती जिला में स्थित है।
16. देशी शराब
17. ये दो बनाए जाते हैं-एक हारि बुइसू के दिन बाबा गॉरिया की स्थापना के लिए खेरफांग के आंगन में बनाया गया बांस का मंडप होता है, इस मंडप में बांस सेएक आसन बनाया जाता है, बाबा की स्थापना इसी आसन पर की जाती है। तो दूसरा नदी किनारे बनाया जाता है।
18. बाबा गॉरिया के पूजा-स्थल पर बांस की एक पोरी काटकर उसमें शराब भरकर रखी जाती है..यह पोरी लाङखा कहलाती है
19. बलि के दौरान पशु की गर्दन को फँसाकर रखने वाला लकड़ी का साँचा..
20. सहायक अचाई
21. चावल की खील
22. स्वेच्छा से सात दिनों के लिए बाबा के नाम पर अपने को समर्पित करने वाले भक्तजन। इसमें बच्चे से लेकर बूढ़े तक शामिल होते हैं।
23. पूजा के दौरान शुद्धता बरतने के लिए जगह-जगह बांस चीरकर गाड़ दिए जाते हैं, ये एक तरह की लक्ष्मण-रेखा होते हैं, जो घर इनके खंग के अंदर आ जाते हैं, उनके लोगों का खंग से बाहर जाना और बाहर के लोगों का खंग के अंदर आना मना होता है।
24. अन्न एवं कपास की देवी
25. चावल से भरे कलश को स्थानीय बोली में रंदक कहा जाता है।
26. गाँव सुरक्षा एवं शुद्धिकरण हेतु की जाने वाली पूजा
27. निषेद, सुरक्षा एवं पवित्रता के प्रतीक
28. अपदेवताओं की बुरी नजर, प्राकृतिक दुर्घटनाओं एवं महामारियों, बड़ी बीमारियों से गाँव वालों की सुरक्षा हेतु यह मंत्रोच्चारित मुद्रा गाँव के हर घर के छज्जे पर बाँधा जाता है।
29. भविष्य
30. प्रकृति पूजा
31. यह मिठाई सिटकी राइस को लाईरु नामक पत्ते में लपेटकर बनाया जाता है।
32. बाँसों के प्रकारों में से एक है। जिसे जमातिया जनजाति बाँसों का राजा मानती है, इसे सबसे अधिक पवित्र माना जाता है। हर पूजा में इसी बाँस का प्रयोग किया जाता है।
33. कमलापति के जीवन-संघर्ष एवं उसकी भकि से माँ कैसे प्रसन्न हुई की कथा सुनाई जाती है।
34. चावल से भरे हाँडी, जिसका खाली होना अशुभ माना जाता है।
35. अपदेवता
36. नक्सु मोताई के नाम से तीन देवियों, शांति, कुंति और विश्वरी की पूजा की जाती है।

❖

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, त्रिपुरा विश्वविद्यालय
सूर्यमणि नगर, अगरतला, त्रिपुरा वेस्ट-799022
मोबाइल : 8974009245 ई-मेल : milanrani08@gmail.com

भारत की विचार परंपरा और स्वामी दयानंद

— अजीत कुमार पुरी

कर्म सिद्धांत से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक अच्छा या निकृष्ट कर्म विशेष प्रकार का फल उत्पन्न करता है, जिससे कोई भी जीव छूट नहीं पा सकता। इस संसार में कार्य-कारण की जो सार्वभौमिक व्यवस्था है, कर्मफल का सिद्धांत इसी की परिणति है। एक व्यक्ति पर उसके कर्मों का फल वर्तमान जीवन में ही घटित नहीं हो सकता। महाभारत के आदिपर्व में गो दुग्ध के प्रतीकों से इसे व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि जैसे गाय कुछ खा लेने के पश्चात ही पर्याप्त दूध दे देती है किंतु कर्मों का फल ऐसी शीघ्रता से उपस्थित नहीं होता, बल्कि दुष्कर्म का अपना फल धीरे-धीरे अपने कर्ता की जड़ को कुतर डालता है। इस प्रकार से कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत भारतीय विचारणा की मूल पहचान है।

भारत का विचार भारतीय संस्कृति की निरंतरता का परिणाम है। इसका स्थूल ढाँचा प्रायः वही है, जिसकी नींव वैदिक ऋषियों ने डाली थी। ऋषियों के इन विचारों में जीवन का आदर्श एक ऐसी प्रवाहमान सरिता के समान माना जा सकता है, जिसमें छोटी-छोटी जलधाराएँ आकर मिलती जाती हैं, उसी तरह जैसे गंगा के बहाव में असंख्य छोटी-बड़ी नदियाँ आकर मिल जाती हैं और अपना अस्तित्व खोकर स्वयं गंगा का एक भाग बन जाती हैं।

वैदिक युगीन प्राचीन ऋषियों ने सार्वभौमिक जिन विचारों को प्रवाहित किया, वह आज भी सनातन रूप में संपूर्ण भारत में प्रवाहित हो रहा है। इस सनातन प्रवाह को यवन, हूण, शक, आभीर, तुर्क, अफ़गान, मुग़ल, अंग्रेज़ आदि कितने ही समूहों ने प्रभावित करने का प्रयास किया। ''पर इनसे उस प्रवाह की धारा अवरुद्ध नहीं हुई, इससे उसकी शक्ति और अधिक बढ़ती गई यही कारण है कि आज भी भारत के निवासी उन्हीं आदर्शों के अनुसार जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करते हैं, जिन्हें आर्य ऋषियों ने वैदिक सूक्तों द्वारा प्रतिपादित किया था।''[1]

भारत के विचार के आदि स्रोत वेद हैं, इसलिए भारत में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखा जाता है। आस्तिक हिंदू समाज इसे ईश्वरीय ज्ञान मानता है। आर्य ऋषियों ने जिस किसी विषय पर भी विचार किया हो, उस विचार का विकास या तत्त्वचिंतन का आरंभ उन्होंने वेद से होना ही स्वीकार किया हैं; आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, साहित्य, राजनीति, अर्थनीति आदि जितनी भी ज्ञान परंपराएँ प्राचीनकाल में विकसित हुईं, उन्हें वेद पर आधारित स्वीकार किया जाता है।

सृष्टि के आदि से लेकर महाभारत पर्यंत संपूर्ण संसार में मानव समाज भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुसार ही अग्रसर था किंतु कालांतर में आलस्य और प्रमाद से वेद ज्ञान परंपरा क्षीण हुई, तब बहुत से मतपंथ उदित हुए, किंतु इनका वैचारिक आधार भी वेद से निकले विचार ही थे। भारत में बौद्ध और जैन मत को इसी दृष्टि से देखा जा सकता है।

'अयं निज परोवेति' की उत्तम भावना होते हुए भी भारतभूमि को बार-बार आक्रांत होना पड़ा, जिसका सफल प्रतिकार भारतीय नरेश करते रहे, किंतु ईसा की सातवीं सदी से इस्लामी आक्रांताओं ने जो निरंतर आक्रमण किए, उससे

भारत देर तक बचा नहीं रह सका। किंतु-''आठवीं और नवीं सदियों में भारत के अन्य प्रदेशों में अपने प्रभुत्व का प्रसार करने के जो भी प्रयत्न अरबों ने किए, वे सफल नहीं हो सके। आर्य धर्म और संस्कृति में अनेक प्रकार की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाने पर भी भारत में अभी इतनी शक्ति विद्यमान थी कि अरब की विश्वविजयी मुस्लिम सेनाएँ आर्यों से परास्त होती रहीं।''[2]

इस्लामिक आक्रांताओं के दल के दल निरंतर आते रहे, भारतीय नरेश उनको रोकने के भरसक प्रयत्न करते रहे, किंतु भारत के कुछ भागों में इन आक्रांताओं ने अपने शासन स्थापित कर ही लिए, जिसका प्रतिरोध भारतीय आख़िरी श्वास तक करते रहे। इन आक्रांताओं ने युद्ध नियमों को धता-बताते हुए बड़ी संख्या में नरसंहार किए, नगरों एवं गाँवों को जलाया, नष्ट-भ्रष्ट किया, पुस्तकालयों को अग्नि के हवाले कर दिया, इन सब कारणों से भारतीय समाज में भारी परिवर्तन हुए। भक्ति आंदोलन के माध्यम से भारत ने प्रतिकार किया, तो वहीं प्रताप, शिवाजी, गुरुगोविंद सिंह जैसे नायकों के नेतृत्व में संघर्ष जारी रहा। पेशवाओं की अगुवाई में भारत अपनी वैचारिक और सैनिक लड़ाई जीतने ही वाला था कि यूरोपिय शक्तियों के प्रवेश से स्थिति जटिल हो गई। ईस्ट इंडिया कंपनी के संधिजाल में भारतीय नरेश जाने अनजाने फँसते गए और भारत पुनः संघर्ष करने को विवश हो गया। उस समय भारत के कुछ त्यागी, तपस्वी ऋषि मुनियों ने भारतीय विचार को जीवित रखने का सफल प्रयत्न किया जिसमें स्वनामधन्य स्वामी दयानंद सरस्वती आदर एवं सम्मान के योग्य हैं।

विक्रम की बीसवीं शती में स्वामी दयानंद ने आंतरिक एवं बाह्य, विषम परिस्थितियों में कैसे भारतीय सनातन विचारों का प्रतिपादन किया, इसकी गवेषणा करने से पूर्व भारतीय विचारणा के मूल तत्वों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

भारत का विचार : मूल तत्त्व

वेदों की सर्वस्वीकार्यता—वेद का विचार-संसार असीमित है। वह देश और काल की सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है। इसलिए वेदों में प्रतिपादित विचार किसी एक स्थान अथवा काल के लिए नहीं है। ''वह शाश्वत है और सार्वभौम है। युगों तक मानव मात्र का मार्गदर्शन करने की उसमें क्षमता है।''[3] यही कारण है कि वेद प्रतिपादित विचारों की भारत में सर्वस्वीकार्यता आदिकाल से अब तक है।

वैदिक विचारणा का आदर्श है समस्त समाज में बंधुत्व और मित्रता की भावना का विस्तार। 'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे' (यजुर्वेद 16.18) अर्थात् हम एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। इसी तरह वेदों का विचार है कि यह समस्त ब्रह्मांड ईश्वर से आच्छादित है। इसलिए मनुष्यों को दूसरे के धन का लोभ नहीं करना चाहिए, अपितु त्याग की भावना रखते हुए पदार्थों का उपयोग करना चाहिए।[4]

वैदिक ऋषियों ने समाज को शरीर के अंगों के समान मानते हुए, उसके पूर्ण संगठन पर बल दिया। जिसका आधार था वेद का वह विचार कि जिसमें शरीर के विविध अंगों के प्रतीक द्वारा समाज के एकीकरण का विचार था। यथा-'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत्॥' (ऋग्वेद 10.90.12) जैसे शरीर में मुख, भुजाएँ, जाँघें और पैर परस्पर जुड़कर शरीर के सभी कार्यों को सुचारू रूप से संपादित करते हैं, वैसे वेद में ऐसे चार सामाजिक वर्णों की विचारणा की गई कि जिनके परस्पर एकीकरण से संपूर्ण समाज उन्नति को प्राप्त हो। जैसे शरीर का कोई अंग श्रेष्ठ और निकृष्ट नहीं होता वैसे ही समाज के यह अंग भी समान महत्व के हैं। कोई छोटा या बड़ा नहीं होता। अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय। (ऋग्वेद 5.60.5) अर्थात् न तो कोई बड़ा है, न तो कोई छोटा। सभी भ्राता के समान हैं। सौभाग्य के लिए सभी साथ-साथ बढ़े।

वेदों में संपूर्ण विश्व को एक समाज मानकर साथ-साथ चलने, विचार करने की प्रेरणा दी गई है, जिससे कि सब साथ मिलकर सुखपूर्वक रह सके। वेदों में व्यक्ति से लेकर समाज पर्यंत जो उत्कृष्ट विचार व्यक्त हुए, इस कारण समस्त भारत में वेदविहित इन विचारों का आदि काल से आदर होता आ रहा है।

ऋत या सत्य का विचार—संपूर्ण ब्रह्माण्ड सर्वत्र कुछ निश्चित नियमों से संचालित हो रहा है, इस नियमबद्धता को वेद विचार में 'ऋत' कहा गया है। 'ऋत' ऐसा नियम है कि

जो अनादि और नित्य है। इसका उल्लंघन करना किसी के वश में नहीं है। सूर्य का उदित और अस्त होना, तारों और नक्षत्रों का अपने स्थान पर रहते हुए गतिशील रहना, समय पर फलों का पकना आदि, सब 'ऋत' के कारण ही है। यह 'ऋत' केवल प्रकृति का ही नहीं, अपितु प्राणियों और मनुष्यों के जीवन का आधार भी है, और इसके मूल में सर्वशक्तिमान ईश्वर विराजमान हैं।[5] जो समस्त संसार की रचना करता है। इसलिए वेदों में यह स्वीकार किया गया कि मानव 'ऋत' के इन नियमों का ज्ञान प्राप्त कर, अपने जीवन को अनुकूलित करे, क्योंकि इसी में उसका हित एवं कल्याण समाहित है।

आगे चलकर इसी ऋत द्वारा 'सत्य' के विचार का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय मनीषियों ने यह विचार प्रतिपादित किया कि-''सत्य ही धर्म का मूल है, और सत्य का अनुसरण करने में ही मनुष्य का कल्याण है। संसार में जो नियम और व्यवस्था दृष्टिगोचर होती है, वह सत्य के कारण ही है। धर्म उस अवस्था का नाम है, जिसका पालन कर मनुष्य को इस लोक में अभ्युदय और परलोक में मोक्ष या निःश्रेयस को प्राप्त करना है।''[6] धर्म के संबंध में ऋषियों की निश्चित मान्यता है कि यह धर्म मनुष्य का बनाया नहीं हो सकता। मनुष्य अपनी इच्छा से इसे निर्मित नहीं कर सकता, कारण कि धर्म, सत्य, पर आश्रित होता है और सत्य अनादि एवं शाश्वत है, जो कि मनुष्यकृत नहीं है।

पुनर्जन्म और कर्मफल—भारतीय विचारकों की मान्यता है कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार पुनर्जन्म लेता है। जिसे मृत्यु कहा जाता है, वस्तुतः वह शरीर का बदलाव मात्र है। जैसे जीर्ण-शीर्ण वस्त्र उतारकर मनुष्य नए वस्त्र धारण करता है, वैसे ही वृद्ध या रोग से ग्रस्त शरीर को त्यागकर जीवात्मा नया शरीर धारण कर लेती है। गीता में वासुदेव कृष्ण ने इसी पुनर्जन्म और कर्मफल की मीमांसा कर, अर्जुन को सत्य की रक्षा के लिए प्रेरित किया था।

भारत के अनंतर विश्व के दूसरे समाजों में मनुष्य के एक बार जन्म लेने की मान्यता है और इस विचार का प्रतिपादन किया गया है कि न्याय की रात्रि में सबके कर्मों का लेखा-जोखा सामने रखा जाएगा और किसी विशेष पैगंबर या दूत की साक्षी से जीव को स्वर्ग या नर्क की प्राप्ति होगी।

कर्म सिद्धांत से यह ज्ञात होता है कि प्रत्येक अच्छा या निकृष्ट कर्म विशेष प्रकार का फल उत्पन्न करता है, जिससे कोई भी जीव छूट नहीं पा सकता। इस संसार में कार्य-कारण की जो सार्वभौमिक व्यवस्था है, कर्मफल का सिद्धांत इसी की परिणति है। एक व्यक्ति पर उसके कर्मों का फल वर्तमान जीवन में ही घटित नहीं हो सकता। महाभारत के आदिपर्व में गो दुग्ध के प्रतीकों से इसे व्याख्यायित करते हुए कहा गया है कि जैसे गाय कुछ खा लेने के पश्चात् ही पर्याप्त दूध दे देती है किंतु कर्मों का फल ऐसी शीघ्रता से उपस्थित नहीं होता, बल्कि दुष्कर्म का अपना फल धीरे-धीरे अपने कर्ता की जड़ को कुतर डालता है।[7] इस प्रकार से कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत भारतीय विचारणा की मूल पहचान है। इसके संबंध में 'धर्मशास्त्र का इतिहास' के लेखक पांडुरंग वामन काणे ने सम्मति देते हुए लिखा है कि-''कर्म का सिद्धांत कोई यांत्रिक कानून नहीं है, यह एक प्रकार से नैतिक एवं आध्यात्मिक आवश्यकता है यदि कर्म एवं पुनर्जन्म का सिद्धांत नहीं होता तो हम इस लोक को अनियंत्रित मानते और यह समझते कि स्रष्टा लोगों के कर्मों की चिंता नहीं करता और मनमाने ढंग से लोगों को पुरस्कार आदि देता है।''[8]

अध्यात्म भावना के साथ पुरुषार्थ चतुष्ट्य—भारतीय विचारणा की एक और मौलिक पहचान है, उसकी अध्यात्म-भावना। भारतीय ऋषियों ने बहुत पहले जान लिया था कि भौतिक संसार के परे भी कोई सत्ता है। मानव शरीर में जो जीवात्मा है, वह शरीर के नष्ट होने के बाद भी अक्षुण्ण रहती है। यह आत्मा अनश्वर, अनादि और अनन्त है। इस आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। मानव जीवन का अंतिम ध्येय मनीषियों ने मोक्ष को निर्धारित किया। ''परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि मोक्ष भी इस संसार के द्वारा प्राप्त होता है, इसलिए मुमुक्षु को इस संसार के तत्त्व का और उसके उचित उपयोग का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य होता है। संसार का तत्त्वज्ञान और उसका उचित उपयोग ही मोक्ष का साधक है, इसलिए आर्यों ने संसार का उपयोग करते हुए मोक्ष प्राप्त करने की विधि को अपनी सभ्यता का मूल ठहराया और इस विधि को चार भागों में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष के नामों से विभक्त किया।''[9]

शरीर रक्षा के लिए अर्थ की, मन को संतुष्ट करने के लिए काम की, बुद्धि की निर्मलता के लिए धर्म की और आत्मशांति के लिए मोक्ष, इनकी क्रमशः आवश्यकता मनुष्य के लिए बनी रहती है। जैसा संबंध बुद्धि का धर्म से है, वैसे ही शरीर का अर्थ से, मन का काम से और आत्मा का मोक्ष से है। मानव जीवन में इन्हीं अर्थ, धर्म कामादि में रति, मान, ज्ञान, न्याय और परलोक जैसी समस्त कामनाएँ समाहित हो जाती हैं।

मोक्ष प्राप्ति के लिए दो बातों को जानना आवश्यक है- पहला, सृष्टि उत्पत्ति के कारणों के कारण ईश्वर को जानना, दूसरा सृष्टि में उत्पन्न पदार्थों के उपयोग विधि को समझना। अर्थ और काम के बंधन से छूटने का नाम ही मोक्ष है, किंतु बिना इन दोनों के उपयोग किए मोक्ष होता भी नहीं। ऐसी स्थिति में धर्म का सहारा लेकर ही अर्थ और काम में संतुलन स्थापित किया जा सकता है। भोजन, वस्त्र, घर-गृहस्थी के लिए सभी आवश्यकताएँ संसार से ही लेनी पड़ती हैं। इसलिए जब तक संसार के कारणों का ज्ञान न हो जाए, तब तक उसके कार्य का वास्तविक उपयोग युक्ति-युक्त संभव ही नहीं। इसलिए इस सृष्टि से क्या-क्या और कितना-कितना, कब-कब और किस-किस तरह ग्रहण करना चाहिए, इन सब का विचार मनीषियों ने सबसे पहले किया।

अभय के साथ, उत्थान की भावना—जैसे भारतीय विचारणा में अध्यात्म का प्रवेश हुआ तो उसी के साथ-साथ अभय की भावना भी वहीं से प्रस्फुटित हुई। भारतीय मनीषियों के अनुसार जब मानव सबमें अपने को और अपने में सबको देखने लगता है और जब अपने पराए की भावना से ऊपर उठकर चारो-ओर एकत्व की अनुभूति रखने लगता है, तब वह 'अभय' की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। अभय की यह भावना ऐसी है, जब मनुष्य मित्र से, अमित्र से, शत्रु से, ज्ञात और अज्ञात वस्तु से, दिन और रात से अभय की कामना करता है और सभी दिशाओं से मित्रता की कामना रखता है।[10]

पूर्व में जिस अध्यात्म भावना की चर्चा की गई और सांसारिक गतिविधियों के संचालन के लिए जिस धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की बात की गई, इससे प्रमाणित होता है कि भारतीय विचारक संसार के प्रति विमुख नहीं थे। अपने इहलोक और परलोक के लिए वे सचेष्ट थे। इन मनीषियों का विचार था कि अभ्युदय और निःश्रेयस ही धर्म का पूर्ण लक्षण हो सकता है। इसलिए जहाँ उन्होंने एक ओर तप पर बल दिया, वहीं सांसारिक सुखों और भौतिक उन्नति की उपेक्षा भी नहीं की।

वेदों में सत्कामनाओं के पूर्ण होने की कामना की गई है, इसमें वैयक्तिक और सामूहिक उत्थान की भावना है। जो मनुष्य को उत्थान के स्थान पर पतन की ओर ले जाती है, उन्हें अपकामना मानकर तिरस्कार किया गया है और ऐसी कामनाओं को करने वाला पापी बनता है, ऐसा माना गया है,[11] इसी के साथ वेदों में सौ वर्ष तक स्वस्थ और सशक्त होकर देखने, सुनने, बोलने और अदीन होकर जीवन जीने की प्रार्थना है।

इस प्रकार भारतीय तत्वचिंतकों ने व्यक्ति से लेकर समाज पर्यंत चिंतन में यथार्थ दृष्टि का परिचय देते हुए सबमें ईश्वरीय उपस्थिति को स्वीकार किया। परिधि में भ्रमण करते हुए, व्यक्ति के सुख-दुःख पर विचार करते हुए भी केंद्र अर्थात् ईश्वर की सत्ता से विमुख नहीं हुए, इसलिए जहाँ, एक ओर बड़े-बड़े साम्राज्य स्थापित हुए, राजाओं ने चक्रवर्ती राज्य की कामना की, वहीं वन-प्रांतों में ऋषियों ने अपने अखंड ज्ञान साम्राज्य की स्थापना की। हजारों वर्षों तक इस विचार पर चलते हुए भारतीयों ने अपने ज्ञान और शौर्य का डंका दिक्दिगंत में बजाया, किंतु महाभारत काल के बाद कुछ शिथिलता आने के बाद वैदिक ज्ञान की अप्रवृत्ति होने से महाभारत का युद्ध हुआ और भारतीय विचार परंपरा को बड़ा आघात लगा, और उसका स्वरूप कुछ बिगड़ा, कालांतर में बाह्य आक्रमणों से इसके राजनीतिक स्वरूप में परिवर्तन आया और आधुनिक काल में दयानंद तक आते-आते भारतीय विचार तत्व में जड़ता-सी आ गई, जिसे ऋषि दयानंद ने अपने तप और ज्ञान से भारी पुरुषार्थ कर एक बार पुनः शुद्ध करने का दुर्धर्ष प्रयास किया।

दयानंद कालीन भारत की राजनीतिक व सामाजिक दशा—स्वामी दयानंद (1824-1883) गुजरात के काठियावाड़ क्षेत्रांतर्गत टंकारा नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। इनका कुल सामवेदी ब्राह्मणों का था। पिता के घर शुक्ल यजुर्वेद का पूर्ण अध्ययन करने के पश्चात् सच्चे शिव की

तलाश और मुक्ति की कामना करते हुए 'घर छोड़कर निकल गए और संन्यासाश्रम ग्रहण करके संसार में स्वामी दयानंद सरस्वती के नाम से प्रख्यात हुए।''[12] गृह त्याग के पश्चात् दयानंद सच्चे गुरु की तलाश में वर्षों तक भटकते फिरते रहे। इस खोज में उन्होंने हिमालय की कंदराओं से लेकर नर्मदा तट तक उत्तर भारत के अधिकांश स्थानों की यात्रा की। जब वे नर्मदा तट की यात्रा कर रहे थे तब, उन्हें समाचार मिला कि मथुरा में एक प्रज्ञाचक्षु दंडी स्वामी व्याकरण के धुरंधर विद्वान रहते हैं। उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि जिस प्रकार भी हो उनसे पूर्ण विद्या का अध्ययन करना चाहिए। विद्या प्राप्ति की इच्छा से रीवा बुंदेलखंड से होते हुए कार्तिक सदी 2 संवत् 1917 तद्नुसार बुधवार 4 नवंबर सन् 1860 यम द्वितीया के दिन मथुरा में आए। प्रथम कुब्जा के कुएँ पर ठहरे; फिर लक्ष्मीनारायण के मंदिर में जा रहे। उस समय रूद्राक्ष की माला पहनते, भस्म लगाते और संन्यासियों की भांति कौपीन बाँधते, अचरा छाती पर रखते, सिर पर मुंडासा बाँधते और एक बहुत बड़ी लाठी हाथ में रखते थे।''[13]

मथुरा में लगभग ढाई वर्ष तक दयानंद ने स्वामी विरजानंद सरस्वती के चरणों में बैठकर संस्कृत व्याकरण तथा अन्य ग्रंथों का गहरा अध्ययन किया। यहीं विरजानंद से उन्हें आर्ष और अनार्ष ग्रंथों के भेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। अध्ययन समाप्त होने के पश्चात् गुरु आज्ञा से दयानंद ने आर्ष ज्ञान के प्रचार और अनार्ष मतों के खंडन का व्रत ले सार्वजनिक जीवन में उतरे। 1864 से दयानंद ने सार्वजनिक रूप से वेदोपदेश देना प्रारंभ कर दिया। 1867 में हरिद्वार के कुंभ मेले में 'पाखंड खंडिनी पताका' फहराकर उन्होंने अवैदिक कर्मकांड की खुली आलोचना प्रारंभ की तो 17 नवंबर, 1869 को काशी में परंपरागत पंडितों के समूह को मूर्तिपूजा के प्रश्न पर निरुत्तर कर दिया। अपने उद्देश्यों के प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने 1875 में मुंबई नगर में आर्यसमाज नामक संगठन की स्थापना की जिसके नियमों को अंतिम रूप 1877 में लाहौर में दिया गया।

मुंबई में आर्य समाज की स्थापना के बार दयानंद ने पंजाब और राजस्थान प्रांतों की सघन यात्रा की, स्थान-स्थान पर उनके उपदेशों के प्रभाव से आर्य समाज की शाखाएँ खुलने लगी। उदयपुराधीश महाराणा सज्जन सिंह ने उन्हें अपना गुरु मान लिया। बंगाल प्रवास में वे केशवचंद्र सेन से मिले और उनके आग्रह पर उन्होंने अपने उपदेश हिंदी भाषा में देना प्रारंभ किया। संस्कृत-हिंदी में 'सत्यार्थ प्रकाश' जैसा कालजयी ग्रंथ लिखा और वेदों के भाष्य में लग गए, किंतु तेजी से बदलते घटना चक्र में वे जोधपुर वैदिक मत के प्रचार-प्रसार के लिए गए और वहीं धर्मविरोधियों के षड्यंत्रों का शिकार हो, विषपान से रुग्ण हो गए तथा कुछ समय बाद 30 अक्टूबर 1883 ई. को यह कहते हुए कि-'हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो', इस धराधाम को छोड़ दिया।

भारतीय नवजागरण काल के महान चिंतकों में दयानंद का स्थान अग्रगण्य है। अपने समय में उन्होंने हजारों मनुष्यों को प्रभावित किया, जिसका असर आज भी आर्यसमाज के माध्यम से भारतीय जन-मानस में अक्षुण्ण बना हुआ है। भारत के इस महान सपूत ने करोड़ों भारतवासियों के मन पर छाए अज्ञान, अंधकार को हटाने और अकर्मण्य पुरोहित वर्ग द्वारा शताब्दियों से रचे गए मिथ्यावाद को समाप्त करने के लिए अंतिम समय तक प्रयत्न किया। ''उन्होंने भारतीय समाज की वैज्ञानिक और तर्कसंगत आधार पर पुनर्रचना करके उसे राजनीतिक पराधीनता से मुक्ति पाने योग्य बनाने का जो प्रयत्न किया, वह अत्यंत सराहनीय है।''[14]

ईसा की उन्नीसवीं सदी में जिस समय दयानंद का प्रार्दुभाव हुआ, उस समय भारतीय समाज विशृंखल होता जा रहा था। भक्तिकाल के महान संतों ने जिस मानव एकता, समानता और ईश्वर भक्ति का जो निर्मल संदेश दिया था, वह मंद हो गया था, धर्म पर कर्मकाण्डों का दबाव बढ़ गया था। छत्रपति शिवाजी के हिंदूपदपातशाही साम्राज्य की स्थापना का अभियान जो पेशवाओं की अगुवाई में चल रहा था, 1764 में पानीपत के युद्ध में उसे गहरा धक्का लग चुका था। वस्तुतः राजनीतिक और सामाजिक स्थितियाँ विकट थी। राजनीतिक रूप से धूर्त अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से भारत के कई हिस्सों पर छल पूर्वक अधिकार कर लिया, जिस कारण ईसाई मिशनरियों को प्रोत्साहन मिला। 'इस्लाम ने भी हिंदू धर्म पर जेहाद बोल रखा था। वह हिंदू धर्म की आलोचना अत्यंत कठोर भाषा में करता था मिशनरियों की भांति ही इस्लाम ने भी हिंदुओं को मुसलमान बनाने का प्रयत्न किया।''[15]

भारत के अधिकांश भागों का भ्रमण करने के क्रम में दयानंद ने अपने चारों ओर मृत्यु, दरिद्रता, अभाव ओर भूखमरी को तांडव करते देखा। यही वह समय था जब 1860-64 में भयंकर अकाल पड़ा, जिसके कारण असमय ही लाखों लोग काल के गाल में समा गए। दयानंद ने देखा जो भारत कभी धन-वैभव सम्पन्न था, वह अज्ञान, अशिक्षा, अकर्मण्यता के कारण दासता और विपन्नता का शिकार हो गया है। इसलिए उन्होंने ताड़ लिया कि यह भारतदेश जब तक अज्ञानजनित अंधविश्वास और आलस्य में फँसा रहेगा, तब तक यह दुखों से मुक्त नहीं हो सकेगा।

सर्वसमावेशी भारत के निर्माण के लिए दयानंद का कर्म

भारतदेश की अवनति क्यों हुई?

स्वामी दयानंद मानते थे कि पाँच हजार वर्ष पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई मत इस संसार में नहीं था, किंतु आगे चलकर वेदों की अप्रवृत्ति होने से महाभारत का युद्ध हुआ, जिस कारण धन-जन की अपार हानि हुई। क्योंकि इसके पूर्व 'स्वायंभुव राजा से लेकर पांडवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गए। क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता।''[16]

महाभारत का युद्ध कोई साधारण युद्ध नहीं था, इस युद्ध में बड़े-बड़े विद्वान, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि बहुत बड़ी संख्या में असमय कालकलवित हो गए, तब आगे चलकर विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार अवरूद्ध हो गया। उस समय जिसके पास बल था, वही सबको दबाकर राजा बन बैठा। इस प्रकार आर्यावर्त्त में सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई। ''जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के तो अविद्वान होने में कथा ही क्या कहनी? जो परंपरा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था, वह भी छूट गया।''[17] इस तरह दयानंद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेदों की पवित्र शिक्षाओं के अप्रचार के कारण ही हिंदू समाज में परस्पर फूट, अशिक्षा, बाल विवाह, ऊँच-नीच की भावना आदि कमियाँ रूढ़ हो गई हैं। इसलिए दयानंद ने इन सबको हटाने के लिए वेदोक्त मत के प्रचार का संकल्प लिया।

वेदों के आलोक में मानव समानता का उद्घोष

दयानंद ने जब भारतीय समाज को निकट से देखा तो उन्हें घोर दुर्दशा देखने को मिली। हर तरफ अंधविश्वास और अज्ञान का बोलबाला था। भारत का वह विचार जिसमें मनुष्यमात्र तो क्या सृष्टि के हर प्राणी में ईश्वर के दर्शन का भाव था, वह नष्ट हो चला था। समाज में ब्राह्मणोंऽय मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ यजुर्वेद के इस मंत्र की मनमानी व्याख्या कर धूर्त लोग ईश्वर के मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरू से वैश्य और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति बताकर समाज में परस्पर फूट और ऊँच नीच की भावना को बल प्रदान कर रहे थे, इसलिए दयानंद ने इस अनार्य विचार का खंडन कर इस अर्थ का प्रतिपादन किया कि चूंकि वह ईश्वर जब निराकार है, जब मुखादि अंग की कल्पना करना निराधार है, और यह मत प्रतिपादित किया कि पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में ब्राह्मण वर्ण मुख के सदृश, क्षत्रिय बाहु के समान, वैश्य उरु और शूद्र पैर के सदृश हैं। जिस प्रकार मुख से पैर पर्यन्त विभाग शरीर के हैं और सबके स्वस्थ होने से शरीर स्वस्थ रहता है, उसी प्रकार समाज में इन चार भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोगों द्वारा अपने कार्यों के श्रेष्ठ संपादन से समाज की व्यवस्था भी सुचारू रूप से चलती है।

इसके साथ ही दयानंद ने जन्म से किसी को ब्राह्मण या शूद्र होने की मान्यता को नकार दिया और मनु के-शूद्रों ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्' का उद्घोष करते हुए यह मत प्रतिपादित किया कि जो शूद्र कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण के सदृश गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो, उसे ब्राह्मण स्वीकार किया जाए।

इस प्रकार दयानंद ने वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हुए निरुक्त पद्धति से उसकी व्याख्या की ओर घोषणा की कि वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है।

प्राचीन गौरवमय अतीत का आख्यान कर, हिंदू सभ्यता के निंदकों का प्रतिकार

इस्लाम जब भारत में आया तो उसने इस देश के धन को लूटने का काम किया ही, हिंदू धर्म को दूषित करने का काम भी किया, जैसा कि अकबर द्वारा दीन-ए-इलाही मत की

स्थापना से इसका आशय प्रकट हो जाता है। जिसकी परंपरा में हिंदुओं के प्रसिद्ध नगरों के नाम इस्लामिक परंपरा में रख दिए गए, जैसे कि प्रसिद्ध तीर्थ प्रयाग का नाम इलाहाबाद करना और अल्लोपनिषद जैसे जाली पुस्तक की रचना। ईसाई मिशनरियाँ जब भारत में आई तो पहले-पहल तो भारत की समृद्ध विचार परंपरा को देखकर अभिभूत हुई किंतु आगे चलकर उन लोगों ने हिंदू समाज की राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाकर इसके ऊपर आक्रमण करना प्रारंभ कर दिया ''महाभारत में कहा गया है कि कर्ण को हीन-बल करने के लिए उसके सारथी पांडव-हितैशी'' मद्रराज शल्य ने उसकी बहुत निंदा की थी। अपनी निंदा सुनने से साधारणत: सबको आत्मग्लानि होती है, और भ्रमवश वे अपने को अकर्मण्य और हीन-बल समझने लग जाते हैं। यही भ्रम बहुत दिन तक ठहरने से धीरे-धीरे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसी से कहा गया है कि स्वजाति की निंदा सुनना पाप है अर्थात अवनतिकर है।''[18]

पिछले एक हजार वर्ष पूर्व से भारत क्रूर इस्लाम और ईसाइयत से अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्षरत था, अत: समाज रक्षात्मक मुद्रा में आ गया था। जिससे कि समाज में कुछ ऐसी प्रथाएँ प्रचलित हो गई थी, जिस कारण हिंदू समाज की प्रगति अवरुद्ध सी हो गई थी। स्वामी दयानंद ने इस दुरावस्था की गहरी विवेचना की। इसलिए प्रचलित कुप्रथाओं यथा-मूर्तिपूजा, बालविवाह, मनुष्य के कर्म की उपेक्षा आदि का खंडन किया वहीं उन्होंने इस्लामी और ईसाई, उन हिंदू निंदकों की भी ख़बर ली, जो आए दिन हिंदुत्व पर आक्रमण कर रहे थे।

सबसे पहले तो उन्होंने इस मत का प्रबल खंडन किया कि वैदिक सभ्यता के उपासक भारतीयों के पूर्वज आर्य लोग भारत में बाहर से आए थे और फिर उन्होंने यहाँ अपनी सभ्यता का विकास किया। सत्यार्थ प्रकाश में इस मत का प्रतिकार करते हुए उन्होंने लिखा कि-''किसी संस्कृत ग्रंथ में व इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आए और यहाँ के जंगलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल के, इस देश के राजा हुए, पुन: विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है।''[19]

मात्र कुछ सौ वर्ष पूर्व अज्ञान के अंधकार में डूबा रहने वाला यूरोप, भारतीय ज्ञान परंपरा से कुछ ज्ञान प्राप्त कर अपने पैरों पर खड़ा हुआ। कौन नहीं जानता कि गणित की दाशमिक स्थानमान पद्धति को पहले भारतीयों से अरबों ने सीखा, अपने देश में इसे हिंदसा कहा और इसी हिंदसा को अरबों से पाकर यूरोपियनों ने अपने आविष्कारों के महल खड़े किए। औद्योगिक क्रांति से उत्पादन बढ़ा, तो विश्व के देशों में उपनिवेश बसाने के क्रम में वहाँ राष्ट्रीयता को शक्ति मिली। और कालांतर में इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों ने विश्व में अपने शक्ति को बढ़ाया, जिसके प्रभाव में कुछ इतिहासकारों ने यह लिखना प्रारंभ कर दिया कि इंग्लैण्ड के साम्राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं होता।

दयानंद ने प्राचीन भारत के वैभव को तथ्यात्मक रूप से प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि भारत आज भले ही दुर्बल देश दिख रहा है किंतु ऐसा सदा नहीं रहा है। उनके मत से-''यह आर्यावर्त देश ऐसा देश है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं। इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है, क्योंकि यही सुवर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है... पारसमणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परंतु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहे रूपी दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही 'सुवर्ण' अर्थात धनाढ्य हो जाते हैं।''[20] दयानंद ने मनु के-एतद्देश्यप्रसूतस्य सकादाशग्रजन्मन:। स्वं स्वं चरित्र शिक्षरेन पृथव्यां सर्व मानवा:॥ मनु. (2.20) के माध्यम से यह मत प्रतिपादित किया कि इसी आर्यावर्त्त में उत्पन्न विद्वानों से भूगोल के सब मनुष्य अपने-अपने योग्य विद्या और चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें, ऐसी उस समय की रीति थी।

यूरोपियनों को उनकी वास्तविक लघुता का एहसास कराते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखा कि-''सृष्टि से ले के पाँच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यंत आर्यों का 'सार्वभौमिक चक्रवर्ती' अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देशों में 'मांडलिक' अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव-पांडव पर्यंत यहाँ के राजा और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चलते थे।''[21]

इस प्रकार दयानंद ने इस्लामी और ईसाई मत के प्रचारकों के समक्ष डटकर लोहा लिया और हिंदुत्व की निंदा

करने वालों को उनकी वास्तविकता से अवगत करा, हिंदू जाति को कुंठित होने से बचा लिया और सत्यार्थ प्रकाश के तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में ईसाई और इस्लाम मत को, वेद की कसौटी पर कस कर यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक विचार के सामने ये कितने पिछड़े हुए और अवैज्ञानिक हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा का बीजारोपण—अपने सभी ग्रंथों में दयानंद ने शिक्षा को महत्त्वपूर्ण स्थान पर रखा है। वे मानते थे कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की उन्नति तथा उसकी सुख-समृद्धि तभी संभव है, जब सभी स्त्री-पुरुष सुशिक्षित हो। इसलिए 1875 में आर्य समाज की स्थापना से पहले ही दयानंद ने उत्तर प्रदेश के कासगंज, जलेसर, फर्रुखाबाद, मिर्ज़ापुर तथा काशी में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना करवाई।

दयानंद, माता-पिता तथा आचार्य इन तीनों को विद्यार्थी का शिक्षक मानते थे। पांचवे वर्ष तक माता, आठवें वर्ष तक पिता एवं आठवें वर्ष से शिक्षा समाप्ति तक आचार्य विद्यार्थी को शिक्षित करें। दयानंद का मत था कि शिक्षा सबको मिलनी चाहिए। इसलिए उन्होंनें 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्पष्ट लिखा कि-''इसमें राजनियम और जाति नियम होना चाहिए कि पाँचवे अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़के, लड़कियों को घर में न रखके, पाठशाला में अवश्य भेज देवे। जो न भेजे, वह दंडनीय हो।''[22]

दयानंद की मान्यता थी कि पाठशालाओं में द्विज-शूद्र, धनी-निर्धन, राजा-प्रजा आदि किसी की भी संतान हो सबके साथ एक जैसा व्यवहार हो, सबको समान अवसर मिलने चाहिए। उन्हीं के शब्दों में-''सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान, आसन दिए जाएँ।, चाहे वह राजकुमार हो वा राजकुमारी हो और चाहे दरिद्र की संतान हो''[23] स्पष्ट है कि दयानंद अनिवार्य शिक्षा के समर्थक थे। उनकी योजना के शिक्षण संस्थान वर्तमान समय के 'पब्लिक स्कूल' जैसे नहीं थे। जहाँ कि सामान्य व्यक्ति अपनी संतानों का प्रवेश ही नहीं करा सकता। दयानंद सहशिक्षा के हिमायती नहीं थे। ''वे शिक्षण संस्थानों को गुरुकुल प्रणाली के आधार पर गठित करना चाहते थे, जहाँ विद्यार्थियों का रहना आवश्यक था। नगर या ग्राम से कम से कम पाँच मील दूर आवासीय शिक्षण-संस्थानों की स्थापना उनका उद्देश्य था।''[24] तत्कालीन रुढ़िवादी प्रवृत्ति को त्यागकर दयानंद ने स्त्रियों एवं शूद्रों की शिक्षा पर विशेष ज़ोर दिया क्योंकि उनका मानना था कि प्राचीन काल में स्त्रियों की शिक्षा का भी पूरा प्रबंध भारत में था। इसके लिए वे शास्त्रों से प्रमाण भी ले जाए।[25]

दयानंद ने पठन-पाठन विधि को क्रम से सुनियोजित किया। सर्वप्रथम पाणिनी का व्याकरण तथा पंतजलि का महाभाष्य, तत्पश्चात यास्क का निरूक्त, पिंगल का छंद शास्त्र, मनुस्मृति, रामायण तथा महाभारत, छः दर्शन, दशोपनिषद, चारो वेद, चिकित्सा, संगीत, गणित, खगोल के साथ राजनीतिशास्त्र आदि को पढ़ने-पढ़ाने के क्रम में रखा। इसी के साथ सैन्य शिक्षा को भी अनवरत चलाने को निर्धारित किया।

पराधीनता के विरुद्ध शंखनाद—भारतीय विचारणा में मनुष्य के लिए दैहिक, दैविक और भौतिक कष्टों से मुक्ति की कामना की गई है। वेदों में शत वर्ष तक सुखपूर्वक देखने, सुनने और बोलने के साथ शत वर्ष तक अदीन अर्थात स्वतंत्र होकर जीने की कामना की गई है। किंतु दयानंद के समय में भारत धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक तीनों दृष्टियों से बंधनों में जकड़ा हुआ था। दयानंद ने इन तीनों बंधनों को हटाने के लिए भीषण शंखनाद किया।

उस समय कि धार्मिक विषमता ऐसी थी कि-''आर्य जाति के करोड़ों मनुष्य धर्म ग्रंथों को पढ़ना तो कहाँ उनके सुनने के भी अधिकारी नहीं समझे जाते थे। कुसंस्कारों का इतना प्राबल्य था कि विदेश गमन, समुद्र यात्रा और विदेशी से स्पर्श आदि से लोग जाति पतित किए जाते थे।''[26] सामाजिक दशा भी सोचनीय थी। भारतभूमि में सैकड़ों चिताएँ अबलाओं की सजीव देहों से धधक रही थी, तो परस्पर की ईर्ष्या-द्वेष ने विकराल रूप धारण कर लिया था। इसी का परिणाम था कि भारत के लगभग आधे भाग पर ब्रिटिश ध्वज लहरा रहा था। दयानंद को भारत की दुरावस्था देखकर गहरी पीड़ा होती थी। जो भारतवर्ष कभी विश्व का सिरमौर था, उसकी राजनीतिक पराधीनता दयानंद को खलती थी। अपनी भावना को सत्यार्थ प्रकाश में उन्होंने इस प्रकार प्रकट किया-''अब अभाग्योदय से और आर्यों के

आलस्य प्रसाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहनी, किंतु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय, राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों के पादाक्रांत हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं।''[27]

दयानंद भारत को पराधीनता से मुक्त देखना चाहते थे, इसलिए उनका ज़ोर धार्मिक और सामाजिक जागरण पर था, वे विदेशी राज्य को न्याय और दया के बावजूद भारतवासियों के लिए सुखदायक नहीं मानते थे। इस तरह ''स्वराज्य के सिद्धांत की शिक्षा देकर दयानंद ने भावी स्वतंत्रता की नींव तैयार कर दी। उन्होंने देश की जनता को एक ऐसा आदर्श प्रदान कर दिया जिसके चतुर्दिक वे अपने को संगठित कर सकते तथा जिसके साक्षात्कार के लिए वे अपनी संपूर्ण शक्तियों को जुटा सकते थे।''[28]

दयानंद ने अपनी आक्रामक रणनीति से भारतीयों को इस बात से साक्षात्कार कराया कि वे एक गौरवशाली सांस्कृतिक, राजनीतिक विरासत के उत्तराधिकारी हैं और उनका भारत राष्ट्र एक महान राष्ट्र है। उन्होंने देशवासियों को यह संदेश दिया कि उन्हें अपने धर्म और संस्कृति पर गर्व करना चाहिए तथा अपनी भाषा से लगाव रखना चाहिए और अपनी भाषा को सीखना चाहिए। उन्होंने अंग्रेज़ी साम्राज्य से टकराने के लिए भारतीयों का आह्वान किया जिसकी गूँज उनके इस मंतव्य में प्रकट होती है कि-''मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दु:ख और हानि लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किंतु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं-की चाहे वे महाअनाथ, निर्बल और गुणरहित हों-उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और विधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ महाबलवान और गुणवान भी हों तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहाँ तक हो सके अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करें। इस काम में चाहे प्राण भी भले ही जावें, परंतु इस मनुष्यरूप धर्म से पृथक कभी न होवें।''[29] आगे चलकर ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेते हुए जिन रामप्रसाद बिस्मिल, भाई परमानंद, श्रद्धानंद, लाला लाजपत राय, भगत सिंह, अजीत सिंह आदि सैकड़ों हुतात्माओं के बारे में हम पढ़ते हैं, तो हमें विदित हो जाता है कि दयानंद के इस आह्वान का कितना असर था।

कोई नवीन मतमतांतर नहीं अपितु भारत के सनातन मत का समर्थन

इस देश में सनातन विचार से कुछ लेकर और कुछ अपनी ओर से मिलाकर बहुतों ने अपने मठ और गद्दी स्थापित किए। अनुयायियों का समूह गठित किया किंतु दयानंद इन सबसे अलग ठहरते हैं। उन्होंने ब्रह्मा से लेकर जैमित्री मुनि पर्यंत के माने हुए विचारों को स्वीकार किया, जिसमें तृण से लेकर ईश्वर पर्यंत पदार्थों का विवेचन है। स्वामी दयानंद ने अपना मत इस संबंध में इस प्रकार प्रकट किया है-''मैं अपना मंतव्य उसी को जानता हूँ जो कि तीन काल में एक सा सबके सामने मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना या मतमतांतर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किंतु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किंतु जो-जो आर्यावर्त्त या अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल-चलन है, उसका स्वीकार और धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ क्योंकि ऐसा करना मनुष्य धर्म से बहि: है।''[30]

इस प्रकार दयानंद ने भारत की विचार परंपरा की पुन: स्थापना में ही अपने उद्देश्यों को निहित किया। और तत्कालीन समाज में सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों के विरूद्ध जो उन्होंने आंदोलन चलाए, उसका आधार भी यूरोपिय दृष्टि न होकर भारत का अपना सनातन विचार ही था और जिसके बल पर दयानंद ने पाखंड के तत्कालीन गढ़ों को ढहा दिया और सर्वत्र मनुष्य-मनुष्य में प्रेम और साहचर्य की स्थापना कर, वर्षों से चली आ रही विषमता की दीवारों को चकनाचूर कर दिया।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि दयानंद ने भारतीय विचार परंपरा में गतिरोध के कारण जो शैवाल उत्पन्न हो गए थे, उन्हें नष्ट करने का प्रयास किया। सभी मनुष्य 'ईश्वर की संतान हैं', 'आर्यावर्त्त देश जैसा कोई देश नहीं' और 'वेदों

की ओर लौटो' आदि का आह्वान कर एक बार तो उन्होंने संपूर्ण भारत को उत्साह से ओत-प्रोत कर दिया। जो दयानंद से सहमत नहीं थे, वे भी धर्म रक्षा के लिए उठ खड़े हुए, भारत का धार्मिक और राजनीतिक नेतृत्व कर रहे लोगों में नई चेतना आई, इन सबका श्रेय दयानंद को दिया जा सकता है। वस्तुतः दयानंद आधुनिक भारत के सबसे महान विचारक थे। उन्होंने अपने ग्रंथों में जिस धर्म, दर्शन, समाज संघटन, राज्य प्रशासन और अर्थव्यवस्था के संबंध में जिन विचारों का प्रतिपादन किया है, उसके आधार पर भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व का कल्याण हो सकता है।

संदर्भ :

1. सत्यकेतु विद्यालंकार-भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, सरस्वती सदन, दिल्ली, पंचम संस्करण, 1974, पृ. 136
2. सत्यकेतु विद्यालंकार-आर्यसमाज का इतिहास, प्रथम भाग, आर्य स्वाध्याय केंद्र, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 92
3. कृष्णलाल-वैदिक वाङ्मय विवेचन, जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 225
4. ईशावास्यमिदंसर्वं यत्किंचजगत्यांजगत। तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्यसिवधनं॥ यजुर्वेद (40-8)
5. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्रजायतः ततः समुद्रोऽर्णवः॥ ऋग्वेद 10.190.1
6. सत्यकेतु विद्यालंकार-भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, सरस्वती सदन, दिल्ली, पंचम संस्करण, 1974, पृ. 137
7. नाधर्मश्चरिता लोके सद्यः फलित गौरिव।
शनैरार्वत मानस्तु कर्त्तुमूलानि कृतांति॥ महाभारत आदिपर्व-80/2
8. पांडुरंग वामन काणे-धर्मशास्त्र का इतिहास-पंचम भाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, पंचम संस्करण 2014, पृ. 362
9. रघुनंदन शर्मा-वैदिक सम्पत्ति, श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान, द्वितीय संस्करण, 2004, पृ. 604
10. अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञाताभयंपरोक्षात्।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥
अथर्ववेद - 19-15-06
11. धावा पृथिवी अनु मा दीधीथां विश्वेदेवासो अनुमा रमध्वम्।
अंगिरसः पितरः सोम्यासः पाप मार्छ त्वपकामस्य कर्ता॥
अथर्ववेद - 2-12-5
12. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय-महर्षि दयानंद का जीवन चरित, श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिंडोन सिटी, संस्करण 2013, पृ. 35
13. पंडित लेखराम-स्वामी दयानंद का जीवन चरित, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, षष्ठ संस्करण 2007, पृ. 56
14. धनपति पांडेय-स्वामी दयानंद सरस्वती, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, संस्करण 1992, पृ. 1
15. वही, पृ. 77
16. स्वामी दयानंद-सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा, अजमेर, चालीसवीं आवृत्ति, 2015, पृ. 250
17. वही, पृ. 253-254
18. सखाराम गणेश देउस्कर-देश की बात, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 62
19. स्वामी दयानंद-सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा, अजमेर, चालीसवीं आवृत्ति 2015, पृ. 203
20. वही, पृ. 250
21. वही, पृ. 250
22. वही, पृ. 30
23. वही, पृ. 30
24. पुरुषोत्तम नागर-आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, आठवां संस्करण 2019, पृ. 48
25. ब्रह्मचर्य्येण कन्याऽ युवानं विन्दते पतिम्। -अथर्ववेद-अनु. 3, प्र. 24, कां. 11, मं. 18
26. स्वामी सत्यानंद-श्रीमद्दयानंद प्रकाश, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, संस्करण 2002, पृ. 3
27. स्वामी दयानंद-सत्यार्थप्रकाश, परोपकारणी सभा, अजमेर, चालीसवीं आवृत्ति 2015, पृ. 204
28. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा-आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा, छठा संस्करण 2009, पृ. 126
29. स्वामी दयानंद-सत्यार्थ प्रकाश, परोपकारिणी सभा, अजमेर, चालीसवीं आवृत्ति 2015, पृ. 556
30. वही, पृ. 556

❖

सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9968637345
ई-मेल : akpuri.gkp@gmail.com

उत्तरपूर्व भारत : औपनिवेशिक आख्यान बनाम भारतीय दृष्टि

— प्रो. रसाल सिंह

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक रूप से अत्यधिक समृद्ध है। यहाँ के युवा संगीत, नृत्य, आर्ट पेंटिंग इत्यादि क्षेत्रों में विशेष रूप से अत्यंत प्रतिभावान हैं। यदि गायन, नृत्य और विभिन्न संगीत वाद्य यंत्र बजाने के लिए पर्याप्त संख्या में विद्यालयों की स्थापना की जाए तो युवाओं को इन क्षेत्रों में विशाल संख्या में रोजगार उपलब्ध हो सकता है। वर्तमान में केंद्र सरकार ने क्षेत्र समग्र एवं समावेशी विकास करने के लिए कई अत्यंत प्रशंसनीय कदम उठाए हैं। केंद्र के 'एक्ट ईस्ट नीति' पर जोर देना इस दिशा में आगे बढ़ने के साथ इन क्षेत्रों की जनता में नई उम्मीदों का संचार करना, इस बात का द्योतक है कि पूर्वोत्तर राज्यों का भविष्य उज्ज्वल है। सरकारी स्तर पर किए जा रहे इन प्रयासों के साथ-साथ कुछ स्वैच्छिक संस्थाएँ भी कार्यरत हैं।

विविधता में एकता भारत वर्ष की सर्वप्रमुख विशेषता है। इसकी एकता धर्म, संस्कृति, भाषा, राजनीति, भूगोल आदि सब में अन्तर्निहित है। भारत की अनेक भाषाओं में हिंदी ही है, जो स्वाभाविक रूप से अपने क्षेत्र के बाहर विकसित होते हुए संपर्क भाषा और राष्ट्र भाषा बनी है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र भी इसका अपवाद नहीं है। भारत के शेष हिस्सों के साथ पूर्वोत्तर भारत भौगोलिक रूप से पश्चिम बंगाल के सिलीगुड़ी क्षेत्र के निकट एक पतले से गलियारे के माध्यम से जुड़ा हुआ है, जिसे 'चिकेन नेक' या 'सिलीगुड़ी कॉरिडोर' भी कहा जाता है। पूर्वोत्तर भारत की सीमा 5 देशों से मिलती है। ये देश हैं-बांग्लादेश, भूटान, चीन, नेपाल और म्यांमार। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में अरुणाचल प्रदेश, असम, मेघालय, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, त्रिपुरा, और सिक्किम प्रदेश शामिल हैं। यह सुरम्य क्षेत्र मुख्यतः तीन घाटियों-ब्रह्मपुत्र, बाराक, और इंफाल घाटियों के रूप में है, और शेष भूभाग पहाड़ी क्षेत्र है। अंग्रेजों ने असम में दाखिल होने के बाद इन सभी पर्वतीय अंचलों को अलग-थलग करने के लिए अलग-अलग शासन व्यवस्था में बाँट दिया, लेकिन वह भी यहां की लोक संस्कृति और परम्परागत जीवन शैली को बदल नहीं पाए। पूर्वोत्तर की विभिन्न जनजातियों की अपनी अलग-अलग लोक परंपराएँ, लोक देवी-देवता, विभिन्न अनुष्ठान, रीति-रिवाज और पर्व-त्यौहार हैं। ये उनकी लोक संस्कृति का आधार हैं। ये जनजातियाँ भले ही हिंदी और अंग्रेजी सीखने लगी हों, लेकिन उन्हें अपनी भाषा, अपने खानपान, अपने रीति-रिवाज और अपनी धार्मिक मान्यताओं से बहुत प्रेम है। साथ ही, वे स्वयं को भारत और भारतीय संस्कृति से भावात्मक रूप से संपृक्त मानते रहे हैं।

हालाँकि, औपनिवेशिक मानसिकता वाले वेरियर एल्विन जैसे मानवशास्त्रियों, शिक्षाविदों और इतिहासकारों ने यह स्थापित करने का लगातार प्रयास किया है कि भारत के उत्तर-पूर्व क्षेत्र के लोग शेष भारत के संपर्क में नहीं थे। वे

प्राय: नग्न/अर्धनग्न अवस्था में पहाड़ों और जंगलों में रहने वाले लोग थे। उनका मैदानी लोगों से कोई संबंध नहीं था। यह क्षेत्र संपर्कविहीन था तथा समूचे भारत से अलग-थलग था। इस भ्रांत/कल्पित अवधारणा को बौद्धिक जगत में स्थापित करने की सुनियोजित और पुरजोर चेष्टा की गयी। समुदायों में रहने वाले 'कबीलाई' ये लोग असभ्य, आदिम और बर्बर थे। हिंसा और रक्तपात उनका प्रमुख कार्य था। वे अपने शत्रुओं के सिर को काटकर न सिर्फ सजावट के लिए प्रयोग करते थे, बल्कि यह उनके लिए गर्व का विषय भी था। वे न सिर्फ आपस में बल्कि मैदानी लोगों से भी लगातार लड़ते रहते थे। इन इतिहासकारों और मानववंशशास्त्रियों ने यह भी स्थापित करने का प्रयास किया है कि उनकी कोई सभ्यता ही नहीं थी। यह समाज नगरीय विकास से अनभिज्ञ था। ये लोग वैज्ञानिक प्रगति से वंचित थे। औपनिवेशिक शक्तियों के कारण ही आधुनिक सभ्यता से इनका परिचय हुआ। पहाड़ों और वनांचल में रहने वाले इन समुदायों का कोई धर्म नहीं था। ये शैतान की पूजा करते थे। इनकी परम्पराएँ और मान्यताएँ प्रतिगामी और पिछड़ी थीं। औपनिवेशिक शक्तियों का यह निष्कर्ष एक ईश्वर (ईसा मसीह) और एक धर्म-ग्रंथ (बाइबिल) को मानने की सीमित समझ का परिणाम था। बलि-प्रथा जैसी परंपराओं के कारण इनके मन में पूर्वजों और प्राचीन परंपराओं के प्रति तिरस्कार, घृणा तथा लज्जा का भाव उत्पन्न किया गया। उनके मन में यह हीनता-बोध ईसाई धर्म और संस्कृति की श्रेष्ठता स्थापित करने और इन समुदायों को सनातन-संस्कृति से दूर करने की साजिश के कारण उत्पन्न किया गया।

इन इतिहासकारों ने स्थापित करने का भी प्रयास किया है कि इनका सनातन हिंदू धर्म और संस्कृति से कुछ लेना-देना नहीं था। वे जबरदस्ती हिंदू बने/बनाए/दिखाए गए। यह भी स्थापित किया गया कि संस्कृत भाषा और वैष्णव धर्म को उन पर थोपा गया। बंगाल के ब्राह्मणों (चैतन्य महाप्रभु आदि) ने उत्तर-पूर्व में वैष्णव धर्म फैलाया जबकि वास्तविकता यह है कि पूर्व में भगवान विष्णु की उपासना की प्राचीनतम परंपरा है। औपनिवेशिक शक्तियों के इशारे पर इन इतिहासकारों और मानववंशशास्त्रियों ने इन समुदायों के स्थलांतरण की भ्रांत अवधारणा को स्थापित करने का प्रयास किया है। उन्होंने कहा कि ये समुदाय यहाँ के मूल निवासी नहीं हैं बल्कि औपनिवेशिक शक्तियों की तरह बाहर से आए हैं। यह मूलत: निर्जन प्रांत था। ये समुदाय श्यामदेश, ब्रह्मदेश, चीन और तिब्बत आदि से आकर यहाँ बसे हैं।

ईरान से लेकर इंडोनेशिया (अंकोरवाट) तक एक ही संस्कृति का अविकल-अविरल प्रवाह रहा है। भारत का उत्तर-पूर्व क्षेत्र भी उससे कभी अछूता नहीं रहा है। सनातन संस्कृति का प्रभाव और विस्तार इस क्षेत्र में भी था। पहाड़ी और मैदानी लोगों के जीवन-दर्शन में साम्यता रही है। इन समुदायों का जीवन-दर्शन, मूल्य-चेतना, विश्वास और धारणाएँ सनातनी रहे हैं। ये समुदाय पंच महाभूत के उपासक रहे हैं। इनका व्यष्टि, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि का संबंध-बोध समरस रहा है। यहाँ अत्यंत उन्नत और प्रगत सभ्यता थी। मैदानी क्षेत्रों और पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के पारस्परिक संबंध सौहार्दपूर्ण थे। पहाड़ों की तलहटी में लगने वाले मेले व्यापार और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के बड़े केंद्र थे। विविध कौशलयुक्त समाज सृजनशील था। अत्यंत प्रगत उद्योग उनकी आजीविका प्रमुख के साधन थे। ये समुदाय लकड़ी, मसाले, अन्य वन्य पदार्थों, विभिन्न धातुओं और युद्ध सामग्री से संबंधित उद्योग-धंधों में संलग्न थे। उन्नत कृषि परंपरा सभी समाजों में विद्यमान थी तथा स्थल-काल-सापेक्ष विकसित थी। कृषि-कार्य से संबंधित नवीनतम ज्ञान सभी समाजों में दिखाई देता है। खाद्यान्न और बीज संस्करण एवं संरक्षण में निपुण यह समाज पशुपालन के बारे में भी सजग था। इसके अलावा यह समाज व्यापार प्रवीण भी था। कृषि उपज और उद्योगों से निर्मित वस्तुओं का विनिमय न केवल पहाड़ और मैदान के समुदाय आपस में करते थे बल्कि सुदूर ब्रह्मदेश और भारत के अन्यान्य भागों तक भी ये लोग व्यापार करते थे। उद्योगप्रधान अर्थकरण करने वाला यह समाज था। मैदानी और पहाड़ी समुदायों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध और

नियमित व्यापारिक संपर्क था। वे लवण, मसाले, औषधियाँ, रेशम, कपास आदि वन्य-पदार्थों, बर्तन, आभूषण और हथियार आदि धातु पदार्थों का व्यापार करते थे। इसके लिए सुगम और सुरक्षित संपर्क-मार्गों का निर्माण और विकास किया गया था।

इन क्षेत्रों के भौगोलिक रूप से दुर्गम होने के बावजूद सुगम और सरल मार्ग खोजे और बनाए गये। इन संपर्क मार्गों के फलस्वरूप व्यापारिक और सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों में निरंतरता थी। ये संपर्क मार्ग वर्तमान के बांग्लादेश, म्यांमार, थाईलैंड, नेपाल, तिब्बत, चीन और भूटान आदि से भी जोड़ते थे। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में सांस्कृतिक निरंतरता की ही तरह भौगोलिक निरंतरता/सातत्य भी विद्यमान है। भौगोलिक रूप से भी भारत का यह हिस्सा बिल्कुल अलग-थलग या कटा हुआ नहीं रहा है। उत्तर-पूर्व भारत के सिलीगुड़ी कॉरिडोर या चिकन नैक से जुड़ाव की बात मात्र 75 साल पुरानी है। भारत-विभाजन से पहले उपनिवेश-पूर्व और औपनिवेशिक काल में यह क्षेत्र अनेक ओर से और अनेक मार्गों से भारत से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। पहाड़ी और मैदानी लोगों का अन्यान्योश्रित और नियमित संपर्क था। इन लोगों के आपसी संबंध रोटी-बेटी व्यवहार, तीज-त्योहार एवं मेलों आदि के कारण सदैव बनते और बढ़ते थे। मांगाई व्यवस्था (मणिपुर) और खात व्यवस्था (असम) इसके उदाहरण हैं। तराई क्षेत्र प्राचीन काल से ही संपर्क स्थान है। इन समुदायों के पारस्परिक जुड़ाव के प्रमुख क्षेत्र राजकीय-सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध, कृषि, व्यापार और रोजगार और पारस्परिक सैन्य-सहयोग रहे हैं।

इस क्षेत्र के अहोम राजवंश का वर्णन तो मिलता है। किन्तु उससे भी प्राचीन अनेक राजवंशों को सुनियोजित ढंग से इतिहास से गायब कर दिया गया है। इस क्षेत्र के प्रमुख राजवंशों के पुरातात्विक प्रमाण और अवशेष मौजूद हैं। इनके सिक्के, राजचिह्न, राजमाला (क्रोनिकल), ग्रंथ, शिलालेख, ताम्रपत्र, पत्रावली, अस्त्र-शस्त्र आदि मिलते हैं। इसके अलावा उत्खनन में इनके द्वारा निर्मित किले, भवन, मंदिर, मूर्तियाँ, मार्ग, कुएँ आदि भी प्राप्त हुए हैं। ये प्रमाण इन राज्यों की प्रगत सामाजिक, प्रशासनिक और सैन्य-व्यवस्था का विवरण देते हैं। इन राजवंशों में न सिर्फ आपस में बल्कि शेष भारत के अन्य राजवंशों के साथ रोटी-बेटी के संबंध भी थे। अहोम-पूर्व राजवंशों में सूतिया राजवंश (12-17वीं शताब्दी), कचारी राजवंश (10-19वीं शताब्दी) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। कचारी साम्राज्य भू-रणनीतिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। इन राजवंशों के अलावा त्रिपुरा का राजवंश (जोकि स्वयं को राम के वंशज मानते हैं) यहाँ की रानी कंचनप्रभा वर्तमान के मध्य प्रदेश में पन्ना की राजकुमारी थीं, मणिपुर का राजवंश (इनके संबंध त्रिपुरा, अहोम, कछारी तथा वर्तमान के म्यांमार में पोंग, पागान तथा शान राजाओं के साथ थे), भुइयां राजवंश, केन राजवंश (इसी वंश के राजा पृथु ने बख्तियार खिलजी को हराया था), कार्वी राजवंश, कूचबिहार का कोच राजवंश, जयंतिया साम्राज्य और मेघालय के छोटे-बड़े 25 राज्यों के भी प्रमाण मिलते हैं। लुशाई तथा नागा पहाड़ियों में छोटे राजा या क्षेत्र-प्रधान होते थे। इन छोटे-बड़े राजाओं ने अपनी परंपराओं और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए मुगलों और अंग्रेजों से निरंतर संघर्ष किया।

अपनी मातृभूमि और स्वाधीनता की रक्षा के लिए इन समुदायों का औपनिवेशिक शक्तियों से निरंतर संघर्ष हुआ। जादोनांग, रानी गाइदैन्ल्यु, बीर टिकेन्द्रजीत सिंह, कनकलता बरुआ, भोगेस्वारी फुकनानी, मनीराम दीवान, किआंग नंगवाह, हेम बरुआ, यू तिरोत सिंह और कुशल कुंवर तक ऐसे वीर-वीरांगनाओं की लंबी परंपरा है। इससे पहले इनके पूर्वजों-परमवीर राजा प्रथु ने बख्तियार खिलजी और 'उत्तर-पूर्व के शिवाजी' लचित बरफूकन ने मुगलों को धूल चटाकर अपनी मातृभूमि और स्वाधीनता की रक्षा की थी। सन 1757 में प्लासी की लड़ाई में बंगाल प्रांत को जीतते ही अंग्रेजों ने उत्तर-पूर्व भारत के विभिन्न हिस्सों पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए प्रयास शुरू कर दिए। उन्होंने वहाँ के प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर अधिकार

जमाने के लिए अनेक सैन्य और कूटनीतिक अभियान चलाए। उन्होंने सैन्य-शक्ति का प्रयोग करके भूभागों पर कब्जा किया और धर्मांतरण करके संस्कृति पर आघात किया। सन 1813 में पारित धर्म-प्रसार चार्टर और सन 1835 में पारित शिक्षा अधिनियम ने इन समुदायों की उन्नत शिक्षा, समृद्ध संस्कृति और पुरातन परंपराओं की मजबूत नींव को नष्ट करने का प्रयास किया। अंग्रेजों की संसाधनों को हड़पने और संस्कृति को नष्ट करने की नीति का यहाँ के समुदायों ने जमकर विरोध किया। सामान्यत: शांतिप्रिय किंतु अत्यंत शौर्यवान इन समुदायों ने अंग्रेजों को सशस्त्र संघर्ष में भी नाकों चने चबवा दिए। अपनी स्वाधीनता और संस्कृति की रक्षा के इन संघर्षों का इतिहास और स्वरूप विशेष अध्ययन की माँग करता है। संपूर्ण भारत में दो आंदोलनों का स्वरूप, प्रभाव और प्रसार अखिल भारतीय रहा है। ये दो आंदोलन मध्यकालीन भक्ति आंदोलन और आधुनिक कालीन स्वाधीनता आंदोलन हैं। भारत का उत्तर-पूर्व क्षेत्र भी इनसे अछूता नहीं रहा है। उस क्षेत्र के निवासियों की भी इन दोनों ही आंदोलनों में व्यापक और निर्णायक भागीदारी रही है।

पूर्वोत्तर भारत सांस्कृतिक रूप से अत्यधिक समृद्ध है। यहाँ के युवा संगीत, नृत्य, आर्ट पेंटिंग इत्यादि क्षेत्रों में विशेष रूप से अत्यंत प्रतिभावान हैं। यदि गायन, नृत्य और विभिन्न संगीत वाद्य यंत्र बजाने के लिए पर्याप्त संख्या में विद्यालयों की स्थापना की जाए तो युवाओं को इन क्षेत्रों में विशाल संख्या में रोजगार उपलब्ध हो सकता है। वर्तमान में केंद्र सरकार ने क्षेत्र समग्र एवं समावेशी विकास करने के लिए कई अत्यंत प्रशंसनीय कदम उठाए हैं। केंद्र के 'एक्ट ईस्ट नीति' पर जोर देना इस दिशा में आगे बढ़ने के साथ इन क्षेत्रों की जनता में नई उम्मीदों का संचार करना, इस बात का द्योतक है कि पूर्वोत्तर राज्यों का भविष्य उज्ज्वल है। सरकारी स्तर पर किए जा रहे इन प्रयासों के साथ-साथ कुछ स्वैच्छिक संस्थाएँ भी कार्यरत हैं। जो उनकी संस्कृति और उनके समाज के इतिहास को, रीति रिवाज को और उनके विकास को हमारे समक्ष लाते रहते हैं।

न सिर्फ पूर्वोत्तर भारत का बल्कि उसकी भाषाओं का भी भारत से एकात्मक संबंध है। पूर्वोत्तर भारत में वास्तविक रूप से हिंदी का पदार्पण तब हुआ, जब सन 1934 में 'अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ' की स्थापना हेतु महात्मा गाँधी असम आए। उन्होंने असमिया को हिंदी से परिचित करने की शुरुआत की। पूर्वोत्तर प्रदेशों में हिंदी के प्रचार और प्रसार में हिंदी फिल्म एवं टेलीविजन का योगदान भी महत्त्वपूर्ण है। असम, नागालैंड, मणिपुर, मिजोरम, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश सभी राज्यों में हिंदी फिल्मों की धूम है। इन प्रदेशों में हिंदी फिल्में अत्यधिक लोकप्रिय हैं। हिंदी भाषा और साहित्य के विकास प्रचार-प्रसार की दिशा के लिए यह शुभ लक्षण है कि भारतवर्ष के पूर्वोत्तर राज्यों में संप्रति हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। परिणामस्वरूप आज पूर्वोत्तर के अनेक कवियों और लेखकों ने हिंदी को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में अपना लिया है। जहाँ पूर्वोत्तर की भाषाओं और बोलियों के साथ समन्वय से हिंदी भाषा के शब्दकोश की वृद्धि हो रही है, वहीं पूर्वोत्तर के लेखकों की कृतियों से हिंदी भी फल-फूल रही है और सच्चे अर्थों में राष्ट्र भाषा बनने की राह पर है। पूर्वोत्तर के लेखकों-कवियों की कृतियाँ भले ही अभी बहुत प्रौढ़ ना हों, परंतु उनका महत्त्व असंदिग्ध है। राष्ट्रभाषा के विकास और प्रचार-प्रसार के साथ ही भारत की सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से भी उनका विशेष महत्व है।

गाँधीजी हिंदी को राष्ट्र-भाषा मानते थे। उस अर्थ में नहीं जिसमें अंग्रेजी ब्रिटेन की, फ्रेंच फ्रांस की या जर्मन जर्मनी की राष्ट्र भाषा है। गाँधी जी के लिए हिंदी राष्ट्रवादी समरूपीकरण के आग्रहों के तहत आरोपित की जाने वाली राष्ट्र-भाषा नहीं थी। इसलिए गुजराती में राष्ट्र-भाषा का अर्थ बताते हुए उन्होंने स्पष्ट कर दिया था कि इससे उनका मतलब बस संपर्क भाषा से ही है। गाँधी जी की वही हिंदी आज अनूठे मुकाम पर पहुँच चुकी है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र अपने भाषाई वैविध्य के लिए पूरे विश्व में 'भाषा की प्रयोगशाला' रूप में विख्यात है। इसी भाषाई विविधता के कारण पूरे भारत के लिए यह क्षेत्र बहुत रोचक भी है। हिंदी

भाषा का प्रचार-प्रसार अगर अच्छे ढंग से किया जाए तो वह पूर्वोत्तर भारत में संपर्क भाषा के रूप में इस्तेमाल की जा सकती है। इस कार्य में सबसे अहम भूमिका निभाते हैं- साहित्यकार, मीडियाकर्मी और फिल्म-विज्ञापन उद्योग से जुड़े हुए लोग। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने माना है कि 'साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है।' इस परिभाषा के आलोक में पूर्वोत्तर की भाषाओं और वहाँ के साहित्य के माध्यम से उनकी संस्कृति, रीति रिवाज और जीवन-मूल्यों को समझते हुए राष्ट्रीय एकीकरण की परियोजना पर महत्वपूर्ण काम हो सकता है। इस राष्ट्रीय एकीकरण का सांस्कृतिक सेतु निश्चय ही राष्ट्र भाषा हिंदी बन सकती है।

हिंदी ने, जिसकी जननी संस्कृत है, बहुत-सी संस्कृतजनित भाषाओं को जोड़ा है और आज बहुत से हास, परिहास, प्रेम और उल्लास को भिन्न-भिन्न भाषा भाषियों के लिए सुलभ बना दिया है। हिंदी की व्याप्ति अन्य भारतीय भाषाओं में सर्वाधिक है। किंतु पूर्वोत्तर भारत की लोक भाषाओं के साथ हिंदी ने अभी तक यथोचित संबंध नहीं बनाया है। यहाँ तक कि बांग्ला के साथ हिंदी का अभी जो संबंध है, वह भी पश्चिम बंगाल तक ही सीमित है जबकि अपने ही देश त्रिपुरा में रचे जा रहे बांग्ला साहित्य के बारे में हिंदी समाज बहुत कुछ नहीं जानता है। लंबे समय से पूर्वोत्तर के लोग हिंदी की सेवा कर रहे हैं। पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के पहले प्रचारक असम के वैष्णव कवि श्रीमंत शंकर देव (1449-1568) थे , उनके बाद अनेक कवि, संत, महात्मा हुए जिनमें माधवदेव वन (1489-1596), गोपाल देव आता (1541-1611), कैवल्यानंद (1715-1782) आदि प्रमुख हैं। आधुनिक काल में महात्मा गाँधी की प्रेरणा से लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै ने पिछली सदी के तीन दशक में असम राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति की स्थापना करवाकर असमवासियों में हिंदी के प्रति रुचि जगाने का अनुकरणीय प्रयास किया। बरदलै के काम को पितांबर देव गोस्वामी, नीलमणि फूकन, बिरंचि कुमार बरूआ, चक्रेश्वर भट्टाचार्य, हरे कृष्ण दास, परेशचंद्र देव शर्मा आदि ने आगे बढ़ाया है। हमें याद रखना चाहिए कि देवनागरी के लिए पहली शहादत पूर्वोत्तर के ही एक लेखक 'बिनेश्वर ब्रह्म' ने दी थी। पूर्वोत्तर में हिंदी और देवनागरी के लिए काम करने वाले बिनेश्वर ब्रह्म मुख्य रूप से बोडो भाषा के साहित्यकार थे।

स्वतंत्रता से पहले हिंदी में पूर्वोत्तर भारत को लेकर जितना भी साहित्य लिखा गया है, उसमें ज्यादातर कविता के रूप में ही है। उसमें भी आधी से ज्यादा रचनाएँ भक्ति काल और रीतिकाल के बीच की हैं। जिनमें शंकरदेव, माधव देव, गोपाल देव आता, रामचरण ठाकुर, दीन गोपाल, कैवल्यानंद, लक्ष्मीनाथ, महेंद्र द्विज, आज्ञाराम खारधरिया फूकन आदि हैं। स्वतंत्रता के बाद अज्ञेय जैसे रचनाकारों ने पूर्वोत्तर भारत का वर्णन अपनी कविताओं, कहानियों, यात्रा वृत्तांतों, और संस्मरणों आदि में किया है। वैसे ही कुछ अन्य रचनाकारों ने भी उसकी तरफ इशारा करते हुए कहीं-कहीं कुछ-कुछ लिखा है। अज्ञेय पहले ऐसे हिंदी के प्रतिष्ठित साहित्यकार थे, जिन्होंने पूर्वोत्तर भारत को केंद्र में रखकर साहित्य की अलग-अलग विधाओं में अपनी लेखनी चलाई। भारत के प्राकृतिक सौंदर्य के चित्रण से लेकर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन एवं दर्शन का जीवंत और रोचक वर्णन किया है। उन्होंने पाँच कहानियाँ-'जयदोल','हीली बोन की बत्तखें', 'मेजर चौधरी की वापसी', 'नागा पर्वत की एक घटना', 'नीली हँसी' और तीन यात्रा वृत्तांत-'परशुराम से तुरखम', 'माजुली' और 'बहता पानी निर्मल' में पूर्वोत्तर भारत के जीवन समाज और लोक संस्कृति, परंपरा और प्रकृति का गंभीर चित्रण प्रस्तुत किया है। अज्ञेय ने पावस प्रात, शिलांग और दूर्वांचल कविताओं में मेघालय के रमणीय प्राकृतिक सौंदर्य का मनोरम चित्रण किया है। पूर्वोत्तर पर केंद्रित यात्रा वृत्तांत लेखन की दृष्टि से सांवरमल सांगानेरिया द्वारा रचित 'ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे' (2006), 'अरुणोदय की धरती पर' (2008), 'फैनी के उस पार' और 'थोड़ी कागज' यात्रा वृत्तांत हैं, जो असम, अरुणाचल, त्रिपुरा आदि प्रदेशों की यात्राओं के अनुभव पर लिखे गए हैं। जितेंद्र भाटिया के यात्रा वृत्तांत 'बादलों के देश से सूर्य की पहली किरण तक', 'बस्ती बस्ती परबत परबत' और

'मेघालय से अरुणाचल वाया असम' भी उल्लेखनीय हैं। प्रयाग शुक्ल ने 'अगरतला और कलाएँ' नाम से यात्रा वृतांत लिखा है। अनिल यादव द्वारा रचित 'वह भी कोई देस है महाराज' (2012), यात्रा वृतांत की नवीनतम पुस्तक है। हिंदी ललित निबंध लेखन के क्षेत्र में कुबेरनाथ राय पूर्वोत्तर की सबसे सशक्त आवाज हैं। प्रिया नीलकंठी, गंधमादन, रस आखेटक, विषाद योग, निषाद बांसुरी, महाकवि की तर्जनी, कामधेनु, मराल, आगम की नाव, रामायण महातीर्थम, चिन्मय भारत आर्ष चिंतन बुनियादी सूत्र, किरात नदी में चंद्र मधु, दृष्टि अभिसार, वाणी का क्षीरसागर, उत्तरकुरु आदि उनके पूर्वोत्तर संबंधी महत्त्वपूर्ण निबंध हैं।

स्वतंत्रता के बाद अनेक हिंदी भाषी लोग प्रशासन में आए, इनके अतिरिक्त पर्यटन हेतु भी कुछ घुमंतू साहित्यकार इस क्षेत्र में आए। राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की स्वीकृति के फलस्वरुप भी कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में हिंदी बौद्धिकों का आना जारी रहा। इसी परिवेश में हिंदी में पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित साहित्य लिखा जाना शुरू हुआ। प्रधानत: यह लेखन यात्रा वृत्तांत और उपन्यासों के रूप में आया। 20वीं सदी से पहले के उपन्यास के रूप में कृष्णचंद्र शर्मा का उपन्यास 'रक्तयात्रा' (1978) आया। जिसमें उत्तर पूर्व भारत की नागा जनजाति के आदिम संस्कार और आधुनिक युग में अपनी अस्मिता के खातिर किए गए संघर्षों के यथार्थ की अभिव्यक्ति है। 20वीं सदी का दूसरा महत्त्वपूर्ण उपन्यास देवेंद्र सत्यार्थी का 'ब्रह्मपुत्र' है, जिसमें प्राकृतिक आपदाओं की विभीषिका और उनके बावजूद मनुष्य की जिजीविषा के बीच होने वाले संघर्ष का चित्रण किया गया है और उसी को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। श्री प्रकाश मिश्र 'जहाँ बाँस फूलते हैं' और महेंद्र दुबे का 'मुक्ति' उपन्यास महत्वपूर्ण है। 21वीं सदी के उपन्यासों में श्री प्रकाश मिश्र के ही उपन्यास 'नदी की टूट रही थी देह की आवाज' और 'रूप तिल्ली की कथा' भी उल्लेखनीय हैं। 'रूप तिल्ली की कथा' की कथाभूमि मेघालय है। यह उपन्यास उन पाठकों को पसंद आएगा जिन्हें गप्पशैली पसंद है। पूर्वोत्तर भारत की समस्या खासकर खासी जनजाति को समझने में वही भूमिका निभाते हैं जो इनके पिछले उपन्यास में मिजो के लोगों को समझने में निभाया था। इस उपन्यास में प्रकृति आद्यंत व्याप्त है। खासी समुदाय के जादू टोना के भी विवरण है। 'उत्तर पूर्व' उपन्यास 21वीं सदी के पूर्वोत्तर पर लिखे उपन्यासों में से महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। इसके लेखक लाल बहादुर वर्मा हैं। वे मणिपुर विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे थे। वहीं के प्रवास के अनुभवों के आधार पर यह उपन्यास लिखा गया है। उपन्यास का कथा समय ऐतिहासिक नहीं बल्कि लेखक के समकालीन है। यह उपन्यास एक मयांग (बाहरी आदमी) द्वारा मणिपुर समाज को समझने की कोशिश है। मणिपुरी समाज में महिलाओं की प्रभावी उपस्थिति के बावजूद घर का ढांचा पितृसत्तात्मक परिवार जैसा ही होता है। इस तथ्य को उपन्यासकार सामने उभार कर लाता है। इन उपन्यासों कि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्य जगहों पर केंद्रित कथा साहित्य में नहीं हैं। हिंदी में इन उपन्यासों का आगमन एक प्रवृत्ति की तरह हुआ है। जिसका हमें स्वागत करना चाहिए तथा इसके विकास को बढ़ावा देना चाहिए।

21वीं सदी के उपन्यासों में रविंद्र पाल का उपन्यास 'श्री देवी माँ' (2000), श्रीधर पांडे का 'आहुति' (2008), प्रमोद कुमार तिवारी का 'उफ्फ' (2010), प्रदीप सौरभ का 'देश भीतर देश', नीरजा माधव का 'त्रिपुरा' (2018), दयाराम वर्मा का 'सियांग के उस पार' (2018), जोराम यालाम नाबाम का 'जंगली फूल' (2018) आदि कुछ महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं जिनके द्वारा पूर्वोत्तर की लोक संस्कृति और समाज को समझा जा सकता है। इसके अलावा कुछ और भी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, यात्रा वृत्तांत, निबंध और आलोचना आदि लिखे गए हैं।

पूर्वोत्तर भारत के अनेक समुदाय पर्वतशिखरों एवं सुदूर जंगलों में प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। जहाँ गीत गाते झरनों, बलखाती नदियों, वन्य-जीवों और सुंदर पक्षियों का उन्मुक्त संसार है। यहाँ का जीवन सरल और स्वच्छंद है। यहाँ जीवन की आपाधापी नहीं, घड़ी की भागमभाग नहीं, कोई कोलाहल नहीं-तनावरहित जीवन, न्यूनतम

आवश्यकताएँ, कोई महत्वाकांक्षा नहीं, भविष्य की कोई चिंता नहीं। इन परिस्थितियों में इनके उर्वर मस्तिष्क में कल्पना की ऊँची उड़ान उठती है। फलतः लोक गीतों, लोक कथाओं, मिथकों, कहावतों, पहेलियों का स्वतः सृजन होता है। लोक साहित्य की दृष्टि से पूर्वोतर भारत अत्यंत समृद्ध है। पूर्वोत्तर की पुरानी पीढ़ी को 'लोक साहित्य का जीवंत संग्रहालय' कहा जा सकता है। लोक साहित्य वाचिक परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। शेष भारत की तरह पूर्वोत्तर भारत की आर्थिकी भी कृषि पर निर्भर है। अतः अधिकांश पर्व-त्योहार कृषि से संबंधित ही हैं। बीज बोने और फसल काटने के अवसर पर अनेक पर्व-त्योहार मनाए जाते हैं। नृत्य-गीत इन त्योहारों के अभिन्न अंग हैं। त्योहारों के अवसर पर इष्ट देवों को प्रसन्न करने के लिए सामूहिक स्तर पर नृत्य-गीत प्रस्तुत किए जाते हैं। इसलिए पूर्वोत्तर के लोक साहित्य में त्योहारों से संबंधित गीतों, नृत्यों और आख्यानों की संख्या सबसे अधिक है। प्रायः सभी आदिवासी समुदायों में युद्ध नृत्य और युद्ध गीत की परंपरा विद्यमान है। युद्ध नृत्य और युद्ध गीत वीर रसात्मक होते हैं एवं लोगों में शौर्य व पराक्रम का संचार करते हैं। गीतों में अतीत में घटित युद्धों के उल्लेख के साथ-साथ समुदायों के पूर्वज योद्धाओं के वीरतापूर्ण आख्यान वर्णित होते हैं। पूर्वोत्तर का समाज उत्सवधर्मी है। इस क्षेत्र के अनेक आदिवासी समुदायों में मृत्यु को भी उत्सव के रूप में समारोह करके मनाया जाता है। मदिरा पीकर ग्रामवासी पूरी रात नृत्य करते हैं और गीत गाकर मृतक की आत्मा की शांति की कामना करते हैं। इसलिए इस अंचल में मृत्यु गीतों व मृत्यु नृत्यों की भी परंपरा है।

पूर्वोतर के लोक साहित्य में पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों, जीव-जंतुओं आदि का मानवीकरण किया गया है। इस अंचल के लोक साहित्य में वन, पहाड़, देवी-देवता, भूत-प्रेत, जादू-टोना, तंत्र-मन्त्र, नदी, तालाब, पेड़-पौधे इत्यादि से संबंधित आख्यानों, गीतों, कथाओं और पहेलियों का बाहुल्य है। इस अंचल के लोक साहित्य में दैवीय गुणों से युक्त वनस्पतियों, संवेदनशील भूत-प्रेतों और चमत्कारी नदियों-झरनों-तालाबों का उल्लेख बार-बार मिलता है। पूर्वोतर के प्रणय गीतों में प्रेम की पराकाष्ठा दृष्टिगोचर होती है। इन गीतों में आत्मसमर्पण, आत्मोत्सर्ग और प्रेम की उदात्तता का भाव है। प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे के लिए जीने-मरने को तत्पर रहते हैं। प्रेमी-प्रेमिका के प्रणय निवेदन में भावनाओं के आरोह-अवरोह के साथ-साथ शब्द चातुर्य भी मिलता है। इस क्षेत्र की अधिकांश जनजातियों में मुखौटा नृत्य की परंपरा विद्यमान है। नर्तकगण विभिन्न पशु-पक्षियों का मुखौटा धारण कर पारंपरिक नृत्य करते हैं। बरसिंगा नृत्य, कंकाल नृत्य, दम्पू नृत्य आदि पूर्वोत्तर में अत्यंत लोकप्रिय हैं। इन नृत्यों के द्वारा समाज को नैतिकता का संदेश दिया जाता है। विशेष कर बौद्ध धर्मावलंबी जनजातियों में मुखौटा नृत्य की उन्नत शैली मौजूद है, जिसके माध्यम से बौद्ध धर्म से संबंधित संदेश संप्रेषित किए जाते हैं। पूर्वोत्तर के कुछ जनजातीय समाजों में पशु-पक्षियों के हाव-भाव के आधार पर नृत्य किए जाते हैं। नर्तकगण भालू, मुर्गा आदि पशु-पक्षियों की तरह अंग-संचालन करते हैं। पूर्वोत्तर में नृत्य सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग है। इसके द्वारा लोग अपने हर्ष-विषाद, विजय-पराजय, उल्लास-उमंग आदि प्रकट करते हैं। पूर्वोत्तर के कुछ समाज में नृत्य भी एक प्रकार की उपासना और ईश्वर प्राप्ति का एक साधन है। यहाँ नृत्य एक पवित्र कर्म माना जाता है।

पूर्वोत्तर के समाज में लोक कथाओं और मिथकों की समृद्ध परंपरा है। सभी समुदायों में अपने देशांतरगमन, पूर्व पुरुषों तथा ईश्वरीय प्रतीकों के संबंध में भिन्न-भिन्न मिथक प्रचलित हैं। यहाँ वन्य जीवन एवं वन्य-प्राणियों से संबंधित लोक कथाओं और मिथकों का बाहुल्य है। शिकार संबंधी लोककथाएँ भी खूब लोकप्रिय हैं। इन लोक कथाओं में मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने की भावना निहित होती है। इस अर्थ में ये लोकगीत और लोकसाहित्य विष्णु शर्मा की कृति 'पंचतंत्र' के विशेष निकट हैं। पूर्वोत्तर के लोक गीतों में वीरगाथात्मक आख्यान, देशांतरगमन संबंधी घटनाएँ, पूर्वजों की

उपलब्धियाँ तथा आखेट से जुड़े अनुभव भी बहुतायत में वर्णित होते हैं। अधिकांश लोक गीत व लोक कलाएँ मिथकों पर आधारित हैं। यहाँ की कहावतें एवं दंतकथाएँ पूर्वजों द्वारा अर्जित अनुभव और अतीत की घटनाओं पर आधारित हैं। सामूहिकता बोध पूर्वोत्तर की विशेषता है। किसी व्यक्ति का जीवन समुदाय से अलग नहीं होता है। यहाँ व्यष्टि नहीं, समष्टि, सृष्टि और परमेष्टि महत्त्वपूर्ण है। इसलिए पूर्वोत्तर में नृत्य-गीत की प्रस्तुति सामुदायिक स्तर पर होती है। इससे परस्पर भाईचारे की भावना सुदृढ़ होती है। शेष भारत की तरह धर्म पूर्वोत्तर भारत प्राणतत्व है। धार्मिक मान्यताएँ कदम-कदम पर इनका पथ आलोकित करती हैं। अत: इष्ट देवताओं, ईश्वरीय प्रतीकों, भूत-प्रेतों आदि से संबंधित उपासना गीतों, संस्कार गीतों और संस्कार नृत्यों का आधिक्य है। इन नृत्य-गीतों में उत्साह, उल्लास, ऊर्जा और परम समर्पण होता है। पूर्वोत्तर भारत में विद्यमान 'युवा गृह' लोक साहित्य को पल्लवित-पुष्पित करने में महती भूमिका का निर्वाह करते हैं। यहाँ पर युवा पीढ़ी नृत्य-गीत का प्रशिक्षण प्राप्त कर वाचिक परंपरा को आगे बढ़ाती है। सैकड़ों आदिवासी समूहों का क्षेत्र पूर्वोत्तर अपनी विविधतापूर्ण संस्कृति के लिए विख्यात है। सरल जीवन और न्यूनतम आवश्यकता के कारण आदिवासी समाज के पास चिंतन, मनन, आत्मावलोकन, कल्पना, नृत्य-गीत, गपशप के लिए भरपूर समय होता है। खाली समय में इनकी कल्पनाएँ ऊँची उड़ान भरती हैं तथा उनके उर्वर मन-मस्तिष्क से कहानियों, कविताओं, गीतों, कहावतों की अविरल धारा फूट पड़ती है। हजारों की संख्या में कहानियाँ, गीत, मिथक, आदि वाचिक परंपरा में मौजूद हैं जिन्हें अभी तक लिपिबद्ध नहीं किया गया है। कुछ चुनिन्दा भाषाओं को छोड़कर पूर्वोत्तर की अधिकांश भाषाओं के पास अपनी लिपि नहीं है। लिपिहीनता इस क्षेत्र के लोक साहित्य के संरक्षण-संकलन-प्रकाशन में सबसे बड़ी बाधा है। लोक-साहित्य के संरक्षण के काम में हिंदी और देवनागरी लिपि की बड़ी भूमिका हो सकती है।

अत: आवश्यक है कि देवनागरी लिपि में पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य के संकलन-प्रकाशन के लिए भागीरथ प्रयास किए जाएँ। अन्यथा काल-प्रवाह में साहित्य के इस विशाल भंडार का क्षरण हो जाएगा तथा हमारा समाज इस समृद्ध विरासत से वंचित हो जाएगा। पूर्वोत्तर भारत के लोक साहित्य के प्रकाशन में केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, साहित्य अकादमी, दिल्ली, प्रकाशन विभाग, दिल्ली और रमणिका फाउंडेशन के द्वारा अहम भूमिका निभाई जा रही है जिनमें लोक साहित्य के संग्रह, संपादन, प्रकाशन और संरक्षण का कार्य सतत प्रगति के साथ बढ़ रहा है। हिंदी भाषा से इतर पूर्वोत्तर भारत के लेखकों के द्वारा जो साहित्य रचा जा रहा है, उसका अनुवाद भी धीरे-धीरे हिंदी भाषा में हो रहा है। इससे उनके जनजीवन, संस्कृति, समाज, धार्मिक मान्यताओं का पता चलता है। उनकी समस्याओं कठिनाइयों और अभावों का पता चलता है। प्रसन्नता की बात है कि 21वीं सदी के हिंदी साहित्य, शोध और आलोचना में पूर्वोत्तर भारत को लेकर बहुत काम किया जा रहा है। हिंदी की प्राय: सभी विधाओं में पूर्वोत्तर के रचनाकार तथा हिंदी के साहित्यकार लगातार पूर्वोत्तर भारत की संस्कृति, सामाजिक जीवन उनके रीति रिवाज, धार्मिक मान्यता और संघर्ष आदि पर लिख-पढ़ रहे हैं। उपन्यास, यात्रा वृत्तांत, कहानी, कविता, निबंध तथा आलोचनाएँ लिखी जा रही हैं। जिससे हिंदी प्रदेश के पाठक उनसे अवगत हो रहे हैं। अब उनकी संस्कृति और सामाजिक मान्यताओं को पूरे विश्व के समक्ष लाने का वक्त आ गया है और यह सिर्फ हिंदी के माध्यम से ही होना संभव है। इसके लिए हमारे साहित्यजनों द्वारा किए जा रहे प्रयासों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि उनके लिए अभिव्यक्ति का एक सहज स्वीकार्य और विश्वसनीय माध्यम बन सके।

❖

अध्यक्ष, हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग
जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय
मोबाइल : 8800886847

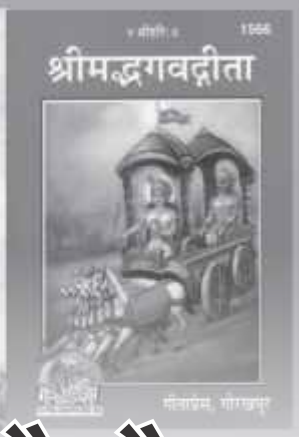

श्रीमद्भगवद्गीता और वैराग्य संदीपनी

(श्रीमद्भगवद्गीता का गोस्वामी तुलसीदास कृत वैराग्य संदीपनी से तुलनात्मक अध्ययन-शोध पत्र)

— डॉ. मृदुल कीर्ति

'सुलभ' शब्द विशेष महत्त्व का है-उसका कारण है कि पूरी भगवद्गीता में 'सुलभ' शब्द केवल एक बार आया है जब कि योग शब्द 64 बार आया है। केवल अनन्य भक्त को ही मैं सुलभ हूँ, इसलिए अनन्यता और सुलभ दोनों भक्त और ब्रह्म की पूर्णता के द्योतक हैं। इधर तुलसी का अस्तित्व सर्वस्व, समर्पण की पराकाष्ठा में भाव विह्वल है, जिसमें तुलसी अणु मात्र भी तो स्वयं को बचाकर नहीं रखते बल्कि अनन्यता से भी अधिक समर्पण को आतुर सर्वांश होकर कहते हैं, मैं तो प्रभु तेरा ही हूँ किंतु जो तेरा नाम भूल से भी लेता है उसके पग की पगतरी अपने तन के चाम से बनाने को प्रस्तुत हूँ।

ॐ ! पूर्ण मद: पूर्णमिदं, पूर्णात पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय, पूर्ण मेवा वशिष्यते॥

श्रीमद्भगवद्गीता जीवन का दर्शन, शोध और संविधान है। कामना, तृष्णा और एषणा से आप्त, तप्त और संतप्त जीव को, तृष्णा रहित चित्त की अवस्था और अंतत: परब्रह्म की शरणागति ही समाधान है। श्री कृष्ण 'गीता' में और 'वैराग्य संदीपनी' में संत प्रवर तुलसी दास ने जीव के चित्त की इन्हीं वृत्तियों का भाव-विभाव, प्रभाव-स्वभाव एवं समाधान मानव के कल्याण हेतु बताया है। जीव परिणाम की इच्छा करते हैं, कृष्ण इच्छा का परिणाम बताते हैं। इन ब्रह्मनिष्ठ ज्ञान के अंतर्वर्ती मूल्यों में अभिन्नता है, शाश्वती है, चिरंतन सत्य हैं अत: उसमें द्वैत्व कहाँ है? इन दोनों में विषय सारूप्यता ही इनके तुलनात्मक अध्ययन का आधार है। वैराग्य संदीपनी को तुलसी कृत गीता भी कहा जा सकता है, यहाँ इसी साम्यता का विवेचन है। तुलनात्मक समीकरण के साक्ष्य, संदर्भ सहित इस शोध पत्र में परिलक्षित हैं।

तुलसी वेद पुराण मत, पूरण शास्त्र विचार।
यह विराग संदीपनी अखिल ज्ञान को सार।

—वैराग्य संदीपनी-7

परब्रह्म एक है, परिपूर्ण है। प्राणीमात्र के कल्याण के लिए कभी श्री राम तो कभी श्रीकृष्ण बनकर अवतरित होते हैं।

1. अवतार भाव की साम्यता

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम॥—गीता-4/7

संत प्रवर तुलसी भी वैराग्य संदीपनी में इसी प्रवाह में मुखरित हैं।

अज अद्वैत अनाम अलख रूप गुण रहित जो।
मायापति सोइ राम, दास हेतु नर तन धरेउ॥

—वैराग्य संदीपनी-4

2. निर्गुण और निराकार

ब्रह्म साकार और सगुण होने के साथ-साथ निराकार और निर्गुण दोनों है, अत: अवतरित होने के साथ-साथ ब्रह्म

निर्गुण होते हुए—अणु-अणियाम और महत-महियाम होने के कारण सृष्टि के अणु-कण में समाहित भी है। गीता में कृष्ण भी स्वयं को निराकार बताते हैं।

सर्वेंद्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम।

असक्तं सर्वभृच्चौव निर्गुण गुणभोक्तृ च।

—गीता-13/14

परमात्मा सम्पूर्ण इन्द्रियों से रहित, आसक्ति रहित,सम्पूर्ण जगत का भरण-पोषण करने वाले हैं तथा गुणों से रहित है और सम्पूर्ण गुणों के भोक्ता हैं।

तुलसी का ब्रह्म भी 'पग बिनु चलहि, सुनहि बिनु काना। कर बिनु कर्म करे बहु नाना।' वैराग्य संदीपनी के आदि में ही मंगलाचरण में भगवत्स्वरूप वर्णन है उसमें निराकार भाव ही है।

सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।

वास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत।

—वैराग्य संदीपनी-3

3. अव्यभिचारिणी भक्ति

केवल एक सर्वशक्तिमान को सर्वस्व मानते हुए निरंतर भक्ति करना ही अव्यभिचारिणी भक्ति है। श्री कृष्ण को एकनिष्ठ भक्त प्रिय है जो एकमेव मेरा हो। जो पुरुष अव्यभिचारिणी भक्ति के द्वारा मुझको भजता हो, वह तीनों गुणों को लाँघकर ब्रह्म प्राप्त होने के योग्य है।

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।—गीता-13/10

मा च यो अव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।

—गीता-14/26

तो इधर रामत्व में लीन तुलसी की भी राम एकमात्र ध्रुवीय सत्ता है, एक अटल लक्ष्य बिंदु, एक आस्था, एक विषय, एक उपास्य, एक काम्य-एक राम।

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।

राम रूप स्वाति जलद, चातक तुलसी दास।

—वैराग्य संदीपनी-15

4. अनन्य भक्ति और निष्ठा

अनन्य भक्त को कृष्ण एक और आश्वासन देते हैं-हे अर्जुन जो अनन्य चित्त होकर निरंतर मेरा स्मरण करता है, उसे मैं सहज ही प्राप्त होता हूँ। यहाँ अनन्य चेता: दृष्टव्य है-भक्त और प्रभु के बीच कोई अन्य नहीं, यही अनन्यता और एकीभाव है।

अनन्यचेता: सततं यो मां स्मरति नित्यश:। तस्याहं सुलभं पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिन:।—गीता-8/14

'सुलभ' शब्द विशेष महत्त्व का है-उसका कारण है कि पूरी भगवद्गीता में 'सुलभ' शब्द केवल एक बार आया है जब कि योग शब्द 64 बार आया है। केवल अनन्य भक्त को ही मैं सुलभ हूँ, इसलिए अनन्यता और सुलभ दोनों भक्त और ब्रह्म की पूर्णता के द्योतक हैं। इधर तुलसी का अस्तित्व सर्वस्व, समर्पण की पराकाष्ठा में भाव विह्वल हैं, जिसमें तुलसी अणु मात्र भी तो स्वयं को बचाकर नहीं रखते बल्कि अनन्यता से भी अधिक समर्पण को आतुर सर्वांश होकर कहते हैं, मैं तो प्रभु तेरा ही हूँ किंतु जो तेरा नाम भूल से भी लेता है उसके पग की पगतरी अपने तन के चाम से बनाने को प्रस्तुत हूँ।

तुलसी जाके बदन सों, धोखेहुँ निकसत राम।

ताके पग की पगतरी, मोरे तन को चाम।

—वैराग्य संदीपनी-37

यह समर्पण और अनन्यता का अंतिम छोर है। यह श्रद्धा से भी उच्च अभीप्सा का स्तर है, जो आधा अधूरा नहीं, सम्पूर्ण, सर्वांश, सर्वांग और सर्वोपरि है।

5. चित्त, चाह और कामना

चित्त ही वह बिंदु है जहाँ से चाह का जन्म होता है, चाह का निर्माण बंद होना ही दु:खों का निराकरण है। कामनाओं का अंश रहने तक प्राणी साधक कहलाता है, सर्वथा अभाव होते ही वह सिद्ध हो जाता है।

सर्वसंकल्पसंन्यासी, योगारूढ:, तदा, उच्यते।

—गीता-6/4

इसी विषय में तुलसी दास—

जाके मन ते उठि गई, तिल-तिल तृष्णा चाहि।

मनसा वाचा कर्मणा तुलसी वंदत ताहि।

6. राग-विराग से परे वीतराग

गीता और वैराग्य संदीपनी दोनों में यह सिद्ध किया गया है—राग-विराग से परे जो वीतराग वृत्ति में जीता है वही जीवन्मुक्त स्थितप्रज्ञ है। ऐसा वीतरागी मुनि जब जीवित होता है तब भी ब्रह्म में ही विश्राम करता हुआ, निष्काम कर्म करता है। कर्म में अकर्म भाव होना ही कर्म का निष्काम होना है। तन-मन और वचन से सबको सुख देता हुआ शुभ और नि:स्वार्थ कर्म करता है। 'आत्मवत सर्व भूतेषु' उसका स्वभाव हो जाता है।

अद्वेष्टा सर्व भूतानां, मैत्र:, करुण: एव च, निर्मम:, निरहंकार:, समदु:खसुख:, क्षमी।—गीता-12/13

तुलसी के अनुसार—

तन करि, मन करि, वचन करि, काहू दूखत नाहिं।

तुलसी ऐसे संत जन राम रूप जग माँहि॥

—वैराग्य संदीपनी-23

अति सीतल अति ही अमल, सकल कामना हीन।

तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति शांति लवलीन॥

—वैराग्य संदीपनी-25

7. आत्मसंयमी होकर भगवत्परायण हो, विषय परायण नहीं।

काम ही मन और इंद्रियों द्वारा ज्ञान को आच्छादित कर जीवात्मा को मोहित करता है। अत: आत्मसंयमी होकर भगवत्परायण हो विषय परायण नहीं। श्री कृष्ण के वचनों में यह भाव

तानि, सर्वाणि, संयम्य, युक्त:, असीत, मत्पर:।

वशे हि यस्य, इंद्रियाणि, तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

—गीता-2/61

आत्मसंयमी होकर राम भक्ति करना ही तुलसी का जीवन सार है।

आकिंचन इंद्रिय दमन, रमन राम एक तार।

तुलसी ऐसे संत जन बिरले या संसार॥

—वैराग्य संदीपनी-29

8. समत्व भाव-समत्वं योग उच्च्यते।

समत्व के उदय से ही आत्मा में अमृत्व प्लावित होता है। स्थिति और गति में समन्वय की अवस्था होती है। आकर्षण और विकर्षण में तटस्थ भाव की व्यवस्था होती है। हर्ष, द्वेष, स्नेह और घृणा में सम्यक व्यवहार की एक प्रथा होती है। सम्यक, समत्व और संतुलन में जीवन व्यवहार की विधा गीता का उपदिष्ट विषय है—

य:, न:, हृष्यति, न, द्वेष्टि, न, शोचति, न, कांक्षति।

शुभाशुभपरित्यागी, भक्तिमान, यह, स:, में, प्रिय:॥

—गीता 12/17

तुलसी भी इसी भाव में मुखरित हैं—

राग-द्वेष की अग्नि बुझानी,

काम-क्रोध वासना न आनी।

—वैराग्य संदीपनी-60

सो जन जगत जहाज है, जाके राग न द्वेष।

तुलसी तृष्णा त्यागि कै, गहै सील संतोष॥

—वैराग्य संदीपनी-17

9. अहम् शून्य वृत्ति

अहम् शून्य चित्त की अवस्था अध्यात्म जगत की सर्वोपरि अवस्था है और अहम् का दिव्यीकरण होना ही अहम् का विगलित होना है। इन अर्थों में निष्काम वृत्ति कालजयी परम उपलब्धि है। निष्काम होते ही काम राम हो जाता है और काम का गंतव्य भी राम होना ही है। फिर साधक उस असीम कार्यसत्ता के अंश से जुड़ जाते हैं। कैसा शुद्ध दैवीय समाधान है, जब दृष्टि में केवल परमात्मा ही रहता है। श्री कृष्ण ऐसी चित्त वृत्ति को गुणातीत कहते हैं—

उदासीनवत, आसीन:, गुणै:, य:, न, विचालयते, गुनाह, वर्तन्ते, इति, एव, य:, अवतिष्ठति, न, इंगते॥

—गीता-14/23

ऐसी सात्विक वृत्ति के लिए तुलसी—

अति कोमल अति विमल रूचि, मानस में मल नाहिं।

तुलसी रत मन हुई रहैं, अपने साहिब माँहिं।

—वैराग्य संदीपनी-25

10. माया से निर्लिप्त

संतवृत्ति प्रलोभनों के पार की अवस्था है। ज्ञानी संत जानता है कि जगत का सारा सौंदर्य व सुख क्षय और मृत्यु के आधीन है। उनकी कंचन और कांच, माटी सोना में अभेद दृष्टि है।

समदु:खसुख, स्वस्थ:, समलोष्टाश्मकांचन।

तुल्यप्रियाप्रिय:, धीरा:, तुल्यनिंदात्मसंस्तुति:॥

—गीता 14/24

ठीक वैसा ही तो तुलसी लिखते हैं—

सम कांचन काँचै, गिनत शत्रु मित्र सम दोई।

तुलसी या संसार में कहत संतजन सोई॥

—वैराग्य संदीपनी-31

11. दुर्लभ संत

ऐसे संत कितने दुर्लभ है—

मनुष्याणां, सहस्त्रेषु, कश्चित्, यतति सिद्धये।

यतताम, अपि, सिद्धानां, कश्चित्, माम, वेत्ति, तत्वत:॥

—गीता 7/2

तुलसी के वचनों में समर्थन

बिरले-बिरले पाइए, माया त्यागी संत।

तुलसी कामी कुटिल काली, केकी केक अनंत॥

—वैराग्य संदीपनी-32

12. हे अर्जुन! अनन्य चित्त भक्त नष्ट नहीं होता—

उसके योग-क्षेम और निर्वाह का दायित्व मेरा है। यदि तू आत्मार्थी से मोक्षार्थी होकर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होना चाहता है तो-मेरा हो जा—

मन्मना: भव, मद्भक्त:, मद्याजी, माम, नमस्कुरु,

माम एव एष्यसि, युक्त्वा, एवम, आत्मानं, मत्परायण:॥

—गीता-9/34

यही भाव संत तुलसी के हैं—

अति अनन्य जो हरी को दासा,

रटै नाम प्रतिदिन प्रति स्वासा।

तुलसी तेहि समान नहीं कोई,

हम नीके देखा जग कोई।—वैराग्य संदीपनी-13

मैं आनंदस्वरूप आत्मा हूँ, देह नहीं हूँ—यह तो ज्ञान है तथा सबकुछ प्रभु का है—यह भक्ति है। प्रतिबोध दे भगवन!

गीता में अर्जुन का अमृत प्राशन श्री कृष्ण वचनों से करते हैं और वैराग्य संदीपनी में संत तुलसी का अमृतप्राशन उनके भावों में समाकर श्री राम करते हैं। अत: श्रीमद्भगवद्गीता और संत प्रवर तुलसी कृत वैराग्य संदीपनी में एकीभाव, एक तत्व और एक ही ज्ञान है।

राम-कृष्ण का अभेद स्वरूप, दोनों एक ही हैं।

कृष्ण वाणी के वाचस्पति व शब्दों के स्वामी हैं, तो राम धर्म के प्राण, प्रमाण और कर्मों के स्वामी हैं। कृष्ण के वचन अनुकरणीय हैं तो राम का जीवन अनुकरणीय है। गीता में श्री कृष्ण कि "राम: शस्त्रभृतामहं"—गीता-10/31

शस्त्रधारियों में, मैं ही राम हूँ। ब्रह्म स्वयं मुखरित होकर अपना भेद बताते हैं कि मैं अभेद हूँ। संत तुलसी ने—"विनय पत्रिका" में कृष्ण का स्वरूप कहीं-कहीं दर्शाया है, पर "श्रीकृष्ण गीतावली" में तो यह अभेद प्रत्यक्ष प्रगट होता है।

वासुदेव: सर्वं—गीता का उद्घोष है

तो

सीय राममय सब जग जानी।—तुलसी की आत्मा का संकीर्तन है। ब्रह्म अद्वैत है।

❖

वरिष्ठ लेखिका

ऑस्ट्रेलिया, मोबाइल : +1 (770) 330-1970

www.mridulkirti.com, www.kavitakosh.org/mridul

भारतीय शिक्षा का इतिहास और वर्तमान शिक्षा प्रणाली

— नेहा गौड़

भारत की संपन्नता से आकृष्ट होकर जब मुग़लों ने धन-दौलत की लूट की नीयत से भारत पर आक्रमण किया तो आरंभ में उनकी लूट-पाट और उपस्थिति का भारतीय शिक्षा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। परंतु महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् भारतीय शिक्षा प्रणाली की अकल्पनीय क्षति हुई। मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस्लाम के प्रचार-प्रसार हेतु अपना ध्यान युवा वर्ग की शिक्षा पर लगाया। हिंदू शिक्षा केंद्रों को तोड़ वहाँ मदरसे, मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण किया जाने लगा। राजकीय भाषा के रूप में फारसी को बढ़ावा दिया जाने लगा। जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन संस्कृत शिक्षा और बौद्धकालीन शिक्षा मृतप्राय हो गयी। इस काल की शिक्षा के उद्देश्य पूर्ववर्ती काल की शिक्षा के उद्देश्यों से पूर्णतया भिन्न थे।

'शं सरस्वती सह धीभिरस्तु' अथर्ववेद के इस मंत्र का भावार्थ यह है कि शिक्षा के द्वारा जीवन में विवेक का गुण जागृत होना चाहिए, जिससे वह बुद्धि के द्वारा दुर्गुणों को छोड़ें और सद्गुणों को अपनाए। कहा भी गया है कि-

'विद्या ददाति विनयम्' अर्थात् विद्या से सुशीलता प्राप्त होती है। इसके द्वारा ही श्रद्धा और मेधा प्राप्त होती है। शिक्षा वह बहुमूल्य निधि है जो हमें स्थूल और सूक्ष्म विषयों, लौकिक व्यवहारों का ज्ञान कराकर समाज में उचित रूप से व्यवहार करना सिखाती है।

किसी भी देश की संपन्नता और उसकी गुणवत्ता उस देश की शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता के आधार पर आँकी जाती है। शिक्षा के संदर्भ में यदि भारत की बात की जाए तो भारत विश्व में शिक्षा के क्षेत्र में 'विश्व गुरु' के नाम से जाना जाता है। भारतीय शैक्षिक व्यवस्था विश्व की प्राचीनतम शैक्षिक व्यवस्था है और इसका प्रारंभिक रूप वैदिक काल से माना जाता है। वैदिक काल वेदों पर आधारित धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षिक व्यवस्था का काल था। गुरुकुल आधारित इस शैक्षिक व्यवस्था में शिष्य गुरू द्वारा उच्चारित वैदिक मंत्रों को दोहराता था। चरित्र की शुद्धता, नैतिक आदर्शों पर बल, ब्रह्मज्ञान के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति ही वैदिक कालीन शिक्षा का मुख्य आधार था। किंतु कालांतर में वैदिक कालीन शिक्षा में कर्मकांड की प्रबलता पुरोहितवाद के उदय, शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार, शूद्रों एवं नारी शिक्षा की उपेक्षा, वैदिक धर्म की शुद्ध भावना का लोप होने के कारण बौद्ध धर्म का उदय हुआ, जिसकी स्थापना आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व बुद्ध ने की। वास्तव में बौद्ध धर्म नया धर्म नहीं अपितु हिंदू धर्म का ही परिवर्तित रूप है। बौद्धकालीन शिक्षा की यदि बात करें तो शिक्षा के माध्यम से निर्वाण की प्राप्ति, नैतिक चरित्र-निर्माण पर बल, बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार, राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसारण बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था के कुछ मुख्य उद्देश्य थे।

भारत की संपन्नता से आकृष्ट होकर जब मुग़लों ने धन-दौलत की लूट की नीयत से भारत पर आक्रमण किया तो आरंभ में उनकी लूट-पाट और उपस्थिति का भारतीय शिक्षा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। परंतु महमूद गजनवी के आक्रमण के पश्चात् भारतीय शिक्षा प्रणाली की अकल्पनीय क्षति हुई। मुस्लिम धार्मिक नेताओं ने इस्लाम के प्रचार-प्रसार हेतु अपना ध्यान युवा वर्ग की शिक्षा पर लगाया। हिंदू शिक्षा केंद्रों को तोड़ वहाँ मदरसे, मस्जिदों एवं मकबरों का निर्माण किया जाने लगा। राजकीय भाषा के रूप में फ़ारसी को बढ़ावा दिया जाने लगा। जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन संस्कृत शिक्षा और बौद्धकालीन शिक्षा मृतप्राय हो गयी। इस काल की शिक्षा के उद्देश्य पूर्ववर्ती काल की शिक्षा के उद्देश्यों से पूर्णतया भिन्न थे। इस्लाम धर्म एवं संस्कृति का प्रचार-प्रसार, मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना, सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति जैसे उद्देश्यों ने वैदिक और बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली का नाश कर दिया।

भारतीय शिक्षा प्रणाली अभी मुग़लों के प्रहार की पीड़ा से उबर भी न पाई थी कि बची-खुची कसर भारत में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन और पाश्चात्य शिक्षा के समर्थक लॉर्ड मैकाले ने पूरी कर दी। लॉर्ड मैकाले ने भारतीय साहित्य के बारे में लिखा है-''भारत तथा अरबी साहित्य का ज्ञान एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी की पुस्तकों से अधिक नहीं है।'' लॉर्ड मैकाले ने भारत में शिक्षा का उद्देश्य बदलकर अंग्रेजी माध्यम से यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार करना प्रारंभ कर दिया। मैकाले भारतीयों में पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ एक ऐसे समूह का निर्माण करना चाहता था, जो रंग एवं रक्त से भारतीय हो, पर विचारों, रुचि एवं बुद्धि से अंग्रेज़ हों। वास्तव में मैकाले की मुख्य नीति भारत में भारतीय अंग्रेज़ पैदा करने की थी। मैकाले एक दूरगामी शासक था वह इस बात से भली-भाँति परिचित था कि यदि किसी देश को वर्षों तक ग़ुलाम बनाए रखना है तो उसकी शैक्षिक जड़ों को खोखला कर दो और वह अपनी इस योजना में सफल भी हुआ। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मैकाले शिक्षा प्रणाली का ही परिणाम तो है। आज हम भले ही अंग्रेज़ों के गुलाम न सही फिर भी अंग्रेज़ियत के गुलाम ज़रूर हैं।

ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली हमारी शिक्षा प्रणाली के अनुकूल न थी। इसका उद्देश्य भारतीय समाज की एकता को नष्ट करना तथा पश्चिमी सभ्यता एवं जीवन पद्धति के प्रति आकर्षण पैदा करना था। भारतीय वैदिक संस्कृति और उसकी स्वर्णिम शिक्षा-व्यवस्था को संरक्षित रखने हेतु 'महात्मा गाँधी', 'गोपाल कृष्ण गोखले', 'बाल गंगाधर तिलक', 'दयानंद सरस्वती', 'मदन मोहन मालवीय', 'एनी बेसेंट', 'महात्मा ज्योतिबा फुले' और उनकी पत्नी 'सावित्रीबाई फुले' आदि जैसे असंख्य शिक्षाशास्त्रियों का सहयोग अविस्मरणीय है।

आज़ादी के पश्चात् राधाकृष्ण आयोग, माध्यमिक शिक्षा आयोग, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, कोठारी शिक्षा आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं नवीन शिक्षा नीति आदि के द्वारा भारतीय शिक्षा-व्यवस्था को समय-समय पर सही दिशा देने के गंभीर प्रयास किए गए। गाँधी जी द्वारा प्रतिपादित बुनियादी शिक्षा का महत्वपूर्ण लक्ष्य, शिल्प आधारित शिक्षा द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास कर उसे आत्मनिर्भर आदर्श नागरिक बनाना था।

शिक्षा की प्रक्रिया के माध्यम से ही मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास संभव है। शिक्षा ही वह एकमात्र साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने चरित्र का निर्माण कर समाज में उपयुक्त स्थान ग्रहण कर पाता है परंतु मैकाले द्वारा भारतीय शिक्षा व्यवस्था में अंग्रेज़ी भाषा एवं पश्चिमी सभ्यता के जो बीज रोपित किए गए थे, दुर्भाग्यवश भारत की वर्तमान शिक्षा पद्धति आज भी उसका अनुसरण कर रही है और युवा कर्णधारों पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है।

आज हम जो शिक्षा प्रणाली अपनाए हुए हैं उसका संबंध केवल किताबी ज्ञान, रटंत प्रक्रिया और अंक प्रदर्शन तक सीमित है। पाठ्य पुस्तकों में छपी हुई बातों को रट कर याद कर लेना ही हम ज्ञान समझ बैठे हैं। प्रतियोगिता का स्तर दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। अभिभावक, शिक्षक और समाज की असंख्य अपेक्षाओं और उपेक्षाओं के डर के तले बच्चे का जीवन नष्ट हो रहा है। देश में प्रौढ़ शिक्षा और साक्षरता के नाम पर लूट-खसोट, प्राथमिक शिक्षा का दुर्बल आधार, उच्च शिक्षण संस्थनों की अपनी सशक्त भूमिका से विमुख होना तथा अध्यापकों का पेशेवर दृष्टिकोण वर्तमान शिक्षा प्रणाली के लिए नया संकट उत्पन्न कर रहा है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को अंतहीन दौड़ में शामिल करने का मार्ग दिखाती है। कैरियर के नाम पर बड़े पैकेज वाली नौकरियों की तलाश ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य रह गया है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के नए चेहरे निजीकरण तथा उदारीकरण की विचारधारा से शिक्षा को भी 'उत्पाद' की दृष्टि से देखा जाने लगा है जिसे बाज़ार में खरीदा-बेचा जाता है। आज हम सब मिलकर विद्यार्थियों के रूप में नोट छापने वाली मशीनों का निर्माण कर रहे हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य जीवन की आधुनिक सुख-सुविधाओं की प्राप्ति हेतु नैतिक-अनैतिक साधनों को अपनाना है। आज का युवा अपने परिवार, समाज एवं देश के प्रति अपने उत्तरदायित्वों से विमुख अपनी इच्छाओं की पूर्ति में लगा हुआ है।

'नेल्सन मंडेला' ने कहा है कि 'शिक्षा वह सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसका उपयोग आप विश्व को बदलने के लिए कर सकते हैं।' अर्थात् शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने समाज एवं देश को नई दिशा दे सकते हैं। और इसके लिए भारत की शिक्षा प्रणाली में वर्तमान युग के अनुरूप बदलाव करने की आवश्यकता है। आज हमें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास में सहायक हो, उसकी रचनात्मक शक्ति को बढ़ाए उसमें नैतिक मूल्यों का विकास कर उसके चरित्र का निर्माण करें। वर्तमान शिक्षा को तकनीक से जोड़ रोज़गारपरक बनाने की आवश्यकता है।

भौतिकता, व्यक्ति केंद्रिकता के कारण आज व्यक्ति, समाज, प्रकृति या कहा जाए कि यह संपूर्ण सृष्टि ही संकटग्रस्त है। आज भारत को ऐसी राष्ट्रव्यापी, चरित्र-निर्मात्री, मानव-निर्मात्री, जीवन दर्शन पर आधारित शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो युवा पीढ़ी को स्वावलंबी, चरित्रवान और एक जिम्मेदार नागरिक के रूप में तैयार करें, उन्हें आत्मकेंद्रित बनाने के स्थान पर समाजोपयोगी-राष्ट्रोपयोगी बनाए। आज 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' का भाव जागृत करने की आवश्यकता है। 'स्व' से 'सर्व' तक की विकास यात्रा ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य और भारत का शिक्षा दर्शन है।

संदर्भ :

1. डॉ. एस.पी. गुप्ता-भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
2. प्यारे लाल रावत-प्राचीन व आधुनिक भारतीय शिक्षा, भारत पब्लिकेशन्स, आगरा
3. सुवेश्वर प्रसाद-भारतीय शिक्षा का इतिहास प्रथम भाग (प्राचीन तथा मध्यकाल), श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड, पटना
4. सिंघल, महेश चंद्र-भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, राजस्थान
5. अग्निहोत्री रविंद्र-भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्या, रिसर्च पब्लिकेशंस, दिल्ली
6. डॉ. रामशकल पांडेय-आधुनिक भारत एवं शिक्षा, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

❖

पीएच.डी. शोधार्थी
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
मोबाइल : 9891205751
ई-मेल : neha.gaur90@gmail.com

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता और गिरिजा कुमार माथुर

— साधना अग्रवाल

गिरिजा कुमार माथुर का पहला संग्रह 'मंजीर' 1941 में निकला था और उनकी पहली कविता माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर' में 'मैं निज सोने के पर पसार' शीर्षक से 1936 में निकली थी। निराला ने 'मंजीर' की भूमिका लिखी थी। निराला लिखते हैं—'श्री गिरिजा कुमार माथुर निकलते ही हिंदी की निगाह खींच लेने वाले तारे हैं। काव्य के आकाश से उनका बहुत ही मधुर और रंगीन प्रकाश हिंदी के धरातल पर उतरा है। बोल वाले तार की तरह मजबूत, स्वर से मिले हुए, अपने पहले ही झंकार से उन्होंने लोगों का दिल ले लिया है।' डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में लिखा है 'गिरिजा कुमार माथुर ने छंद रचना, शब्द चयन और ऐन्द्रिय मूर्ति विधान की कला निराला से सीखी और उसे अपने भावबोध के अनुरूप निखारा भी। वह राजनीति को कविता से दूर रखते थे। मन में अतृप्त उत्कुंठाएँ अधिक थी।

अज्ञेय द्वारा संपादित और 1943 ई. में प्रकाशित 'तार सप्तक' संभवत: हिंदी का पहला ऐसा कविता संकलन है, जिसका ऐतिहासिक महत्व है। इसका इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि इसके प्रकाशन की स्वर्णजयंती मनाई गई थी 1993 ई. में। लेकिन 'तार सप्तक' के प्रकाशन को लेकर हिंदी संसार में घनघोर विवाद भी उठा। कहते हैं कि 'तार सप्तक' की मूल योजना मध्यप्रांत (अब मध्यप्रदेश) के कुछ कवियों—मुक्तिबोध, नेमिचंद्र जैन, प्रभाकर माचवे, प्रभाग चंद्र शर्मा, वीरेन्द्र कुमार जैन आदि की थी, जो 'नर्मदा की सुबह' नाम से एक कविता संकलन निकालना चाहते थे। लेकिन समस्या थी कि संकलन निकले कैसे? ऐसी स्थिति में इस प्रस्तावित योजना के लिए कुछ कवि दिल्ली में 'अखिल भारतीय सम्मेलन' में अज्ञेय से मिले और 'नर्मदा की सुबह' निकालने की जगह 'तार सप्तक' की योजना बनी और अज्ञेय को इसके संपादन का भार दिया गया। इस विवाद के बारे में कांतिकुमार जैन ने 'आलोचना' में प्रकाशित अपने लेख 'मुक्तिबोध मंडल के कवि' में विस्तार से लिखा है। एक बात नेमिचंद्र जैन ने बार-बार स्पष्ट की है कि यह कहना ग़लत है कि अज्ञेय ने मूल योजना को 'हाईजैक' कर लिया। अज्ञेय इस योजना को अखिल भारतीय रूप देना चाहते थे इसलिए उन्होंने मध्यप्रदेश के कवि प्रभाग चंद्र शर्मा, वीरेन्द्र कुमार जैन की जगह रामविलास शर्मा और भारत भूषण अग्रवाल को 'तार सप्तक' में शामिल किया। संकलन का नाम 'तार सप्तक' प्रभाकर माचवे का दिया हुआ है। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' के प्रथम संस्करण की भूमिका में स्पष्ट किया है कि 'तार सप्तक' सहयोगी प्रयास था और सातों युवा कवि 'राहों के अन्वेषी' थे। अज्ञेय ने इसके प्रकाशन के इतिहास के अंतरंग का ही नहीं, बहिरंग का भी खुलासा किया। बहरहाल, इस विवाद पर अंतिम फैसला नेमिचंद्र जैन ने यह कहकर दिया कि —'तार सप्तक' के संपादक का चुनाव कवियों ने किया था और 'दूसरा सप्तक' (1951) और 'तीसरा सप्तक' (1959) के कवियों का चुनाव संपादक ने किया था।

20 वर्षों बाद 1963 में जब 'तार सप्तक' का दूसरा संस्करण भारतीय ज्ञानपीठ से निकला तो 'परिदृष्टि : प्रतिदृष्टि' शीर्षक भूमिका में अज्ञेय ने लिखा'—वयमेव याता: के अनिवार्य नियम के अधीन 'सप्तक' के सहयोगी, जो 1943 के प्रयोगी थे, सन् 1963 के संदर्भ हो गए हैं। 'इस बीच भारत स्वतंत्र हुआ और कविता की शक्ल-सूरत बदल गई—प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, नई कविता और अकविता ने कवियों के भावबोध में ही परिवर्तन नहीं किया, कविता लिखने की उनकी शैली, टेकनीक, भाषा, शिल्प और सबसे बढ़कर यथार्थ को समझने की उनकी अवधारणा भी बदल दी। इस दौरान संकलित कवियों के कविता-संग्रह ही नहीं निकले, कई कवियों ने कम्युनिज़्म से भी किनारा कर लिया। मेरे कहने का मतलब यह है कि कविता में बहुत तेजी से भाव-बोध और भाषा में परिवर्तन हुआ।

गिरिजा कुमार माथुर का पहला संग्रह 'मंजीर' 1941 में निकला था और उनकी पहली कविता माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा संपादित 'कर्मवीर' में 'मैं निज सोने के पर पसार' शीर्षक से 1936 में निकली थी। निराला ने 'मंजीर' की भूमिका लिखी थी। निराला लिखते हैं—श्री गिरिजा कुमार माथुर निकलते ही हिंदी की निगाह खींच लेने वाले तारे हैं। काव्य के आकाश से उनका बहुत ही मधुर और रंगीन प्रकाश हिंदी के धरातल पर उतरा है। बोल वाले तार की तरह मजबूत, स्वर से मिले हुए, अपने पहले ही झंकार से उन्होंने लोगों का दिल ले लिया है।' डॉ. रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में लिखा है 'गिरिजा कुमार माथुर ने छंद रचना, शब्द चयन और ऐन्द्रिय मूर्ति विधान की कला निराला से सीखी और उसे अपने भावबोध के अनुरूप निखारा भी। वह राजनीति को कविता से दूर रखते थे। मन में अतृप्त उत्कुंठाएँ अधिक थी। फिर भी अपनी कविता में इस्पात, मोम और पत्थर की खपत से वह सिद्ध कर रहे थे कि 'बड़ा काजल आंजा है आज' की दुनिया छोड़कर यथार्थवाद की दिशा में बढ़ रहे हैं।'

और कवियों की तरह गिरिजा कुमार माथुर ने भी नव स्वच्छंद कविता के प्रभाव में ही काव्य-रचना शुरू की थी, जिसका प्रमाण उनकी पहली कविता पुस्तक 'मंजीर' है, जो कि प्रगीतों का संग्रह है। लेकिन उन प्रगीतों की दिशा अग्रगामी थी। उसी के कारण वे 'तार सप्तक' में एक कवि के रूप में संकलित हुए। लेकिन अपनी एक कविता में उन्होंने स्वच्छंद कवियों से बिल्कुल पृथक अपनी आकांक्षा प्रकट की है—

'मेरे सपने बहुत नहीं हैं
छोटी सी अपनी दुनिया हो,
दो उजले-उजले से कमरे
जागने को सोने को,
मोती सी हों चुनी किताबें।'

चूँकि गिरिजा कुमार माथुर संघर्ष करने वालों में से थे और विपरीत परिस्थितियों में भी हार मानने वाले नहीं थे इसलिए कहते हैं—

'रूठ गए वरदान सभी फिर भी मैं मीठे गान लिए हूँ
टूट गया मंदिर तो क्या पूजन के तो अरमान लिए हूँ।'

संभवत: उनको कहीं यह विश्वास था कि—

'हम होंगे कामयाब एक दिन
मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास।'

'तार सप्तक' में संकलित उनकी जिन कविताओं ने पाठकों का ध्यान सबसे ज्यादा आकर्षित किया था वे उनकी ऐन्द्रिय प्रेम से युक्त कविताएँ थीं, जैसे 'चूड़ी का टुकड़ा' और 'आज हैं केसर रंग रंगे वन'। इन दोनों कविताओं के क्रमश: दो अंश उद्धृत हैं—

1 'आज अचानक सूनी सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था,
किसी काम में जी बहलाने,
एक सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूड़ी का
छोटा सा टुकड़ा
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहिने थीं
रंग भरी उस मिलन रात में।'

2 'आज हैं केसर रंग रंगे वन
रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली सी,
केसर के वसनों में छिपा तन
सोने की छाँह सा,
बोलती आँखों में,

पहिले वंसत के फूल का रंग है
गोरे कपोलों पे होले से आ जाती,
पहिले ही पहिले के,
रंगीन चुंबन की सी ललाई।'

गिरिजा कुमार माथुर मूलतः प्रकृति और ऐन्द्रिक संवेदना के कवि हैं। चाँदनी उन्हें विशेष प्रिय थी, उनकी तीन कविताएँ—'चाँदनी गरवा', 'चंदरिमा' और 'शरद नीहारिका का देह स्वप्न' चाँदनी से ही संबंधित है। 'चंदरिमा' शीर्षक कविता का यह अंश देखें—

'यह झकाझक रात
चाँदनी उजली कि सूई में पिरा लो ताग
चाँदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग।'

कहना न होगा कि बिना ऐन्द्रिक संवेदना के प्रकृति चित्रण संभव नहीं है, क्योंकि प्रकृति मूर्त होती है, अमूर्त नहीं।

'क्वार की सूनी दुपहरी' और 'मशीन का पुर्जा' माथुर जी की ऐसी कविताएँ है, जिसमें उन्होंने प्रयोगवादी और नई कविता के कवियों की तरह आधुनिक मनुष्य की नियति को अपनी कविता का विषय बनाया है। 1955 में उनका चौथा संग्रह 'धूप के धान' निकला था जिसकी कई कविताएँ दिलचस्प हैं जैसे 'प्रौढ़ रोमांस' में वह कहते हैं—

'हमको भी है ज्ञान विरह का
और मिलन का
यह मत समझो बरफ बन गया हृदय हमारा।'

इसी तरह इसी संग्रह की कविता—'रात हेमंत की' की पंक्तियाँ देखिए—

'कामिनी-सी अब लिपट कर सो गई है
रात यह हेमंत की।'

प्रकृति चित्रण के साथ-साथ उन्होंने ज़िंदग़ी द्वारा रौंदे हुए आधुनिक मनुष्य का चित्रण भी किया है। माथुर जी आस्था और विश्वास के कवि थे, जिसका प्रमाण हैं ये पंक्तियाँ—

'मन के विश्वास का यह सोनचक्र रुके नहीं
जीवन की पियरी केसर कभी चुके नहीं।'

कवि के रूप में माथुर जी का दृष्टिकोण भी व्यापक था। भारत ही नहीं, संपूर्ण एशिया पर उनकी नजर थी, तभी वे 'एशिया का जागरण' जैसी कविता लिख सके। 15 अगस्त 1947 को, जब भारत को आज़ादी मिली, उन्होंने अपनी कालजयी कविता 'पन्द्रह अगस्त' लिखी। उसकी कुछ पंक्तियाँ—

'आज जीत की रात
पहरुए, सावधान रहना
खुले देश के द्वार
अचल दीपक समान रहना।
उँची हुई मशाल हमारी
आगे कठिन डगर है
शत्रु हट गया, लेकिन
उसकी छायाओं का डर है।'

उन्होंने दो खंडकाव्य भी लिखे हैं—'कल्पांतर' और 'पृथ्वी कल्प'। गिरिजा कुमार माथुर की कवि पत्नी और दूसरा सप्तक की कवयित्री शकुंत माथुर ने बिल्कुल ठीक लिखा है—'यदि किसी आधुनिक कवि के बारे में यह कहा जाए कि उसकी रचनाओं में एक ही साथ अनेक दिशाएँ समाहित हो गई हैं उनमें श्रेष्ठ गीतात्मकता है और महाकाव्योचित गुण भी, रंग रोमान भी और प्रगतिशील उर्जा भी, प्रयोगधर्मी ताजगी, अंतर्मुखी संवेदना, उग्र सामाजिक चेतना के साथ वैज्ञानिक युग की आधुनिकता, तो हिंदी कविता में लगभग एक ही नाम सामने आएगा—गिरिजा कुमार माथुर।'

कहना न होगा कि माथुर जी हमारे समय के एक सच्चे कवि थे लेकिन उनकी प्रतिभा रोमानी कवि के रूप में ही ज़्यादा मानी जाती रही है किंतु इतिहास दृष्टि, सामाजिकता एवं वैज्ञानिकता भी उनकी कविता की उतनी ही बड़ी सच्चाई है, जितनी प्रेम, रोमान, शृंगार और सौंदर्य की अछूती अभिव्यक्ति। संभवतः उन्होंने मनुष्य और प्रकृति से एक साथ प्रेम किया। उनकी पुण्य स्मृति को मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि।

❖

बी-2/टी, दिल्ली पुलिस अपार्टमेंट्स
मयूर विहार फेज 1, दिल्ली-110091
मोबाइल : 9891349058
ई-मेल : agrawalsadhna2000@gmail.com

हिंदी की वैश्विकता और भारतीय संस्कृति

— डॉ. के. श्रीलता विष्णु

हिंदी की विश्व व्यापकता का दो स्तरों पर रेखांकन किया जा सकता है—एक ऐतिहासिक संदर्भ दूसरा भौगोलिक संदर्भ। हिंदी का ऐतिहासिक विस्तार लगभग तेरह चौदह सौ वर्षों की सुदीर्घ कालावधि में प्रसारित है। हिंदी के लिखित साहित्य का प्रारंभिक दर्शन सरहपाद या सरहपा की रचनाओं के रूप में सातवीं शताब्दी में मिलता है। हिंदी शताब्दियों से जन मानस की भाषा रही अतः हर युग में इस भाषा में रचनाएँ होती रहीं। मुसलमान संतों और सूफ़ियों ने भी कृष्ण और राम की उपासना ब्रज और अवधी के माध्यम से की। वैसे ही निर्गुण संतों और वैष्णव भक्तों ने भी हिंदी की राष्ट्रव्याप्ति में अपना योगदान दिया। साहित्य और संगीत की दृष्टि से हिंदी अपना स्वत्व कायम कर सकी। पृथ्वीराजरासो, आल्हाखंड, रामचरितमानस, सूरसागर, कबीर के पद, पद्मावत, बिहारी सतसई आदि रचनाएँ सांस्कृतिक धरोहर बनीं।

एक जनता के आधारभूत विश्वासों, आदर्शों जीवन-मूल्यों एवं सौन्दर्य संबंधी मान्यताओं की समष्टि को ही हम 'संस्कृति' नाम से अभिहित करते हैं जो उस जनता के रहन-सहन, आचार-विचार, वेश-भूषा इत्यादि सभी में प्रतिबिंबित होती है। नाना प्राकृतिक, भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों के साथ महापुरुषों से सहस्रों वर्षों से प्रवाहमान विचारों से रूपायित होने वाली यह संस्कृति समय-समय पर विविध बाह्य प्रभावों के कारण नवीन-तत्वों को भी आत्मसात करती हुई धीरे-धीरे परिवर्तित या परिवर्द्धित होती रहती है। तभी उसे जीवंत और विकासशील कहते हैं।

भारत की संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है। समझा यह जाता है कि इस संस्कृति की रचना भारत के मूल निवासियों तथा समय-समय पर यहाँ आकर बसी नीग्रो, औष्ट्रिक, आभीर, मंगोल, यहूदी, द्राविड, आर्य इत्यादि अनेकानेक जनजातियों से हुई है। अतः इसका रूप सामासिक रहा है। ईसा सन् के आरंभ से पहले ही उसका स्वरूप काफी व्यक्त, गहरा और परिनिष्ठित हो चुका था। बाद में आए ईरान, अरब जैसे एशियाई राज्यों तथा यूरोप के यूनान, रोम, पुर्तगाल, हॉलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड जैसे विविध राज्यों की संस्कृतियों से भारत की संस्कृति भी प्रभावित होकर धीरे-धीरे परिवर्द्धित हुई है।

"इदमंथं तम-स्नं जायेत भुवनत्रयम
यदि शब्दाह्वयम ज्योतिः आसंसारम न दीप्यते।"

काव्यादर्शकार महाकवि दंडी का यह निरीक्षण हिंदी भाषा के लिए भी संपूर्णतः सही है। हिंदी भाषा भरत की सांस्कृतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं मूल्याधिष्ठित उपलब्धियों की सबल संवाहिका है। भारतीय अस्मिता की पहचान हिंदी, संस्कृति और समाज को एक सूत्र में गूँथने वाला प्राण तत्व है। किसी भी देश की संस्कृति, उत्कर्ष-अपकर्ष का जीवंत विश्लेषण एवं मूल्यांकन उसके वाङमय में युग-युगों से संग्रहित है। हिंदी एक वट-वृक्ष है, इसमें बहुत-सी भाषाओं के शब्द इतने घुल-मिल गए हैं कि अब वे हिंदी से कोई निसंवाद नहीं हैं। संस्कृत, पाली, प्राकृत अपभ्रंशों से रूपायित हिंदी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, ब्रज, अवधी आदि बोलियों के साथ एकात्म स्थापित करके आगे बढ़ी। भारत के विस्तृत व्योम में हिंदी भाषा का शब्द-ज्ञान चौतरफ़ा आलोकित है।

हिंदी की विश्व व्यापकता का दो स्तरों पर रेखांकन किया जा सकता है—एक ऐतिहासिक संदर्भ दूसरा भौगोलिक संदर्भ। हिंदी का ऐतिहासिक विस्तार लगभग तेरह चौदह सौ वर्षों की सुदीर्घ कालावाधि में प्रसारित है। हिंदी के लिखित साहित्य का प्रारंभिक दर्शन सरहपाद या सरहपा की रचनाओं के रूप में सातवीं शताब्दी में मिलता है। हिंदी शताब्दियों से जन मानस की भाषा रही अत: हर युग में इस भाषा में रचनाएँ होती रहीं। मुसलमान संतों और सूफियों ने भी कृष्ण और राम की उपासना ब्रज और अवधी के माध्यम से की। वैसे ही निर्गुण संतों और वैष्णव भक्तों ने भी हिंदी की राष्ट्रव्याप्ति में अपना योगदान दिया। साहित्य और संगीत की दृष्टि से हिंदी अपना स्वत्व कायम कर सकी। पृथ्वीराजरासो, आल्हाखंड, रामचरितमानस, सूरसागर, कबीर के पद, पद्मावत, बिहारी सतसई आदि रचनाएँ सांस्कृतिक धरोहर बनीं। हिंदी भावों को इस तरह प्रकट करती है कि वह मानुष-मानस को अंतर तक आंदोलित करती है और हृदय आह्लादित हो जाता है। यही इसकी जीवंत चेतना का रास है।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद, बुद्धदेव, तुलसीदास प्रवृतियों की उदात्त समन्वयात्मकता, जैनों का अहिंसा-चिंतन, एकात्म दर्शन, भगवद् गीतासार, नाथों का योग-दर्शन, कबीर की धर्ममैत्री आदि हिंदी भाषा के माध्यम से पूरे विश्व में व्याप्त है। पूरा विश्व जून 21 को अन्तर्राष्ट्रीय योग-दिवस भी मना रहा है। राष्ट्रों के अवांतर हो रहे विभिन्न संघर्षों को कम करने के वास्ते भी भारतीय संस्कृति ने विश्व को अकूत शक्ति दे दी है।

साहित्येतिहास के आदिकाल से लेकर अब तक हिंदी की जैत्रयात्रा रही है। महाराष्ट्र के संत ज्ञानेश्वर, नामदेव तथा दक्षिण भारत में केरल के राजा स्वातितिरुनाल ने भी हिंदी में पद रचना की। केरल के प्रथम हिंदी गीतकार स्वातितिरुनाल के विनय के पद हमें सूर तथा तुलसी की याद दिलाते हैं।

सुमरन कर जदुनाथ हरी के
वास कियो जिन धर्म दरीके।
सुमरन जिनके
एक क्षण में केते पतित सुधारे प्यारे।
पीपा तारे सुदामा तारे बेश्या तारे अजामिल तारे।

युगचारण 'दिनकर' ने इसी महान भाषा में 'संस्कृति के चार अध्यायों' को प्रस्तुत किया। इसी हिंदी ने 'प्रियप्रवास', 'भारत भारती', 'कामायनी' जैसे सांस्कृतिक महाकाव्यों का सृजन किया। वर्तमान गण्यमान्य कई रचनाओं से हिंदी की रौनक बढ़ी।

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष का एक अमूल्य योगदान यह रहा है कि इससे संपूर्ण देश में राष्ट्रीयता का जोश और एकता की भावना प्रबल हुई। विभिन्न धर्म को मानने वाले एवं विभिन्न भाषा-भाषियों ने हिंदी के माध्यम से एक साझे सपने को साकार करने के लिए मिलकर अपनी मजबूती का एहसास कराया। ऐसा मजबूत देश बनाने में हमारी हिंदी का बहुत बड़ा हाथ है। अहिंदी भाषी होने पर भी केशवचंद्र सेन, गोविन्द रानाडे, लोकमान्य तिलक और महात्मा गाँधी हिंदी की सक्षमता एवं सशक्तता को देखकर हिंदी को बढ़ावा देते रहे। गाँधीजी इस बात से वाक़िफ़ थे कि हिंदी भाषा ही जन-संस्कृति को एकता के सूत्र में पिरो सकती है। बहरहाल उन्होंने सन् 1919 ई. में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की। उन दिनों पूरब से पश्चिम तक उत्तर से दक्षिण तक एक ही भाषा सुनी जा सकती थी। कहना न होगा कि यही हिंदी के मानक रूप का महत्व है। अपनी मिट्टी की आर्द्रता को महसूस करने वाली रचनाएँ हिंदी की शान है। हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास फ्रांस के प्रख्यात विद्वान गार्सी द तासी ने लिखा है—इससे ज़्यादा क्या प्रमाण दे सकता है कि हिंदी पहले ही विश्व भाषा है।

हिंदी के विस्तार को भौगोलिक संदर्भ में भी आंका जाना चाहिए। संसार की भाषाओं में हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो अपने देश के साथ ही साथ अंतर्राष्ट्रीय देशों में भी बोली और लिखी जाती रही है। भूमंडलीकरण के इस दौर में यह निर्विवाद है कि हिंदी ही वह कड़ी है जो विश्व संस्कृति एवं भारतीय संस्कृति के बीच के समन्वय को मजबूत बनाती है। हिंदी अपने अंदर ही एक अंतर्राष्ट्रीय विश्व जगत को छुपाए हुए हैं। हिंदी में आर्य, द्राविड़, पुर्तगाली, अरबी, फारसी, तुर्की, चीनी, जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेज़ी आदि संसार के सभी भाषाओं के शब्द विश्व-मैत्री एवं विश्व-बंधुत्वपूर्ण भारत की प्रकृति को उजागर करते हैं।

आजकल हिंदी, साहित्य के साथ-साथ प्रशासन, बाज़ार, सिनेमा, संचार, अनुवाद आदि विविध क्षेत्रों में उत्तरोत्तर समृद्ध हो रही है। विश्व भर के लोग हिंदी फ़िल्मी संसार के तहत भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पहचान रहे हैं और प्रभावित हो रहे हैं। हिंदी फ़िल्म एक भाषिक एवं

सांस्कृतिक आदान-प्रदान का सेतु बन गई है जिससे भी भारतीय संस्कृति की धारा निर्बाध बह रही है।

साहित्य द्वारा समाज एवं संस्कृति की पहचान होती है। इस अर्थ में प्रवासी साहित्य ने भी भारतीय प्रवासी जीवन को परखने की पहल की है। इसने भारतीय समाज एवं संस्कृति को अकूत शक्ति भी दी है। यूरोप का कोई ऐसा देश नहीं जहाँ हिंदी भाषी लोग बहुत संख्या में न बसे हों। उन देशों में न्यूनाधिक रूप में हिंदी के पठन-पाठन की व्यवस्था है। विश्व हिंदी सम्मेलनों की अगणित भागीदारी इसका प्रमाण दे रहा है। विश्व के अनेक महान विश्वविद्यालयों में हिंदी शिक्षा और उसके बतौर भारतीय संस्कृति को भी देखा-परखा और व्याख्यायित किया जा रहा हैं जिनमें मॉरीशस, जर्मनी, अमेरिका, फ़िजी, हॉलैण्ड, ब्रिटेन, फ्रांस, उजबेकिस्तान, थाइलैंड, कानाडा, चीन, क्रोएशिया, जापान, रूस, पोलैंड, बल्गारिया, रोमानिया आदि प्रमुख हैं। स्वाधीन भारत की राजभाषा और आम जनता की संपर्क भाषा होने से हिंदी का वैश्विक परिप्रेक्ष्य अत्यंत विस्तृत बन गया है।

उत्तर आधुनिकता के इस युग में ग्लोबल संस्कृति, ग्लोबल साहित्य, ग्लोबल मेन आदि शब्द जालों के दरमियान हिंदी ने भी प्रमुख पाश्चात्य सिद्धान्तों को अपनी ओर से व्याख्यायित करके कई विमर्शों को रूपायित किया है। स्त्री, दलित, आदिवासी, उभय लिंगी एवं पारिस्थितिक समीक्षा के कई क्षेत्रों ने हिंदी साहित्य को समृद्ध एवं वैश्विक बना दिया है।

पिछले लगभग पच्चीस वर्षों से जैसे जैसे पूरा विश्व एक गाँव बना है और तकनीकी ने नया वातायन हमारे सामने खोल दिया है, हिंदी भाषा भी कहीं अधिक विस्तार पा चुकी है। इक्कीसवीं शती में हिंदी विश्व-बाजार में अपनी समस्त क्षमता एवं भव्यता के साथ प्रवेश कर चुकी है। हिंदी का रूप-स्वरूप भी बदला है और हिंदी ने विश्व बाजार को भी अपने हिसाब से प्रभावित किया है। बोलने वालों की संख्या की दृष्टि से भी हिंदी भाषा अग्रणी है। एक अहम बात यह है कि यद्यपि सूचना प्रौद्योगिकी का विकास भले ही विदेशों में हुआ हो फिर भी भारत के योगदान के बिना यह अस्तित्व में नहीं आ सकता था। यह तो सर्वविदित है कि कंप्यूटर की अपनी कोई भाषा नहीं, वह तो मात्र दो अंकों की भाषा या अपनी स्वतंत्र गणितीय भाषा जानता है—एक तथा शून्य। कहना न होगा कि शून्य का अंक विश्व को भारत की ही देन है। विश्व की अन्य भाषाओं की तुलना में भारतीय भाषाविज्ञान रैखिक दृष्टि से अधिक सुनियोजित है और लिपि वैज्ञानिक है। भारतीयों से पहले ही विदेशी वैज्ञानिकों ने, तकनीकी वेत्ताओं ने इसकी घोषणा की थी। अमरीकी वैज्ञानिक श्री रिक ब्रिग्ज का यह मंतव्य है कि—"संस्कृत भाषा कंप्यूटर प्रोग्रामिंग की दृष्टि से आदर्श भाषा है। देवनागरी लिपि में कंप्यूटर पर कार्य करना आसान भी है। गूगल के प्रमुख अधिकारी एरिक श्मिट ने यह दावा किया था कि आगे के पाँच से दस साल के अंदर भारत विश्व का सबसे बड़ा इंटरनेट बाज़ार बन जाएगा। उनका विचार यह भी रहा कि विश्व की तीन भाषाओं—हिंदी, मंदारिन और अंग्रेज़ी का इंटरनेट पर दबदबा होगा। यह भी गौर करने की बात है कि इस स्वप्न को साकार करने के लिए भारत को भी अथक प्रयत्न करना होगा। आज भारत ई-गवर्नेंस के रास्ते पर चलकर 'डिजिटल इंडिया' के माध्यम से तमाम सूचनाओं एवं सुविधाओं को ऑनलाइन करने की दिशा पकड़कर तेजी से आगे बढ़ रहा है। मसलन हिंदी का बहुमुखी और बहुआयामी अस्तित्व एवं वर्चस्व विपुल परिमाण में परिव्याप्त है। राष्ट्र, राज्य और क्षेत्रों की सीमाओं को पार करते हुए विश्व समुदाय के साथ सांस्कृतिक, आर्थिक, बौद्धिक, वैज्ञानिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में सहभागिता व आदान प्रदान की भूमिका हिंदी बख़ूबी निभा रही है।

आज जीवन-शैली में तेजी से बदलाव आ रहा है। बहुत से मूल्यों के रूप बदल रहे हैं। ऐसे संक्रमण के दौर में हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत, भाषा और साहित्य के प्रति सजग रहना है। सारी उलझनों और आक्रोशों के उग्र रूपों को केवल भाषिक एवं सांस्कृतिक उदारता ही शांत कर सकती है। हमारी राजभाषा हिंदी देश के साथ विश्व संस्कृति को भी कायम रखकर विश्व शांति को भी सकारात्मक ढंग से जोड़ने का संकल्प लेकर आगे बढ़ रही है और बढ़ती रहेगी। इस पहल में हमें कृतसंकल्प होना है क्योंकि हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है। श्री नरेन्द्र मोदी जी के स्वर में स्वर मिलाकर कहें तो संकल्प से सिद्धि होती है। अत: हम आशा करें कि यह चरितार्थ होगा।

❖

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
श्रीशंकराचार्य संस्कृत विश्वविद्यालय, कालटी
पन्मना कॉपस कोल्लम-691583, केरल
मोबाइल : 09497273927
ई-मेल : sreelathavishnu@yahoo.com

मॉरीशस के प्रवासी जीवन में लोक साहित्य की भूमिका

— प्रियंका कुमारी

मॉरीशस का समाज अफ्रीका, एशिया तथा यूरोप इन तीन महाद्वीपों के मानव समूहों का मिश्रित समूह है। सर्वप्रथम यहाँ डचों और फ्रांसीसियों ने अपनी बस्तियाँ बसाईं और उनके शासन काल में उनकी संख्या समय-समय पर घटती बढ़ती रही। इन्हीं यूरोपीय गोरों ने अफ्रीका के काले रंग वाले हब्शियों को दास के रूप में मॉरीशस में आयात करके उन्हें उत्पादन के साधन के रूप में प्रयुक्त किया। दासों में पुरुष, स्त्री, बालक सभी सम्मिलित थे। कृषि तथा अन्य उत्पादन कार्यों में इन्हीं का उपयोग होता था। अतः अनिवार्यतः इन दासों को विवाह करने तथा परिवार बनाने की सुविधा दी गई। धीरे-धीरे इन हब्शियों की संख्या बढ़ती गई और दास प्रथा की समाप्ति के बाद ये लोग मॉरीशस के स्वतंत्र निवासी हो गए।

विश्व के प्रायः सभी देशों में यूरोपीय सभ्यता एवं संस्कृति तथा भाषा के प्रति झुकाव बढ़ रहा है। भारत भी इससे अछूता नहीं है। परन्तु भारत से गए गिरमिटिया मज़दूर मॉरीशस आदि द्वीपों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को न केवल धरोहर के रूप में सुरक्षित एवं संरक्षित करने के लिए प्रयासरत हैं, बल्कि अपनी समूची जीवन प्रणाली में उसे अपनाए हुए हैं। हालाँकि मॉरीशस एक बहुसांस्कृतिक एवं बहुभाषिक देश रहा है। अतः उस पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मॉरीशस वासियों के जीवन के विविधधर्मी होने में उनके लोकजीवन के बहुरंगी होने की भूमिका महत्वपूर्ण है। जिस श्रमधर्मी वर्ग का अंग्रेज़ों द्वारा शोषण होता रहा और जिसके श्रम का सिर्फ़ दोहन किया जाता रहा, उसने अपने श्रम से लोक के रंगों को सींचा है। उनमें जीवन के तमाम रंग इन मेहनत करने वालों ने भरे हैं। वास्तव में जो भी लिखित साहित्य है, उसमें से ज़्यादातर में शासकों की बात तो है लेकिन इन प्रवासी गिरमिटिया मज़दूरों की वास्तविक स्थिति का चित्रण नहीं मिलता है।

यह लोक साहित्य ही है जो उनके कठिन दिनों में उनके जीवन का सहारा बना। इससे मनोरंजन और संबल पाकर उन्होंने जीवन को दिशा दी। मॉरीशस गए गिरमिटिया मज़दूर पढ़े-लिखे नहीं थे। ज्यादातर श्रमिक वर्ग के लोग थे। अधिकांशतः भोजपुरिया मज़दूर थे। वे मौखिक रूप से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करते थे। यही मौखिक अभिव्यक्ति लोक साहित्य है। मॉरीशस के गिरमिटिया मज़दूर लोक साहित्य को इसलिए अपनाए हुए हैं क्योंकि उसमें उनकी संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है। लोक साहित्य भी उसी संस्कृति का अंग है। जो कि शिष्ट साहित्य में नहीं होता है। यही कारण है कि लोक साहित्य मॉरीशसीय जनजीवन के भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। वहाँ के लोग जब जिस भावना को स्वीकारते हैं उसे लोक साहित्य के ज्यादा करीब मानते हैं। कृष्णदेव उपाध्याय का कहना है-"किसी भी देश का लोक साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उद्गार है। वह उनकी हार्दिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उसके लोक साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा।"[1] मॉरीशस का जनजीवन वहाँ के लोक साहित्य द्वारा संचालित होता है। जीवन के प्रायः सभी पहलुओं में उसकी महती भूमिका है।

समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई परिवार है। मॉरीशस में आदर्श परिवार का आधार संयुक्त परिवार है। जिसकी जड़ें रामचरितमानस में निहित है। यहाँ माँ-बाप, भाई-बहन, पति-पत्नी तथा उनके बच्चे, चाचा-चाची सब मिलकर एक साथ रहते हैं। पूरे परिवार में परस्पर प्रेम और आदर का भाव देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार का वर्णन यहाँ के लोक गीतों में हुआ है। छोटी उम्र के दूल्हे के तिलक वर्णन में इसको देखा जा सकता है

"लाल माटी से बिप्र आवेलन अहो बिप्र आवेलन हो,
दादा दुअरिया बिप्र ठाड़ भइले हाथे तिलक लेले हो।...
लाल माटी से बिप्र आवेलन अहो बिप्र आवेलन हो,
चाचा दुअरिया बिप्र ठाड़ भइले हाथे तिलक लेले हो।
लाल माटी से बिप्र आवेलन अहो बिप्र आवेलन हो,
भइया दुअरिया बिप्र ठाड़ भइले हाथे तिलक लेले हो।"[2]

यहाँ लालमाटी एक गाँव है जो पूर्वी मॉरीशस में स्थित है। लड़के के तिलक के लिए लोग उसके दादा, चाचा तथा भइया के पास आते हैं ताकि उसकी तिलक की बात की जा सके।

पारिवारिक ढांचे के अंतर्गत आरम्भ में भारतीय परिवेश का प्रभाव देखा जा सकता है। लेकिन बाद में इसमें परिवर्तन आया। जिस तरह से भारत के भीतर आज भी लड़कियों को पराया माना जाता है। वैसी ही स्थिति मॉरीशस में भी है। अपने मॉरीशस यात्रा के दौरान एक बुज़ुर्ग से मुझे इससे सम्बंधित लोक गीत सुनने को मिला। जिसमें इसका विरोध दिखता है। यह लोक और उसके साहित्य में ही संभव है -

"बचपन बितयनी बाबा तोहरी अंगनवा में हो...2
सोची-सोची आहो बाबा भरी गइल नयनवा नू हो
जनम तु दे ले अम्मा करम नाहीं दिहलू नू हो
करम के लिखल बा आहो अम्मा...बेटी हम पराया भइनी हो..
आजू मोरे हरदी के रतिया...हरदी चढ़ाई दिह हो... ।"[3]

यहाँ की प्रकृति भी लोक संस्कृति की गवाही देती है। मॉरीशस के वनों में पाए जाने वाले कीमती वृक्ष के कारण यहाँ दुनिया भर से लोग आए। आबूनस की लकड़ी बहुत कीमती होती है। डचों ने इसका निर्यात यूरोप में किया था। इसीलिए हमारी लोककथाओं में यह बताया गया है कि किस प्रकार एक राजा ने अपने तालाब को जलप्लावित करने के लिए आबूनस, ब्वान्वार और बादाम के समस्त पेड़ों को काटने का हुक्म दिया था। इस दृष्टि से 'अनोखा तालाब' एक महत्वपूर्ण लोककथा है। लोक साहित्य में प्रकृति और मनुष्य के बीच के भेद को मिटाकर तालमेल के साथ जीवन जीने पर बल है। इस सन्दर्भ में श्यामसुन्दर दुबे का कहना है—"तमाम लोक साहित्य में इसी लोक जन के मन की अभिव्यक्ति हुई है, निश्चित ही लोक साहित्य मानवीय मूल्यों का परिपोषक और परिबोधक रहा है। लोक साहित्य मनुष्य और प्रकृति की अभेदकता में अपनी कल्पना दृष्टि विकसित करता रहा है। लोक कथाओं में बहु का चिड़िया बन जाना, राजकुमारों का कमल पुष्प के रूप में अवतरित होना, पुत्रों का बाँस का पेड़ बनकर अपनी सुरीली आवाज में अपने साथ किए गए आघात का दर्द भरा वर्णन करना, चूहा, श्रृंगाल, लोमड़ी, शेर आदि का मानवीय स्तर पर मनुष्य के लीला लोक में प्रवेश करना इसी अभेद दृष्टि का परिणाम है।"[4]

बदलते समय के साथ काफी हद तक यहाँ लोगों की जीवन शैली में बदलाव आया है। समाज में फैली तमाम तरह की बुराईयाँ और उससे उत्पन्न विषम परिस्थितियों का वर्णन भी लोक साहित्य में देखने को मिलता है। परिवार के बीच लोगों का मनमुटाव बढ़ा है। व्यक्ति के दुश्चरित्र से उत्पन्न परेशानियों, धोखेबाज संतों और अयोग्य नरेशों के कारण प्रजा का दुखी होना भोजपुरी लोक कथाओं में दिखाया गया है। 'खरगोश और घोंघा' में दास-विक्रय प्रथा का, 'धोखेबाज दोस्त' में वचन भंग का, 'सास और बहु' में सास-बहु के बीच कटु संबंधों का और 'दुलारी बहन' में ननद और भावजों के बीच अस्वस्थ व्यवहार का उल्लेख हुआ है। आज की पीढ़ी में तमाम तरह की बुराइयाँ आ गई है। लोक गीत इस पर आलोचनात्मक रुख अपनाता है—

"हमरो ससुरार के बात नाहीं पूछे...
हमर ससुरार लाजवाब आहो सखिया
ससूरा तोहार रोज दारू पियत है
अरे रही-रही सासू के खूब पिटत है
गाँव शहर में चर्चा चलत है
आरे ससूरा हमार लाजवाब आहो सखिया।"[5]

मॉरीशस का समाज अफ्रीका, एशिया तथा यूरोप इन तीन महाद्वीपों के मानव समूहों का मिश्रित समूह है। सर्वप्रथम यहाँ डचों और फ्रांसीसियों ने अपनी बस्तियाँ बसाईं और उनके शासन काल में उनकी संख्या समय-समय पर घटती बढ़ती रही। इन्हीं यूरोपीय गोरों ने अफ्रीका के काले रंग वाले हब्शियों को दास के रूप में मॉरीशस में आयात करके उन्हें उत्पादन के साधन के रूप में प्रयुक्त किया। दासों में पुरुष, स्त्री, बालक सभी सम्मिलित थे। कृषि तथा अन्य उत्पादन कार्यों में इन्हीं का उपयोग होता था। अत: अनिवार्यत: इन दासों को विवाह करने तथा परिवार बनाने की सुविधा दी गई। धीरे-धीरे इन हब्शियों की संख्या बढ़ती गई और दास प्रथा की समाप्ति के बाद ये लोग मॉरीशस के स्वतंत्र निवासी हो गए। कालांतर में यूरोपीय गोरों ने भी इन हब्शी क्रियोली स्त्रियों से संतानोत्पति की और उत्पन्न संतान रक्त मिश्रण के कारण रंग और आकृति में दोनों के शारीरिक बनावट के मिश्रण से युक्त थी। बाद में भारतीय और चीनी भी यहाँ आए। और उन्होंने अपनी एक अलग प्रजाति विकसित की। इस प्रकार इस देश की जनसंख्या यूरोपीय गोरों, काले वर्ण वाले क्रियोलों, पीताभ चीनियों और गोधूम तथा श्याम वर्ण वाले भारतीयों से निर्मित है। इस देश में सभी गुलदस्ते की तरह शोभायमान हैं। डॉ. उदयनारायण गंगू का कहना है "इस देश की अन्य जातियों ने जहाँ हिन्दुओं के संयुक्त परिवारों के लाभ देखें, वहाँ नाते के अनेक भोजपुरी शब्दों को भी सीखा। कुछ दशक पहले तक गाँव में बसने वाले चीनी समुदाय के लोग इन नाते-रिश्ते के शब्दों का प्रयोग करते थे। वे हिन्दुओं को चाचा, मामू और हिंदू स्त्रियों को दीदी, भौजी, मौसी, चाची आदि शब्दों से संबोधित करते थे। क्रिओलों ने अपने 'बड़े भाई' के लिए 'दादा' शब्द को अपनाया। वे अपने बड़े भाइयों को आदर से 'दादा' कहने लगे।"[6]

भोजपुरी लोक कथाओं का अनुवाद क्रिओल तथा अन्य भाषाओं में होता रहा है। 'सुबर की कथा' का अनुवाद क्रिओल में हुआ है। इस कथा में एक व्यापारी कन्या के पिता के प्रति आदर तथा बीमार पति के प्रति सेवा भावना को दिखाया गया है। उक्त कहानी भारतीय परिवार के आदर्श को प्रस्तुत करती है।

यहाँ जन्म से लेकर मरण तक के संस्कारों को यदि लें तो वह बिना लोकगीतों के संपन्न हो ही नहीं सकता। इन लोक गीतों में इन संस्कारों की उत्पति तथा उसे पूरा करने की विधि से लेकर हर वह बात बतलाई गई है जो इसके लिए जरुरी है। यज्ञोपवित संस्कार का उदाहरण

"गंगा जमुनवाँ के बीच तउ बरुआ पुकारेला।
हमराँ जनेउआ के साध जनेउआ हम चाहीला।
गंगा जमुनवाँ किरनवाँ से दादा पुकारेला।
...तोहरी जनेउवा क साथ पंवरि गंगा आवउ हो।
...भींजै मोरा सोरहो सिंगार जनेउवा के कारन।"[7]

लोक संस्कृति की जो भी विशेषताएँ हैं, वे सभी मॉरीशसीय लोक कथाओं में मिलती हैं। सामान्य मानव समाज की आवास व्यवस्था, खान-पान, रहन-सहन, वस्त्र तथा आभूषण, श्रृंगार प्रसाधन तथा गृहस्थी चलाने के प्रमुख संसाधनों का वर्णन यहाँ के लोक साहित्य में मिलता है। गिरमिटिया मज़दूरों की खानपान की शैली ने भी मॉरीशसीय समाज के अन्य लोगों को प्रभावित किया है। "भारतीय मज़दूरों के आगमन से पहले, अफ्रीकी मूल के दासों का निर्वाह मकई, मान्योक और अरबी कंद पर होता था। भारतीयों ने इस देश में चावल का प्रयोग शुरू किया। इसकी अभिव्यक्ति एक स्थानीय लोक कथा 'कछुआ और बन्दर' में हुई है।"[8] मॉरीशस के शहरों की गलियों में बेची जा रही दाल-पूरी धनी और गरीब सभी बड़े चाव से खाते हैं। यहाँ मटर पनीर, बैंगन का भरता, कढ़ी-चावल, रोटी, रायता, साग, चटनी आदि का प्रचलन भारतीय जनमानस का प्रतिनिधित्व करता है।

"वैसे तो साहित्य ही जीवन का प्रतिबिम्बन होता है, किन्तु लोक साहित्य तो जनजीवन की तमाम परम्पराओं, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों और मान्यताओं का पूरा एवं सच्चा प्रतिनिधित्व करता है। मनुष्य क्या सोचता है, उसकी कल्पना कैसे-कैसे आगे बढ़ती है, वह क्या कुछ पाता और खोता है, उसकी आशाएँ किस प्रकार पूरी या अधूरी रह जाती हैं, लोक कथाएँ जैसे इन तमाम बातों का एक अलबम हो। इन कथाओं के माध्यम से किसी देश की विकासमान चिंतन-धारा का एक जीवंत चित्र प्रस्तुत होता है।"[9] लोक के इसी प्रभाव के कारण मॉरीशस में रिश्ते आज भी हुबहू सुरक्षित हैं। इनके बीच के आडम्बर को हटाया गया है। आपसी प्रेम, एकता और विश्वास को बनाए रखने की पूरी

कोशिश की गई है। यहाँ माँ अभी मम्मी नहीं बनी है। चाचा-चाची अंकल-आंटी नहीं बने हैं। बड़ों के प्रति आदर तथा सम्मान का भाव ज्यादातर घरों में देखने को मिलता है। घर के बड़े भी बदलते माहौल के साथ तालमेल बिठाना सिख गए हैं। यही कारण है कि मॉरीशस में अभी 'ओल्ड एज होम' का चलन दिखाई नहीं देता है। सब साथ मिलकर एक साथ संयुक्त रूप से एक ही घर में रहते हैं।

मॉरीशस जाने पर जितना प्रेम और अपनापन मुझे मिला शायद भारत में नहीं मिल पाता। इस सबके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण लगता है। जो लोग भारत से गए वे भारतीय संस्कृति को बचाए हुए हैं। जिससे परदेश में वे अपनी एक अलग पहचान बनाने में सफल हुए। आज भी उन्हें यह लगता है कि यदि उन्हें आगे तरक्की करनी है तो अपनी संस्कृति एवं परम्परा को अपनाए बिना संभव नहीं है।अपनापन एवं सामूहिकता का भाव यहाँ के लोगों में बख़ूबी देखा जा सकता है। जिंदादिली एवं जीवन के प्रति सकारात्मक नज़रिया बुज़ुर्गों तक में देखा जा सकता है। भारतीय संस्कृति से लगाव किसी-न-किसी रूप में यहाँ प्रायः हर अप्रवासी में मौजूद है। भोजपुरी यहाँ पर प्रेम, एकता, सौहार्द, दर्द एवं मेहनत की भाषा है। मौखिक साहित्य, रामचरितमानस, गीता, आल्हा-उदल यहाँ जन-जन में समाहित है।

भारतीय परिधान साड़ी का यूरोपीय और चीनियों पर स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इसमें बॉलीवुड का महत्वपूर्ण योगदान है। बॉलीवुड की फिल्मों से करवाचौथ, होली, दीवाली तथा भारतीय परिवार की संरचना, रहन-सहन, खान-पान को देखकर मॉरीशसवासी काफ़ी कुछ सीखते हैं। मॉरीशस की गली-गली में बॉलीवुड गीतों की धुनें प्रचलित हैं। रेडियो और टीवी पर भी इसका प्रभाव देखा जा सकता है। भोजपुरी फ़िल्म एवं गीत हर साल निकलते हैं। यहाँ स्थानीय कलाकारों को प्रोत्साहन मिलता है। उन्हें सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जाता है। MBC रेडियो एवं टीवी के माध्यम से भोजपुरी चैनल चलाया जाता है। इसमें फिल्म, गीत, सीरियल, समाचार प्रतिदिन आते हैं।

श्रम से ही सृजन होता है। जो भी मेहनतकश लोग हैं, कलाओं का सृजन उनके वहाँ ही ज़्यादातर देखने को मिलता है। यही कारण है कि लोकगीतों का सृजन सोच-समझकर या योजना बनाकर नहीं किया जा सकता। श्रमशील समाज के लोग दिनभर की कड़ी मेहनत के बाद अपनी थकान को कम करने के लिए लोक गीतों को गाते हैं। यही कारण है कि मॉरीशस गए गिरमिटिया मज़दूरों के यहाँ लोक गीतों के विविधधर्मी रूप दिखाई देते हैं। जो वे अपने पूर्वज देश भारत से ले गए थे। वर्तमान पीढ़ी उसे याद करती है—

"सत्यं शिवं सुन्दरं के/साथ-साथ
हमारे पूर्वजों ने/हमें सिखाया है श्रम
आज हम खुशहाल हैं!"[10]

लोक साहित्य से नैतिकता का पाठ ग्रहण कर यहाँ के लोग शांतिपूर्वक रहते हैं। एक दूसरे के प्रति सहयोग की भावना है। अपराध तथा भ्रष्टाचार और देशों की तुलना में यहाँ कम है। सामान्य तथा प्राकृतिक ढंग से जीवन जीने में लोगों को विश्वास है। साँय-साँय करती पुलिस की गाड़ियाँ यहाँ नहीं दिखाई देती। इसका मतलब आज भी यहाँ करप्शन कम है। जीवन आज भी यहाँ प्राकृतिक है। शाम पाँच बजे तक सब अपने घर में होते हैं। गाँवों से शहरों की तरफ पलायन यहाँ बहुत नहीं है। सभी शहर काम करने जाते हैं। परन्तु रहते अपने-अपने गाँव में ही हैं। इन सब में लोक और उसके साहित्य की मुख्य भूमिका है।

अनुबंध की समाप्ति पर भोजपुरीवासी अपने देश वापस जा सकते थे। बहुत से लोग गए भी। लेकिन उनमें से कुछ लोग वापिस स्थाई रूप से बसने के लिए आ गए। सन् 1860 और 1880 का भूमि विभाजन निश्चय ही अप्रवासियों और उनके वंशजों के लिए लाभप्रद रहा। शक्कर कोठियों को छोड़ते ही भोजपुरी वालों ने ज़मीन ख़रीदी, घर बनाया। अजीविका के लिए खेती तथा पशुपालन अपनाया। उनकी कड़ी मेहनत एवं लगन ने उन्हें घर और खेतों का मालिक बनाया। बाद में नौकरी-पेशा तथा अन्य विभिन्न व्यवसायों से भी जुड़ने लगे। इस बात की अभिव्यक्ति प्रस्तुत लोक गीत में हुई है—

"आए हम सब हिन्द से/करन नौकरी हेत
गिरमिट काटी कठिन से/फिर सर्कारी खेत
फिर सर्कारी खेत/कोई स्वदेश लौट गए
कोई खरीदी भूमि/कोई गाँवन में बस गए।"[11]

यहाँ के लोक साहित्य में लोकजीवन की आर्थिक, औद्योगिक, व्यावसायिक, और राजनीतिक झाँकियाँ भी मिलती है। कृषि, व्यवसाय, शिल्प आदि का भी उल्लेख मिलता है। इनमें वर्णित सोने की थाली से लेकर मखमल के गद्दों तक का उल्लेख मिलता है। साहूकार और ऋणदाताओं के अलावा, विभिन्न काम-धंधों का भी परिचय मिलता है। लेकिन स्वतंत्रता के बाद गिरमिटियों के जीवन में जातिभेद एवं एकता के अभाव के कारण आर्थिक जीवन में काफ़ी बदलाव देखने को मिलता है -

"अमीर गरीब के रगड़ा और/
पोलिटिक्स के दबाव ने हमें बहुत दूर कर दिया।
ना रहा जहाजी का नाता, और ना बिरादरी का दस्तूर
एक सौ पच्चीस साल के बाद हमें/कर दिया बहुत दूर
बहुत आगे बढ़ जाने के बाद जब/मुड़ कर देखा
तब पता चला कि हम कितना पिछड़ गए हैं।"[12]

भोजपुरी लोक साहित्य मॉरीशस में रोजगार का माध्यम बनकर भी उभरा है। भोजपुरी तथा उसके लोक साहित्य को रचने एवं संरक्षित करने वाले साहित्यकार कला एवं संस्कृति मंत्रालय के विभिन्न सरकारी पदों पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं। भोजपुरी लोक साहित्य से संबंधित विभाग विभिन्न संस्था एवं संस्थाओं में है, जिसमें रोज़गार के अवसर मौजूद हैं। यह तो हुआ पढ़े-लिखे लोगों के लिए रोज़गार के अवसर। आम जन के लिए 'गीत गवाई' रोजगार का प्रमुख स्रोत है। इसको गाने वाले ज्यादातर वे लोग हैं जो साठ के पार हैं। जिन्हें पैसों की जरूरत भी है परन्तु उनके उपयुक्त काम नहीं है। ये लोग मनोरंजन के माध्यम से अपने हुनर को दिखा अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार पाते हैं। इसे गाने वाले लोगों को देश तथा विदेश में समय-समय पर सम्मानित भी किया जाता है। इस तरह से उम्र के इस पड़ाव में भी वे आत्मविश्वास से भरे दिखाई देते हैं।

युद्ध नीति, दंड विधान, और राजा प्रजा के बीच संबंध, युद्ध-वाद्यों और शास्त्रास्त्रों के नामों द्वारा अतीत की राजनीतिक व्यवस्था की झाँकी लोक साहित्य में मिलती है। पुरखों को समर्पित कविता 'तब और अब' के माध्यम से ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर' कहते हैं—

"तब अउर अब में फरक बाटे भइया हो
संभर के दीह मतदान।
नीच अरकठियन से बार-बार बचिह तूँ
नाहिं त संकट फँसी प्रान
जतिया के जीतवा में मजूरन के जीत बाटे,
हार बाटे गोरवा के चाल।
अपन ही 'पार्टी' में सोच सोच
'बोट' दिह होइ जइहें पुरखा निहाल।"[13]

इस तरह से मॉरीशस के प्रवासी मज़दूर लोक साहित्य में निहित मूल्यों को अपनाकर जीवन के हर रंग-राग को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। लोक उनके जीवन के केंद्र में हैं। जिससे जीवन जीने का ढंग, उसमें आई समस्याओं तथा चुनौतियों का सामना आसानी से संभव है। वर्तमान पीढ़ी इसके माध्यम से मनोरंजन के साथ-साथ रोज़गार के अवसर की संभावना भी तलाश रही है।

संदर्भ :

1. भोजपुरी और उसका साहित्य, कृष्णदेव उपाध्याय, पृष्ठ 9
2. संस्कार मंजरी, सुचिता रामदीन, पृष्ठ 265
3. व्यक्तिगत संग्रह
4. लोक : परंपरा, पहचान एवं प्रवाह, श्यामसुंदर दुबे, पृष्ठ 69
5. व्यक्तिगत संग्रह
6. मॉरीशस का भोजपुरी लोक साहित्य एवं भारतीय संस्कृति, डॉ. उदय नारायण गंगू, पृष्ठ 296
7. मॉरीशस के भोजपुरी लोक गीतों का विवेचनात्मक अध्ययन, डॉ. कुबेर मिश्र, पृष्ठ 179
8. मॉरीशस लोक साहित्य और संस्कृति, प्रह्लाद रामशरण, पृष्ठ 56
9. मारिशस की लोक-कथाएँ, प्रह्लाद रामशरण, प्राक्कथन
10. सूरीनाम में हिंदी कविता, संपादक उमाशंकर सतीश, पृष्ठ 73
11. सूरीनाम में हिंदी कविता, संपादक उमाशंकर सतीश, पृष्ठ 19
12. सूरीनाम का सृजनात्मक हिंदी साहित्य, संपादक विमलेश कांति वर्मा/भावना सक्सेना, पृष्ठ 155
13. मधुबहार, ब्रजेंद्र भगत 'मधुकर', पृष्ठ 7

❖

म. संख्या 1341, ब्लाक-सी,
लखनऊ-226016 (उ.प्र.)
मोबाइल : +91 9553823097
ई-मेल : priyankakumari@uohyd.ac.in

सामाजिक समरसता में संत कबीर का योगदान

— वचनाराम मोडाराम काबावत

संत कबीर की वाणी में मानवीय संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है। मानव समाज में मरणासन्न मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए उन्होंने जीवनपर्यन्त संघर्ष किया। उन्होंने सामाजिक विषमताओं के बीज बोने वाले ब्राह्मणवाद और मुल्लावाद का घोर विरोध किया। पशुवत व्यवहार से प्रताड़ित पिछड़े एवं दलित वर्ग के साथ संत कबीर न केवल खड़े रहते हैं अपितु शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अड़े भी रहते हैं। उन्होंने निराशावाद के घोर अंधकार में सोए हुए समाज को जगाने का कार्य किया। संत कबीर विषम से विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हुए अपितु परिस्थितियों को ही झुकना पड़ा, कबीर कभी भी नहीं झुके।

साहित्य युगबोध का जीवंत दस्तावेज़ होता है। सच्चे अर्थों में साहित्य न केवल समाज का दर्पण होता है अपितु मार्गदर्शक, पथ-प्रदर्शक भी होता है। साहित्य समाज जीवन में मानवीय संवेदनाओं को जागृत करने का कार्य करता है। मध्यकाल में भारतीय समाज में धर्मशास्त्रों-पुराणों की आड़ में वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था का पोषण हो रहा था। मुल्ला-मौलवियों और ब्राह्मण-पंडितों की धार्मिक संकीर्णताओं, मिथ्याचारों तथा आडंबरों ने समाज में टकराव एवं बिखराव की स्थिति उत्पन्न कर दी थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में भक्तिकालीन संत कवियों ने सामाजिक समरसता के लिए साहित्य का सृजन किया। उन्होंने सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों और विकृतियों का खंडन करके समाज-सुधारक की भूमिका का निर्वहन किया।

सामाजिक क्रान्तिधर्मी संत कबीर का काव्य मानवतावाद का पोषक है। उन्होंने शोषित-पीड़ित, भय से आक्रांत और निराशावाद में जीने को विवश जन-मानस में आत्म-विश्वास जगाने का कार्य किया। उनकी वाणी में विश्वबंधुत्व की भावना जागृत करने एवं पारस्परिक भेदभाव को मिटाने का सामर्थ्य हैं। संत कबीर किसी जाति अथवा धर्म के नहीं अपितु मानवता के समर्थक थे। उन्होंने मानव धर्म को सबसे बड़ा धर्म माना है। संत कबीर की वाणी में हमें गौतम बुद्ध की सामाजिक समता एवं मानवता की गूँज सुनाई देती है। उन्होंने समतामूलक आदर्श समाज की संकल्पना की थी। संत कबीर का काव्य न केवल सामाजिक विषमताओं की ओर ध्यान दिलाता है, अपितु समाधान की राह भी दिखाता है।

सामाजिक समरसता की अवधारणा :

सामाजिक समरसता की अवधारणा समाज और समरसता शब्दों के सार्थक योग से बनी है। सामाजिक शब्द को समरसता शब्द के साथ जोड़कर उसे समाज जीवन के संदर्भ में अर्थ विस्तार दिया गया। सामाजिक समरसता से अभिप्राय सामाजिक जीवन में व्याप्त जातिगत श्रेष्ठता के मानसिक भाव का उन्मूलन एवं वर्ग-विहीन, वर्ण-विहीन तथा जाति-विहीन समरस समाज का निर्माण। समरस

समाज ही समृद्ध एवं संगठित समाज का आधार हो सकता है। सामाजिक समरसता समतामूलक आदर्श समाज का आत्म तत्व है। समाज एवं राष्ट्र की एकता और अखंडता के लिए समाज जीवन में सामाजिक समरसता परम आवश्यक है।

समरसता मात्र शब्द नहीं है, यह एक संकल्पना है और यह संकल्पना समता की संकल्पना से भी अधिक मूलगामी है। वस्तुत: समरसता की संकल्पना भारतीय संविधान के उपोद्घात से बिल्कुल प्रमाणित है।

सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय, दर्ज़ा तथा अवसर की समानता, व्यक्ति की प्रतिष्ठा एंव राष्ट्र की एकता और एकात्मता के लिए बंधुता आदि तत्वों को भारतीय संविधान ने स्वीकार किया है।"[1]

संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने संविधान की उद्देशिका में समाज एवं राष्ट्र की एकता तथा अखंडता को सुनिश्चित करने के लिए मनुष्य-मनुष्य के बीच बंधुता बढ़ाने की आवश्यकता प्रतिपादित की है। मनुष्य-मनुष्य में आत्मीयतापूर्ण, आदरयुक्त, सह अस्तित्व और बंधुता की भावना ही सामाजिक समरसता का निर्माण करती है। सामाजिक समरसता के लिए समाज-जीवन में उपदेश की आवश्कता नहीं है, अपितु आचरण एवं व्यवहार में बदलाव लाने की आवश्यकता है। समाज-जीवन में जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर सभी के साथ आत्मीयतापूर्ण एवं बंधुभावना से व्यवहार करना ही सामाजिक समरसता कहलाती है। सामाजिक समरसता की अंतर्वस्तु में समाज जीवन की एकरसता एवं एकात्मता है। समाज जीवन में व्याप्त सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों, विकृतियों और जातिगत भेदभाव को समाप्त करने के लिए न केवल सैद्धांतिक रूप से अपितु व्यवहारिक रूप से हमें समरसता के भाव को आचरण एवं व्यवहार में लाने की आवश्यकता है।

"गौतम बुद्ध ने जाति-व्यवस्था के विरोध में भूमिका लेकर अहिंसा का मार्ग दिखलाया। बताया की यज्ञयाग में होने वाली पशुहत्या और कभी-कभी नर हत्या धर्म नहीं है। शास्त्रों में अस्पृश्यता नहीं है ऐसा प्रच्छन्न विचार उन्होंने रखा। बुद्ध विचारधारा को राजाश्रय प्राप्त हुआ। अनेक क्षत्रिय राजाओं ने बुद्ध की विचारधारा स्वीकृत की। उस कारण से जाति व्यवस्था दुर्बल होने में सहायता हुई। समरसता की ओर उठा हुआ यह पहला कदम था। सभी मनुष्यों से प्रेम करो, सबका सम्मान करो, करुणा और बंधु भावना अपनाओ, इस तत्वज्ञान से समाज का वरिष्ठ और कनिष्ठ वर्ग एक-दूसरे के निकट आने लगा। लेकिन आगे इस विचारधारा का लोप होने लगा।"[2]

सिद्धार्थ सांसारिक सुख और राज महल का मोह त्यागकर तथागत गौतम बुद्ध बन जाते हैं। वे अपने युग के भारतीय समाज में क्षत्रिय एवं श्रेष्ठ वर्ण के थे, अत: उनके विचार, चिंतन और मानवतावादी दर्शन को आत्मसात करना सरल एवं सहज था। परन्तु जातिगत भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक संकीर्णताओं और पाखंडवाद का पोषण करने वाले ब्राह्मणवाद ने गौतम बुद्ध को स्वीकार नहीं किया। धीरे-धीरे गौतम बुद्ध का विचार, चिंतन और मानवतावादी दर्शन संपूर्ण एशिया में फैल गया। उनका अमर वाक्य 'अप्प दीपो भव' हमें आज भी अपनी शक्ति को तेल रूप में, शरीर रूपी दीपक में, आत्म रूपी ज्योति को प्रज्वलित कर ज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

सामाजिक समरसता में संत कबीर का योगदान : संत कबीर का आविर्भाव उस कालखंड में हुआ जब भारतीय समाज जात-पाँत, ऊँच-नीच, छुआछूत, वर्णभेद और जातिभेद में बँटा हुआ था। समाज में जाति व्यवस्था के नाम पर सामाजिक विषमताओं, विसंगतियों और विकृतियों का बोलबाला था। समाज के बहुत बड़े वर्ग को जन्म के आधार पर अछूत मानकर हाशिए पर धकेल दिया गया था।

संत कबीर स्वयं निम्न वर्ग के बुनकर जुलाहा होने के कारण जातिवाद के ज़हर का दंश झेल चुके थे। काशी का बुनकर जुलाहा कबीर छुआछूत के घृणित अपमान का कड़वा घूँट पीकर सामाजिक क्रांतिधर्मी संत कबीर बन जाता है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं और विकृतियों

से समाज और मानव की मुक्ति के लिए सामाजिक क्रांति का आह्वान किया। संत कबीर ने उस कालखंड में सामाजिक समरसता का बिगुल बजाया, जब सिकंदर लोदी की सत्ता में मुल्ला-मौलवियों द्वारा धर्मांतरण को बढ़ावा दिया जा रहा था। ब्राह्मणवाद के गढ़ काशी में ब्राह्मण-पंडितों द्वारा धर्मशास्त्रों-पुराणों की आड़ में जातिगत भेदभाव, छुआछूत और पाखंडवाद का पोषण हो रहा था। संत कबीर निर्भीकतापूर्वक और नैतिक साहस के साथ सिकंदर लोदी की सत्ता में धार्मिक वैमनस्य फैलाने वाले मुल्ला-मौलवियों और ब्राह्मण-पंडितों को फटकार लगाते हैं। उन्होंने प्रखर वाणी एवं विचार से परम्परागत रूढ़ियों, कुरीतियों , धार्मिक संकीर्णताओं और बाह्य आडम्बरों का तार्किक एवं मार्मिक ढंग से खंडन किया। संत कबीर ने मानव मात्र की एकता का संदेश दिया और भारतीय समाज के समक्ष सामाजिक समरसता का आदर्श प्रस्तुत किया।

"कबीर ने जाति की निस्सारता बताई। हिंदू-मुसिलम के भेद को व्यर्थ कहा। उन्होंने कहा सभी मानव एक हैं। यह मानव शरीर पाँच तत्वों से निर्मित है। इसमें जीवात्मा का वास है, फिर जाति कहाँ से आ गई। इसमें यही भाव प्रदर्शित है :

हिंदू कहो तो मैं नहीं, मुसलमान भी नांहि।
पाँच तत्व का पूतला, गैवी खेलै मांहि॥"[3]

राष्ट्र कवि रामधारी सिंह दिनकर ने 'संस्कृति के चार अध्याय' में कबीर के विषय में प्रेरणात्मक उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखा : "कबीर विद्रोह के अवतार थे। वेद, वर्णाश्रम, धर्म और जात-पाँत का विरोध उन्होंने उसी निर्भीकता से किया जो निर्भीकता बुद्ध में दिखाई पड़ी थी।

कबीर भारत के अत्यंत महान क्रांतिकारी पुरुष हुए हैं। उनकी बड़ाई केवल इसी बात के लिए नहीं है कि उन्होंने साहसपूर्वक हिंदुओं और मुसलमानों की आँखों में उंगली डालकर उन्हें यह समझाया कि मंदिर और मस्जिद के सवाल पर झगड़ने से बढ़कर मूर्खता का कोई और काम नहीं हो सकता अपितु इसलिए भी कि संस्कृत के विरुद्ध उन्होंने भारत में नवीन भाषा की पताका फहराई और संस्कृति का जो नेतृत्व ब्राह्मणों के हाथ में था उसे उन्होंने निम्न वर्ग के लोगो के हाथों में पहुँचा दिया।"[4]

संत कबीर की वाणी में मानवीय संवेदनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति है। मानव समाज में मरणासन्न मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए उन्होंने जीवनपर्यन्त संघर्ष किया। उन्होंने सामाजिक विषमताओं के बीज बोने वाले ब्राह्मणवाद और मुल्लावाद का घोर विरोध किया। पशुवत व्यवहार से प्रताड़ित पिछड़े एवं दलित वर्ग के साथ संत कबीर न केवल खड़े रहते हैं अपितु शोषण और अत्याचार के विरुद्ध अड़े भी रहते हैं। उन्होंने निराशावाद के घोर अंधकार में सोए हुए समाज को जगाने का कार्य किया। संत कबीर विषम से विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं हुए, अपितु परिस्थितियों को ही झुकना पड़ा, कबीर कभी भी नहीं झुके।

प्रख्यात साहित्यकार रांगेय राघव ने कबीरदास के जीवन पर आधारित रोचक उपन्यास 'लोई का ताना' में उनके जीवन में बुने ताने-बाने का अद्‌भुत बारीक चित्रण करते हुए लिखा : "उसे सुल्तान लोदी ने रोका, मुल्लाओं ने रोका, महंतों, मठाधीशों ने रोका, उसे पेशेवर साधुओं और संन्यासियों ने रोका, उसे नाथ जोगियों ने घोलकर समाप्त कर देने की कोशिश की, लेकिन वह!! वह नहीं मिटा। न सुल्तान की तलवार उसे काट सकी, न मुल्लाओं के फतवे उसका सिर झुका सके। महंतों, मठाधीशों और पंडितों की जीभ उसके सामने लड़खड़ा गई। उसने मुफ़्तख़ोर साधुओं को बताया कि जिंदा रहते हो तो हाथ-पैरों से कमाकर खाओ।"[5]

संत कबीर कहते हैं कि संपूर्ण मानव जाति की उत्पत्ति समान रूप से हुई हैं। सभी मनुष्य एक समान ही शरीर धारण करते हैं, जो एक समान ही हाड़-मांस मज्जा से बना हुआ है। सभी मनुष्यों की एक ही समान त्वचा है और सभी के शरीर में एक समान ही रुधिर है। संत कबीर जातिगत श्रेष्ठता के संकीर्ण मानसिक भाव का खंडन करते हुए स्पष्ट

शब्दों में कहते हैं कि सभी मनुष्य समान रूप से उत्पन्न हुए हैं फिर मनुष्य-मनुष्य में भेदभाव कैसा? उन्होंने जातिगत भेदभाव का पोषण करने वाले ब्राह्मण-पंडितों को फटकार लगाते हुए स्पष्ट शब्दों में कहा :

"एक रुधिर एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक बूँद ते सृष्टि रची है, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।"

संत कबीर कहते हैं कि सभी मनुष्य जन्म से शूद्र ही होते हैं। कोई भी मनुष्य अपने जन्म के साथ जातिगत श्रेष्ठता का प्रमाण लेकर पैदा नहीं होता है। पंडित के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता है और न ही शूद्र के घर में जन्म लेने से कोई शूद्र होता है। सभी मनुष्य की उत्पत्ति समान रूप से एक ही मार्ग से हुई है, फिर शूद्र अपवित्र और ब्राह्मण श्रेष्ठ व पवित्र कैसे हो सकता है? शूद्र साधारण रक्त और पंडित-ब्राह्मण पवित्र दूध कैसे हो गया? यदि जन्म के आधार पर पंडित-ब्राह्मण मानव जाति में सबसे पवित्र और श्रेष्ठ हैं तो फिर उसके जन्म लेने का ढंग भी अन्य से भिन्न होना चाहिए। संत कबीर छुआछूत और जातिगत श्रेष्ठता का खंडन करते हुए स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

"जो तू बामन बामनी जाया।
तो आन बाट काहे न आया॥"

इसी प्रकार संत कबीर जातिगत श्रेष्ठता का दंभ भरने वाले मुल्ला-मौलवियों और मुसलमानों को भी व्यंग्यात्मक शैली में फटकार लगाते हुए कहते हैं—

"जे तू तुर्क तुरकनी जाया।
तो भीतरि खतनी क्यूँ न कराया॥"

संत कबीर का उद्देश्य वेद-पुराण और क़ुरान का अनादर कराना कतई नहीं है। उनका उद्देश्य तो धर्मशास्त्रों-पुराणों की आड़ में फैलाई जा रही परंपरागत रूढ़ियों, धार्मिक कुरीतियों, मिथ्या कर्मकांडों, बाह्य आडम्बरों और पाखंडवाद का खंडन करना है। संत कबीर सामाजिक विषमताओं और जातिगत भेदभाव की कृत्रिम दीवारों की बुनियाद पर खड़ी जर्जरित समाज व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहते थे।

उन्होंने मानवीय अधिकारों से वंचित वर्ग के साथ होने वाले अमानवीय व्यवहार और अत्याचारों को न केवल प्रत्यक्ष देखा था, अपितु स्वंय भोगा था। जन मानस की ऐसी दयनीय दुर्दशा को देखकर संत कबीर चुप कैसे बैठे सकते थे। उन्होंने धार्मिक कट्टरता और धर्मांधता फैलाने वाले मुल्ला-मौलवियों और ब्राह्मण-पंडितों का जमकर घोर विरोध किया। वे सामंतवाद के शोषण और अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाते हैं। संत कबीर ब्राह्मण-पंडितों और मुल्ला-मौलवियों की कथनी और करनी में अंतर देखते हैं तो उनका विद्रोही व्यक्तित्व सिंह गर्जना के साथ जाग उठता है। वे हिंदू और मुसलमानों को व्यंग्यात्मक शैली में फटकार लगाते हुए कहते हैं—

"अरे इन दोउन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
वेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।
मुसलमान के पीर औलिया, मुरगी मुरगा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं, घरहि में करै सगाई।"

यह कितना दुर्भाग्यपूर्ण है कि हम आज 21वीं सदी में विज्ञान और तकनीकी के युग में भी जातिगत भेदभाव तथा छुआछूत की संकीर्ण मानसिकता के साथ जी रहे हैं। आज भी समाज जीवन में जातीय भेदभाव को हम जड़मूल से समाप्त नहीं कर पाए हैं। समाज जीवन में सामाजिक विषमताएँ, विसंगतियाँ और विकृतियाँ कम नहीं हुई हैं अपितु इनका रूप बदल गया है। सभी धार्मिक मत-मतांतरों के साधु-संन्यासी और राजनेता जातिगत भेदभाव और छुआछूत को समाप्त करने की आवश्यकता बताते हैं। जातिगत भेदभाव से ऊपर उठकर मानव मात्र की एकता की बात कहते सभी हैं, किन्तु इसे अपने व्यवहार और आचरण में कोई नहीं लाना चाहता है। धर्म के तथाकथित ठेकेदारों और धार्मिक-राजनीतिक नेताओं की कथनी और करनी में अंतर साफ़ नज़र आता है।

काशी का एक बुनकर जुलाहा आज से छः सौ वर्ष पूर्व सामंतवाद, मुल्लावाद के शोषण और अत्याचारों के

खिलाफ निर्भीकतापूर्वक, नैतिक साहस के साथ आवाज़ उठाता है। ब्राह्मणवाद के गढ़ काशी में जातिगत भेदभाव, छुआछूत, धार्मिक रूढ़ियों, कुरीतियों और पाखंडवाद को एक बुनकर जुलाहे कबीर द्वारा खुली चुनौती देना साधारण बात नहीं अपितु असाधारण बात है। संत कबीर की वाणी मरणासन्न मानव मूल्यों को पुनर्जीवित करने में संजीवनी औषधि का कार्य करती है। उन्होंने मानवतावादी समतामूलक समरस समाज की संकल्पना की थी। संत कबीर की वाणी समाज जीवन में सामाजिक समरसता का पथ प्रशस्त करती है। उन्होंने सामाजिक विषमताओं के ख़िलाफ़ वैचारिक क्रांति द्वारा जन-जन को जागृत करने का कार्य किया और भारतीय समाज के समक्ष सामाजिक समरसता का आदर्श प्रस्तुत किया।

आज भी समाज और राष्ट्र के सामने जातिगत भेदभाव न केवल चुनौती है अपितु विकास में भी बाधक सिद्ध हो रहा है। समाज सैकड़ों जातियों-उपजातियों में बँटा हुआ है। जाति के नाम पर पनपने वाले जातीय समूह, संगठन और सेनाएँ समाज जीवन में सामाजिकता के ताने-बाने को क्षति पहुँचाते हैं। 21वीं सदी के दौर में वैश्विक स्तर पर भी कई देश रंग-भेद एवं नस्ल-भेद जैसी सामाजिक विषमताओं से जूझ रहे हैं। हाल ही में अमेरिका में अश्वेत नागरिक जार्ज फ्लोयड की मौत के बाद दुनिया भर में अश्वेतों से भेदभाव को लेकर "ब्लैक लाइव मैटर" अभियान चलाया गया। विश्व व्यापी रंग-भेद, नस्ल-भेद और धार्मिक भेदभाव संपूर्ण मानव जाति के लिए घातक है। आज संपूर्ण विश्व जिस मानवतावाद और मानव धर्म का समर्थन कर रहा है, उसी मानवतावाद और मानव धर्म का शंखनाद संत कबीर आज से छः सौ वर्ष पूर्व कर चुके थे। संत कबीर ने समाज जीवन में जन-कल्याण से जग-कल्याण की संकल्पना की थी। संत कबीर वर्गवादी, वर्णवादी एवं जातिवादी समाज व्यवस्था को तोड़कर मानवतावादी आदर्श समाज के निर्माण के लिए प्रयत्नशील थे। संपूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए संत कबीर की वाणी एवं विचार की उपादेयता आज भी है और कल भी रहेगी।

निष्कर्ष : यदि हम गौतम बुद्ध के बताए मार्ग को मान लेते और संत कबीर की वाणी और विचार को आत्मसात कर लेते तो समाज और राष्ट्र की दशा और दिशा ही बदल जाती। समाज जीवन में सामाजिकता का ताना-बना टूटता- बिखरता नजर नहीं आता। संत कबीर केवल व्यक्ति नहीं हैं, अपितु विचार हैं और यह विचार मानवता, बंधुता, स्वतंत्रता, समता, समानता, समरसता और आत्मीयतापूर्ण व्यवहार का है। संविधान निर्माता डॉ. भीमराव अंबेडकर ने संत कबीर की वाणी और विचार को आत्मसात करके ही संविधान की उद्देशिका में समता, समानता और बंधुता को प्रतिपादित किया है। संत कबीर ने अपनी भूमिका का निर्वहन, ईमानदारी के साथ किया, किन्तु समाज के स्वार्थी लोगों ने उसे आत्मसात कर अपने व्यवहार और आचरण में लाने में उदासीनता दिखाई। समाज जीवन में सामाजिक समरसता के लिए संत कबीर की वाणी और विचार को न केवल सैद्धान्तिक रूप से अपितु व्यावहारिक रूप से आचरण में लाने की आज भी महती आवश्यकता है।

संदर्भ :

1. रमेश पतंगे, तरुण विजय (संपा.), समरसता के सूत्र, समरसता ग्रन्थ प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 68
2. वही, पृ. 87
3. कन्हैयालाल चंचरीक, महात्मा कबीर : जीवन और दर्शन, यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन, पृ. 54
4. वही, पृ. 86
5. रांगेय राघव, लोई का ताना, राजपाल एंड संज, कश्मीरी गेट, दिल्ली, पृ. 12

❖

शोधार्थी (पीएच.डी.)
हिंदी विभाग, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद
मोबाइल : 9460768914
ई-मेल : vrvidyarthi1@gmail.com

आपदा प्रबंधन और साहित्य

— कृष्ण बिहारी पाठक

"आपदा चाहे जैसी भी हो उसका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव बाज़ारवाद को बढ़ावा देता है और बाज़ारवाद एक ऐसी अतृप्ति को जन्म देता है जो केवल तृष्णा को बढ़ावा देता है। बाज़ारवाद अर्थात अप्रतिहत महँगाई, सद्भाव की कमी। आपदा में जब बाज़ारवाद अपना जादुई मायाजाल बिछाए रखता है ऐसे में साहित्य की शक्ति ही उसे तिरोहित करती है। प्रेमचंद की कहानी ईदगाह में छोटा-सा हामिद अपनी बाल सुलभ आवश्यकताओं पर बाज़ार के मायाजाल को हावी नहीं होने देता है वो ख़रीदता भी है तो चिमटा क्योंकि चिमटा उनके लिए आवश्यक है। अनावश्यक वस्तुओं की ख़रीद बाज़ारवाद को बढ़ावा देती है यह तथ्य प्रेमचंद ने साहित्य के माध्यम से कितना सहज कर दिया है।"

वर्तमान विश्व की विसंवादी-विध्वंसी प्रवृत्तियों, आपदाओं, महामारियों और आपदाजन्य नकारात्मक मनोग्रंथियों यथा अवसाद, नैराश्य, भग्नाशा और अभावों के प्रत्युत्तर में संवाद-सृजन, उपहार, उल्लास, आशा-प्रत्याशा, और भावों की समावेशी अनुपमेय निधि है-साहित्य। साहित्य शरण्य है और हम सब शरणागत। आतंरिक पीड़ा से व्यथित आकुल अंतर हो या जगत के भौतिक दुखों से दुखी मानव, सब के सब साहित्य में अपनी समस्याओं के समाधान पा सकते हैं, इसीलिए अपने अनुभवों को लिखकर या दूसरों के अनुभवों को पढ़कर, अपनी संवेदनाओं को गाकर या दूसरों की रागिनियों को सुनकर, अपनी भावनाओं को दिखाकर या दूसरों के जीवन को देखकर, अपनी अभिव्यक्ति को बताकर या दूसरों की अनुभूति को समझकर संसार के सबसे भावुक, सबसे कोमल, सबसे संवेदनशील हृदय इस दुखमय संसार से परे एक कल्पना की सत्ता का निर्माण करता है जहाँ दुखमय जीवन पथ का चिरपथिक मानव विश्रांति लेता है, हँसता है, गाता है और मनाता है कि ये विश्व सकल चिर सुखमय हो, आनंद गीत का गुंजन हो, दैहिक दैविक भौतिक तापों से मुक्त रहे मानव जीवन, सुखमय-सुंदर-शिवतत्व पूर्ण।

इसी सुखमय भावलोक को, सजीले स्वप्नलोक को, सृजनधर्मी रचना लोक को मनीषियों ने साहित्य कहा है। जो हित का साधन है वही तो साहित्य है और यदि यही साहित्य है तो क्या अनुचित है कि मानव अपनी पीड़ा की चिकित्सा के लिए, अपनी समस्याओं के समाधान के लिए, वैश्विक आपदाओं से निस्तार के लिए साहित्य के पृष्ठों को उलटता पलटता है। क्या अनुचित है कि वह वर्तमान का समाधान अतीत में खोजता फिरता है, क्या अनुचित है कि बौद्धिकता के ताप को भावुकता की हिमानी से शीतल करना चाहता है, क्या अनुचित है कि तार्किकता की धूप से बचने के लिए श्रद्धा की छाँव में छिपना चाहता है। दुखों से भागते मनुष्य को साहित्य न केवल त्राण देता है अपितु प्राणी में सकारात्मक भाव को जगाकर उसे प्रवृत्ति मार्ग में प्रशस्त भी करता है, साहित्य की इसी लोकमंगलवादी शक्ति को लक्ष्य कर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को परिभाषित किया है-

"जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं।"[1]

कविता और साहित्य मुक्ति के हेतु हैं, मनुष्य अपने लौकिक-अलौकिक दुखों से मुक्ति पाने के लिए इन्हीं का सहारा लेता है। आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' में हरिवंश राय बच्चन ने जीवन की समस्याओं से जूझते अपने दादाजी के संदर्भ में लिखा है-"मैं कभी कभी सोचता हूँ कि दुर्भाग्य के उन दिनों में उनके पुस्तक प्रेम और कलापूर्ण लेखन ने उनको कितनी सांत्वना दी होगी, कितना उनका मन बहलाया होगा, कितना उन्हें भीतर से सँभाला होगा...उच्च और उदात्त से चिपके रहने में निश्चय ही उनके स्वाध्याय का बड़ा हाथ होगा।"[2]

साहित्य समांतर रूप से लोकरंजन और लोकरक्षण करता है। साहित्य भाव सौंदर्य और कर्म सौंदर्य से साक्षात्कार कराते हुए कर्मरत होने की प्रेरणा देता है। साहित्य प्रवृत्तिमुखी है इसीलिए स्तुत्य है और शायद इसीलिए मनीषियों ने इसे सत्यम शिवम सुंदरम कहकर विभूषित किया है। साहित्य ब्रह्मानंद सहोदर है इसीलिए अज्ञेय लिखते हैं कि अच्छा गद्य पढने में मुझे अनिर्वचनीय आनंद मिलता है, साहित्य की इसी शक्ति को वे असाध्य वीणा में रूपायित करते हैं-

"रसविद, तू गा :
मेरे अंधियारे अन्तस् में आलोक जगा/स्मृति का/
श्रुति का...मुझे ओट दे-ढक ले-छा ले-/ओ शरण्य /...
डूब गए सब एक साथ /
सब अलग अलग एकाकी पार तिरे।"[3]

असाध्य वीणा से निकली झनकार में सभी प्राणी अपने अपने दुखों से त्राण पाते हैं, समस्याओं का समाधान पाते हैं। जहाँ तक वर्तमान परिदृश्य पर साहित्य की प्रासंगिकता पर विचार करने की बात है तो हम पाते हैं कि हमारी समस्याओं के समाधान साहित्य में निहित हैं। आपदाएँ और समस्याएँ सर्वकालिक हैं, वे हर बार नए कलेवर में हमारे सम्मुख आती हैं, उनके नाम बदलते रहते हैं परंतु परिणाम नहीं बदलते, आज जो कोरोना है वो कभी प्लेग, हैजा, कभी बाढ कभी सूखा, कभी युद्ध विभीषिका कभी भूकंप बनकर धरती पर आ चुकी है।

एक ओर इन आपदाओं ने मानवता को संकट में डाला है तो दूसरी ओर आपदाओं से संघर्ष कर उनसे जूझने और जीतने वाले मानव को व्यक्तित्व विकास के अवसर प्रदान किए हैं, साहित्यकारों ने इस चुनौती को स्वीकारते हुए तात्कालिक समस्याओं के ब्याज से वैश्विक आपदाओं के सर्वकालिक अमोघ समाधान प्रस्तुत किए हैं।

मनोबल की प्रेरक शक्ति : साहित्य

वैश्विक आपदा के प्रत्येक पहलू से साहित्य टक्कर लेता है, जीतने की प्रेरणा देता है। युद्ध में शहीद हुए वीर की वीरांगना किस गौरव से कहती है और शहादत की कुशल मनाती है -

"भल्ला हुआ जो मारिया, बहिणी म्हारा कंतुं
लज्जेजंतु वयस्सयहु, जई भग्गा घर एंतुं।"[4]

साहित्य का ऐसा स्वरूप वंदनीय है जो मानव को अवसाद से मुक्त करते हुए अदम्य जिजीविषा, आत्मविश्वास और उल्लास से परिपूर्ण करता है। आपदा में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास जगाता प्रसंग कितना मनभावन है जिसमें राम को रथ विहीन और रावण को रथ पर सवार देख विभीषण व्याकुल हैं। साधन सुविधा विहीन व्याकुल अवसन्न मन में साधन संपन्न वर्ग को देख प्रश्न उठता है।

'रावण रथी विरथ रघुवीरा ।' साहित्य से आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता के स्वर उठते हैं-

"सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल विवेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे॥"[5]

अवसान के, पराजय के क्षणों पर शौर्य, धैर्य, सत्य, शील, बल, विवेक, क्षमा, कृपा, समता जैसी सात्विक वृत्तियों और आत्मविश्वास से ही जीत पाई जा सकती है।

बाज़ारवाद से टक्कर

आपदा चाहे जैसी भी हो उसका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव बाज़ारवाद को बढ़ावा देता है और बाज़ारवाद एक ऐसी अतृप्ति को जन्म देता है जो केवल तृष्णा को बढ़ावा देता है। बाज़ारवाद अर्थात अप्रतिहत महँगाई, सद्भाव की कमी। आपदा में जब बाज़ारवाद अपना जादुई मायाजाल बिछाए रखता है ऐसे में साहित्य की शक्ति ही उसे तिरोहित करती है। प्रेमचंद की कहानी ईदगाह में छोटा-सा हामिद अपनी बाल सुलभ आवश्यकताओं पर बाज़ार के मायाजाल को हावी नहीं होने देता है वो ख़रीदता भी है तो चिमटा क्योंकि चिमटा उनके लिए आवश्यक है। अनावश्यक वस्तुओं की ख़रीद बाज़ारवाद को बढ़ावा देती है यह तथ्य प्रेमचंद ने साहित्य के माध्यम से कितना सहज कर दिया है। कुछ पंक्तियाँ देखिए-हामिद वस्तु का औचित्य सिद्ध करके अपने साथियों को भी प्रेरणा देता है-

"चिमटा कितने काम की चीज़ है, रोटियाँ तवे से उतार लो, चूल्हे में सेंक लो। कोई आग माँगने आए..उसे दो.... अभी कंधे पर रखा बंदूक हो गई। हाथ में ले लिया फ़कीरों का चिमटा हो गया। चाहूँ तो इससे मंजीरे का काम ले सकता हूँ।.. मेरा बहादुर चिमटा आग में, पानी में, तूफ़ान में बराबर डटा खड़ा रहेगा..यह चिमटा, यह बहादुर, यह रुस्तमे- हिंद।"[6]

ईदगाह में हामिद के माध्यम से प्रेमचंद ने ये स्थापित किया है कि जब छोटा-सा बालक बाज़ार के जादू का पर्दाफाश कर सकता है तो आज के समय का विवेकी और चिंतनशील मानव निश्चय ही बाज़ार के इस बाजारूपन को धत्ता बता सकता है। प्रेमचंद ने हामिद के माध्यम से बाज़ारवाद से लड़ने के लिए संयम और समझदारी नामक दो हथियार दिए हैं जो हमारे समय में निश्चय ही और अधिक प्रासंगिक है।

सद्वृत्तियों की स्थापना

आपदा के समय में मानव मात्र के मन में सुप्त सद्वृत्तियों का जागरण नितांत आवश्यक है कि ऐसे में व्यक्तिगत हानि लाभ से ऊपर उठकर प्राणिमात्र के प्रति सच्ची संवेदना और सेवाभाव की उत्पत्ति में साहित्य की भूमिका उल्लेखनीय है।

सहयोग, सद्भाव और समन्वय जैसी मानवीय सद्वृत्तियों का विकास ऐसे ही संकटकाल में होता है और मानवीयता की सच्ची परख आपदा में ही होती है। 'अलोपी' शीर्षक संस्मरण में महादेवी वर्मा ने मानवीयता के संदर्भ को बहुत अच्छे शब्दों में परिभाषित किया है-"हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती, जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन उस समय होती है, जब कोई भूला-भटका द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है।"[7]

ये साहित्य की ही शक्ति है जो एक बार तो अपना अहित करने वाले का भी हित करने की उदात्तता प्रदान करती है।

व्यक्तिगत हानि लाभ से ऊपर उठकर कर्तव्यनिष्ठा का संदेश देती प्रेमचंद की एक कहानी उल्लेखनीय है-'मंत्र'[8]। मंत्र में एक अस्सी वर्षीय वृद्ध सर्पदंश से मृतप्राय एक ऐसे युवक को प्राण दान देता है जिसका डॉक्टर पिता वृद्ध के छह पुत्रों की मृत्यु के बाद बचे सातवें बीमार पुत्र के इलाज को अपनी खेलकूद की दिनचर्या के चलते समय नहीं देता है। इस प्रकार मंत्र में प्रेमचंद कर्म की शुचिता का मंत्र देते हैं तो 'पंच परमेश्वर"[9] में निष्पक्ष तटस्थ रहते हुए व्यक्तिगत राग द्वेष से मुक्त रहकर कर्म करने वाले जुम्मन शेख को 'परमेश्वर' के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं जो उत्तरदायित्व का ज्ञान होते ही संकुचित व्यवहार से ऊपर उठकर अपना निर्णय सुनाता है।

जिजीविषा

आपदा के क्षणों में साहित्य जीवन संचरणी संजीवनी का कार्य करता है। फणीश्वर नाथ रेणु की कहानी है 'पहलवान की ढोलक' जिसमें एक लोक कथा और लोक कलाकार के अप्रासंगिक होने की कथा के समानान्तर भारत पर इंडिया के अतिव्यापन की कथा है जो एक लोक कलाकार के ऐसे जीवट को रेखांकित करती है जो निरीह भूमि पर रहकर भी भूख एवं महामारी से दम तोड़ रहे गाँव को मौत से लड़ने की ताकत देता रहता है। आज कोरोना महामारी के वैश्विक संकट में हस्तकारों, कारीगरों और मज़दूरों के समक्ष जो जीविका संकट उत्पन्न हुआ है, रेणु ने 'पहलवान की ढोलक' में वही प्रश्न उठाया है कि कला की प्रासंगिकता व्यवस्था की मुखापेक्षी है अथवा उसका कोई स्वतंत्र मूल्य भी है? मनुष्यता की साधना और जीवन सौंदर्य के लिए लोक कलाओं को प्रासंगिक बनाए रखने हेतु हमारी क्या भूमिका हो सकती है? कहानी पीड़ित और शोषित को अदम्य जीवट के साथ संघर्ष की प्रेरणा देती है।-"अकस्मात गाँव पर यह वज्रपात हुआ। पहले अनावृष्टि, फिर अन्न की कमी, तब मलेरिया और हैजे ने मिलकर गाँव को भूनना शुरू कर दिया।...'पहलवान की ढोलक'...गाँव के अर्द्धमृत, औषधि उपचार पथ्य विहीन प्राणियों में वह संजीवनी शक्ति ही भरती थी।....अवश्य ही ढोलक की आवाज़ में न तो बुख़ार हटाने का कोई गुण था और न महामारी की सर्वनाश शक्ति को रोकने की शक्ति ही, पर इसमें संदेह नहीं कि मरते हुए प्राणियों को आँखें मूँदते समय कोई तक़लीफ़ नहीं होती थी, मृत्यु से वे डरते नहीं थे।"[10] क्या कहती है पहलवान की ढोलक? यदि कान देकर सुना जाए तो स्पष्ट रूप से वह ताल ठोककर कह रही है कि किसी भी आपदा या संकट का सामना अपने संपूर्ण जीवट के साथ करना चाहिए।

ये साहित्य की संजीवनी ही तो है जो कहानी के भीतर और बाहर के प्राणियों को अवसाद से कोसों दूर जाने की शक्ति देती है।

अवसाद पर जीत

आपदा से उत्पन्न दुख और दरिद्रता अवसाद को जन्म देते हैं ऐसे में अवसाद से लड़ने की संजीवनी शक्ति साहित्य में मिलती

है। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास एक दीन-हीन, वंचित-लफँठित पात्र है जो अपनी झोपड़ी और उसमें रखी धन की पोटली के नष्ट होने पर एक बार तो व्यथित होता है पर अगले ही क्षण प्रेमचंद ने बच्चों के संवाद के माध्यम से उसके अवसाद को तिरोहित किया है और सदा सर्वदा के लिए अवसाद से लड़ने हेतु एक सूत्र वाक्य दिया है कि खेल में तो बच्चे भी रोना बुरा समझते हैं। जी हाँ ये जीवन एक खेल ही तो है जिसमें सुख-दुख की पारी क्रमशः आती जाती रहती है। अदम्य जिजीविषा की प्रेरणा देती रंगभूमि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य है -

"कितनी बुरी बात है! लड़के भी खेल में रोना बुरा समझते हैं...सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाज़ी-पर-बाजी हारते हैं, चोट पर चोट खाते हैं, धक्के-पर-धक्के सहते हैं पर मैदान में डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोडती, दिल पर मालिन्य के छींटे भी नहीं आते, न किसी से जलते हैं, न चिढ़ते हैं। खेल में रोना कैसा ?"[11]

कितने सहज शब्दों में अबूझ पहेली को सुलझाया गया है साहित्य के माध्यम से। शब्द दर शब्द, इबारत दर इबारत, पुस्तक दर पुस्तक साहित्य और शिक्षा ने एक ऐसा अभेद दुर्ग निर्मित किया है जो हर आपदा से हमारी रक्षा-सुरक्षा कर सकता है। साहित्य और शिक्षा हमारे अक्षय अमोघ अस्त्र हैं जो भौतिक तथा मानसिक दोनों प्रकार की आपदाओं में हमे अडिग रहकर न केवल मुकाबला करने की शक्ति देते हैं अपितु निश्चित जीत का आश्वासन भी देते हैं।

सत्ता और शासन में उत्तरदायित्व का बोध

आपदा से त्रस्त जनमानस को जब कभी शासन या सत्ता उपेक्षित करती है तो साहित्य निर्भीक होकर उत्तरदायित्व का बोध कराने के लिए तत्पर रहता है। रीति सिद्ध कवि बिहारी ने नवोढ़ा के प्रेम में व्यस्त जयपुर नरेश जयसिँह का ध्यान प्रजाहितों की ओर आकृष्ट करने के लिए दोहा लिखा था -

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सो बंध्यो आगे कौन हवाल॥"[12]

इस प्रकार साहित्य उत्तरदायित्व के प्रति सावचेत करता है।

अभिनव खोज और नवाचार

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। आपदा के दौर ने एक ओर नई परिस्थितियाँ उत्पन्न की तो उन परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बचाने और जीवन को सुचारु और समुन्नत बनाने के लिए मानव को अभिनव खोज और नवाचार की प्रेरणा मिली है। आपदाग्रस्त मानव को कैसे द्वंद, तनाव और चिंता के बीच नवाचार की प्रेरणा मिलती है इसे जयशंकर प्रसाद जी के ध्रुवस्वामिनी नाटक में एक पंक्ति में दर्शाया गया है-"मेघसंकुल आकाश की तरह जिसका भविष्य घिरा हो, उसकी बुद्धि को तो बिजली के समान चमकना ही चाहिए।"[13]

निष्कर्षतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि आपदा और उसके परिणाम चाहे कितने ही विध्वंसकारी क्यों न हों साहित्य की संजीवनी के आगे उन्हें घुटने टेकने ही पडते हैं कि संसार का सारा अंधकार मिलकर भी एक दीपक के प्रकाश को रोक नहीं सकता। आईए 'पहलवान की ढोलक' और प्रियंवद की वीणा से निकले इस जीवन संगीत को जिएँ जिसकी लय और ताल पर आपदा से आनंद की ओर जीवन का प्रबँधन संभव है।

संदर्भ :

1. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, कविता क्या है ? चिंतामणि भाग-1, इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, 1919 ईस्वी, पृष्ठ 141
2. बच्चन, हरिवंशराय, क्या भूलूँ क्या याद करूँ, राजपाल एंड सन्ज कश्मीरी गेट दिल्ली, पाँचवा संस्करण 2002 ईस्वी पृष्ठ 44
3. अज्ञेय, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन, असाध्य वीणा (आँगन के पार द्वार), भारतीय ज्ञानपीठ काशी, प्रथम संस्करण 1961 ईस्वी, पृष्ठ 73 से 88
4. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, (अपभ्रंश काल), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1929 ईस्वी
5. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (लंकाकांड), गीता प्रेस गोरखपुर
6. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-1 (ईदगाह), सरस्वती प्रेस बनारस, संस्करण-छठवां, पृष्ठ 34-47, 1947 ईस्वी
7. वर्मा, महादेवी, अतीत के चलचित्र (अलोपी, पृष्ठ 150, 151) भारती भंडार, लीडर प्रेस इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1941 ईस्वी
8. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-5 (मंत्र), सरस्वती प्रेस बनारस, प्रथम संस्करण, 1946 ईस्वी
9. प्रेमचंद, मानसरोवर भाग-7 (पंच परमेश्वर), दिल्ली पुस्तक सदन, 2008 ईस्वी
10. संपादक-यायावर, भारत, फणीश्वर नाथ रेणु की श्रेष्ठ कहानियाँ, (पहलवान की ढोलक), नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया 2004 ई.
11. प्रेमचंद, रंगभूमि, सरस्वती प्रेस बनारस, 1925 ईस्वी
12. संपादक-जगन्नाथ दास रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2013
13. प्रसाद, जयशंकर, ध्रुव स्वामिनी, लोक भारती प्रकाशन

❖

व्याख्याता हिंदी, तिरूपति नगर, झारेड़ा रोड के पास
हिंडौन सिटी, जिला-करौली, राजस्थान-322230
मोबाइल 9887202097 ई-मेल : kpathakhnd6@gmail.com

भारतीय ज्ञान परंपरा : जनहित-राष्ट्रहित की सिद्धि

— डॉ. आनंद पाटील

आज युवाओं की प्रवृत्ति जोड़ने की अपेक्षा तोड़ने-फोड़ने (टुकड़े-टुकड़े करने) की ओर अधिक है। यह जानते हुए भी कि 'हिंसक' होने का अर्थ 'विचारहीन-दिशाहीन' होना है, भारत के युवा उसी दिशाहीनता के शिकार हैं! "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः" में निहित विचार दर्शन को पुनः स्मरण करने की ज़रूरत है। सर्वज्ञात तथ्य है कि विद्यार्थी प्रायः चंद स्वार्थांध राजनीतिज्ञों के मोहरे बनते रहे हैं। इधर ऐसे नेता उभरकर आए (आ रहे?) हैं, जिनका भारत के तत्व-सत्व (सत्य-वृत्त) से अभी परिचय भी नहीं है! वे अलग-अलग मंचों से, देश ही नहीं विदेश में भी अपना ही भोंपू बजाने और राष्ट्र की महिमा पर लांछन लगाने की जुगत में हैं।

अस्तबल में बँधे-बँधे घोड़ा बिगड़ता है। बिना सैन्य अभ्यास के जवान बिगड़ता है। बिना भाँजे म्यान में रखी तलवार धार खो देती है। बिना सफ़ाई के बंदूक अवरुद्ध हो जाती है। बिना ज्ञान अनुशासन के विद्यार्थी जीवन मर्म खो देते हैं। बिना संस्कारों और कालोचित जीवन मूल्यों के व्यक्ति-परिवार-समाज की नींव खोखली हो जाती है। इसीलिए घोड़े को सिर्फ़ चना खिला कर अस्तबल में बाँध कर रखा नहीं जाता प्रत्युत उसे प्रतिदिन दौड़ाया जाता है ताकि उसका चाल-चलन और गति बेहतर बनी रहे। सेना के जवानों को सुबह-सुबह क़सरत क़वायद और सेनाभ्यास कराया जाता है ताकि अयाचित जंग की तैयारी नित्यक्रम चलती रहे। तलवारें नित दिन भाँजी जाती हैं ताकि योद्धा और तलवार, दोनों की धार बरक़रार रहे-उसमें मोरचा (जंग) न लगे और वह अपना तेज़ न खो दे। गोली धाँय-धाँय चले न चले, बंदूक की नियमित सफ़ाई ज़रूरी होती है ताकि उसके पुर्ज़ों में मोरचा न लग जाए और अयाचित संकट की स्थिति में अचूक तथा अबाध चले। बिना अनुशासन के विद्यार्थी का जीवन गर्त में खो जाता है-नारकीय हो जाता है। इसीलिए विद्यार्थियों को शैशव से ही अनुशासन और संस्कार सिखाए जाते हैं। अनुशासनहीन व्यक्ति पशु समान ('पसु बिन पूँछ विषान') होता है। अनुशासन विहीन व्यक्तियों (असामाजिक तत्व?) से बने समाज की नींव खोखली ही रह जाती है। इसीलिए वह बेहतर भविष्य के स्रष्टा नहीं हो सकते। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ज्ञान अनुशासन और संस्कार नींव की ईंट-बजरी-चूना-पत्थर-मृत्तिका के समान हैं।

जो देश, समाज अपनी पीढ़ी को संस्कार, अनुशासन, जीवन मूल्य नहीं दे पाते हैं, वे समय के बहाव में कट्टरता, बर्बरता और पतन के अंधतमस से घिर जाते हैं। आज धर्म राज्यों (theocratic states) की स्थिति (दुर्दशा?) पूरा विश्व भलीभाँति जानता ही है। ऐसे में भारतीयों को पश्चिम से आयातित अव्यावहारिक, भारतीय समाजहित से विलग

अनादृत सिद्धांतों की सड़ांध से बचना चाहिए और प्राचीन भारतीय विद्या परंपरा की ओर पुनः प्रस्थान करना चाहिए। भारत के प्राचीन ग्रंथज्ञानानुशासन, शांति, सहनशीलता, परोपकार, धर्मपरायणता के साथ-साथ कर्मवादिता का संदेश देते हैं। युद्ध से कुछ क्षण पूर्व भी युद्ध से बचने-बचाने की कोशिश क़वायद कदाचित ही विश्व के किसी देश में दिखाई देगी। इस दृष्टि से भी निश्चय ही हमें अपने ग्रंथों और ज्ञान-परंपरा की ओर लौटने की ज़रूरत है।

'प्रगतिशीलता' के नाम पर युवाओं के दिमाग में जो नग्न यथार्थ का 'फ़्लैश' और 'ब्लैक' डाला गया और डाला जा रहा है, वह केवल हिंसात्मक ऊर्जा को ही जन्म दे रहा है। इसीलिए देश में आगजनी, पत्थरबाजी, बमबारी, आत्मघाती हमले, लूटमार, आतंकवादी, नक्सलवादी, माओवादी हिंसा, सरकारी संपत्ति की तोड़फोड़ और स्वाहा करना इत्यादि वारदातें दिखाई सुनाई दे रही हैं। मानवीय संवेदना और मूल्यों की निरंतर होली हो रही है। मानवीयता को संकट में डालने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है। युवा अविरत सुनियोजित ढंग से ब्रेन वॉश करने वाले मनोविकारग्रस्त बुद्धिजीवियों की संगत में स्व-हित और राष्ट्र-हित को ताक पर रखकर उनके भ्रष्ट कलुषित असामाजिक विचार एवं संकल्प का शिकार हो रहे हैं।

आज देश को विचारशील, आदर्शवादी, आदर्शोन्मुखी प्रतिभाओं की आवश्यकता है, ताकि देश में शांति एवं सुरक्षा स्थापित हो सके। अशांति, असुरक्षा फैलाने का प्रयास जो अभारतीय, अव्यावहारिक सिद्धांतवादी, अलगाववादी कर रहे हैं, उनका सतत खंडन होना चाहिए। देश को जोड़े रखने वाले सहृदय, संवेदनशील सामाजिकों की आवश्यकता है, न कि तोड़ने-फोड़ने-फाड़ने (टुकड़े-टुकड़े गैंग) वालों की, जो हर नई शक़्लो-सूरत में हर जगह, शहरों से लेकर जंगलों तक फैले हुए हैं। हमें जंगलराज नहीं, रामराज्य की चाह होनी चाहिए और आवश्यकता उसी की है ताकि समाज में समन्वय, सद्भाव, शांति, सौहार्द बना रह सके। आज सबका दायित्व है कि सर्वधर्म समभाव की भावना को दृढ़ कर राष्ट्र प्रेम जगाएँ। सर्वोपरि यदि कुछ है तो 'राष्ट्र' है और हमारा देश तथा देशवासियों के लिए 'प्रेम' है। यह राष्ट्र और इसके लिए हमारा प्रेम सदैव बना ही न रहे प्रत्युत उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाए-पागलपन के हद तक! यह एक तरह से इस सदी के भारतीय नवजागरण की नई कड़ी होगी, जिसमें सड़ांध और आयातित अव्यावहारिक सिद्धांतों को ताक पर रखकर नए भारत का निर्माण किया जा सकेगा।

ऐसे विकट समय में भारतीयता पर बात करना ख़तरे से भरा काम है। हर जगह अपने-अपने, अपनी ही क़िस्म के 'नैरेटिव' तैयार हो रहे हैं और उन पर नित-नवीन वितण्डा खड़ा किया जा रहा है। महाविद्यालयों-विश्वविद्यालयों को अखाड़ों में तब्दील किया जा रहा है। पाश्चात्य सिद्धांतों पर आधारित ज्ञान के नाम पर विद्यार्थियों में विचार चिंतन दर्शन कम, भटकाव उद्दंडता अधिक दृष्टिगोचर हो रही है। कविताएँ (साहित्य) लम्बे समय से एक ही ढर्रे पर लिखी और पढ़ाई जा रही हैं। ऐसे में यह सोचना और अनुभव करना कि भारतीय युवाओं को आयातित अभारतीय सिद्धांतों की अपेक्षा भारतीय जीवन दर्शन के मर्म से अवगत कराने की नितांत आवश्यकता है नए नवजागरण की माँग से कम नहीं है! आयातित सिद्धांत हमारे भारतीय परिप्रेक्ष्य में किस हद तक लागू हैं (हुए हैं?), अब तक हम यह जान ही गए हैं। जो नहीं समझ रहे हैं, वे देर-सवेर समझेंगे और जो जानने की अनिच्छा से ग्रसित हैं, उन्हें निश्चय ही अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करने की आवश्यकता है।

इस विषय संदर्भ को लेकर जब लिखने बैठा तो सोचा कि कुछ इस तरह लिखना होगा कि बहुत कुछ का स्वतः समाहार हो जाए ताकि वितण्डा न खड़ा हो जाए, जो कि आजकल सुनियोजित ढंग से खड़ा किया जा रहा है। बहरहाल, जो भारतीय ज्ञानानुशासन परंपरा तथा जीवन दर्शन

को समझते हैं, वे यह अवश्य अनुभव करेंगे कि कर्मवाद की बात करते हुए भी जनहित की ही बात कही गई है। घर पर गाँव में प्राय: कही जाने वाली कहावत यहाँ सहज स्मरणीय है 'दे रे हरि पलंगावरी' (आणि देव काही देत नाही!)। देव (सरकार?) सबकुछ ऐसे ही पलंग पर लाकर नहीं देते। हमें निर्भरता से सचेष्ट बचना चाहिए ताकि कुछ करने की ललक जाग सके। हम प्राय: सरकारों पर निर्भर होते जा रहे हैं, इसलिए जीवन में असरकारी (असरदार?) काम नहीं हो पा रहे हैं। सरकारें तो चाहती ही रही हैं कि अधिकाधिक नौकर (गुलाम?) पैदा करें, जिसकी न तो रीढ़ हो, न मुँह में ज़ुबाँ ही! हमें जानने समझने की आवश्यकता है कि व्यवस्था में मुखर कम ही मिलेंगे! हमें 'मुखर' और 'उपद्रवी' में अंतर भी करने की आवश्यकता है। प्राय: हम 'मुखर' को 'उपद्रवी' मानने की मानसिकता के शिकार होते जा रहे हैं। इसलिए सारा खेल और परिदृश्य बिगड़ रहा है।

आज युवाओं की प्रवृत्ति जोड़ने की अपेक्षा तोड़ने-फोड़ने (टुकड़े-टुकड़े करने) की ओर अधिक है। यह जानते हुए भी कि 'हिंसक' होने का अर्थ 'विचारहीन-दिशाहीन' होना है। भारत के युवा उसी दिशाहीनता के शिकार हैं! "कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा। अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभि:" में निहित विचार दर्शन को पुन: स्मरण करने की ज़रूरत है। सर्वज्ञात तथ्य है कि विद्यार्थी प्राय: चंद स्वार्थांध राजनीतिज्ञों के मोहरे बनते रहे हैं। इधर ऐसे नेता उभरकर आए (आ रहे?) हैं, जिनका भारत के तत्व-सत्व (सत्य-वृत्त) से अभी परिचय भी नहीं है! वे अलग-अलग मंचों से, देश ही नहीं विदेश में भी अपना ही भोंपू बजाने और राष्ट्र की महिमा पर लांछन लगाने की जुगत में हैं। वंशवाद से ग्रस्त तथा अव्यवहारिक सिद्धांतों का अंधानुकरण करने वाले राजनेता विश्वसनीयता खो चुके हैं। राजनीति के ऐसे दमघोंटू समय में सतह से उठकर आने वाले कितने नेता हैं? इसलिए राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से पुन: पुन: चाणक्य (विष्णु-गुप्त) को स्मरण करने की आवश्यकता है। अत: पुन: दोहराने में हानि नहीं कि भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर लौटने की आवश्यकता है।

विद्या मंदिरों में व्यावहारिकता और आदर्शोन्मुख जीवन-मर्म के पाठ जब कम होने लगते हैं तो विद्यार्थी दिशाहीन हो ही जाते हैं। 'यथार्थ' के नाम पर जो कुछ परोसा और उपद्रव मन मसितष्क में 'पंप' (इंजेक्ट) किया जा रहा है, जिससे कि चहुँओर 'भारत दुर्दशा न देखी जाई' का वातावरण बनता दिखाई दे रहा है। लाज़िमी है कि ऐसी गतिविधि (चाल-चलन) से देश का वर्तमान तो चकनाचूर हो ही रहा है, भविष्य और देशवासियों के हित भी संकटों से ग्रस्त हैं। निरंतर देखा जा सकता है कि राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ उत्पन्न की जा रही हैं। दूरदर्शन के डिबेट और एंकर अपनी शालीनता विश्वसनीयता खो चुके हैं। कुछेक एंकरों का अहंकार इतने चरम पर है कि वे अपने आपको बुद्धिजीवियों का बुद्धिजीवी मान चुके हैं। लगातार नए-नए नैरेटिव तैयार किए जा रहे हैं 'देश को मिटाओ बनाम देश बचाओ' का एक विचित्र ही दृश्य अपनी पूरी रंगत में है।

इसमें हमारे विद्यार्थी, देश के युवा कहाँ हैं? उन्हें कहाँ होना चाहिए? यह सवाल मन मस्तिष्क में बारंबार आते रहते हैं। जो देखा, जाना, अनुभव किया और बहुत कुछ जिया-भोगा, उसी के अंकन का यह प्रयास मात्र है। सबके अपने-अपने अनुभव हैं। होने भी चाहिए। असहमति हो सकती है। होनी भी चाहिए। यह अनिवार्य नहीं है कि हर कोई हर बात से सहमत हो जाए लेकिन मुद्दा यह है कि हम विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में जिस तरह की शिक्षा और जिन सिद्धांतों-विमर्शों की बात कर रहे हैं, क्या वे वास्तव में श्रमिक किसान, शोषितों-पीड़ितों का भला करने में सार्थक सिद्ध हो रहे हैं? (हुए हैं?) हमारा बुद्धिजीवी वर्ग जिन शोषितों-पीड़ितों की बात कर रहा है, उस वर्ग का जीवन सुंदर-समृद्ध करने में आयातित सिद्धांतों का क्या कोई लाभ हो रहा है? (हुआ है?) जबकि यह बुद्धिजीवी वर्ग

भारी-भरकम वेतन पाकर भी असंतुष्ट है और वेतन आयोग की अनुशंसा को चुनौती देते हुए वेतनवृद्धि के लिए आंदोलन खड़ा करने से नहीं चूका है। शोषित-पीड़ित (स्वतंत्रता प्राप्ति के अनंतर) आज भी उन्हीं विपरीत परिस्थितियों में जीवन जीने के लिए विवश है। दो जून की रोटी के लिए वह आज भी मर खप ही रहा है। किसान की अपनी समस्याएँ हैं, जिनका कभी अंत ही नहीं हुआ। वह निरंतर कभी प्रकृति तो कभी राजनीति की 'जो मार खा रोई नहीं' की यथास्थिति में हैं। 'पेट-पीठ दोनों मिलकर है एक, चल रहा लकुटिया टेक' की स्थिति से कितने शोषित-पीड़ित उबरे हैं?

कितना विरोधाभास है और कितनी विडंबना है! धन संचय, संपत्ति मोह किसी ने भी नहीं छोड़ा। हर कोई 'मेरे सभ्य नगरों के सुशिक्षित मानव' प्रगति उन्नति के नाम पर संचय का ही वरन कर रहा है और स्वप्न के भीतर एक और स्वप्न गढ़ रहा है। इसीलिए कहने की आवश्यकता महसूस हुई-भारतीयों को पश्चिम से आयातित अव्यावहारिक, भारतीय समाज हित से विलग सिद्धांतों की सड़ांध से बचना चाहिए और प्राचीन भारतीय विद्या परंपरा की ओर प्रयाण करना चाहिए। राष्ट्र के प्रति कृतघ्नसिद्धांतवादी, जनहितैषी होने का स्वांग रचने वाले राजनीतिज्ञ ही नहीं अकादमिक क्षेत्र से जुड़े लोग, तथाकथित बुद्धिजीवी और उनके निर्देशन में तत्व-सत्व हार चुके युवा बातें बहुत-सी और बड़ी-चौड़ी कर लेते हैं परंतु, उनके मन-मस्तिष्क विचारों से राष्ट्र की संरक्षा एवं सुरक्षा वस्तुत: अंतर्धान पा गई है।

निश्चय ही हमारे मन मस्तिष्क विचारों से 'गायब होता देश', 'देश की क्षणजीवी परिस्थिति की अनुभूति' (ख़स्ता हालत) और 'दीन-हीन गाँव किसान' चिंता के विषय हैं। उक्त लिखित कथन में प्रकारांतर से जनहित और राष्ट्रहित की ही बात को रेखांकित करने का प्रयास है। "भारत के प्राचीन ग्रंथ ज्ञानानुशासन, शांति, सहनशीलता, परोपकार, धर्मपरायणता के साथ साथ कर्मवादिता का संदेश देते हैं। युद्ध से कुछ क्षण पूर्व भी युद्ध से बचने-बचाने की कोशिश क़वायद शायद ही विश्व के किसी देश में दिखाई देगी। निश्चय ही हमें अपने ग्रंथों और ज्ञान परंपरा की ओर लौटने की ज़रूरत है" सरहदों पर हमारे जवान सीना ताने युद्ध करते हैं और गोली खाकर शहीद हो जाते हैं तो उनके लिए जान माल नहीं, देश और देश की जनता की संरक्षा-सुरक्षा सर्वोपरि होती है। तो प्रश्न यह है कि हमारे लिए देश/राष्ट्र सर्वोपरि क्यों नहीं होना चाहिए? हमें अपनी ज्ञान परंपरा से ही अहिंसा-शांति, सम्मान-सौहार्द और संघर्ष के अपने तौर-तरीक़े प्राप्त हो सकते हैं। वचन-विचार और जीवन-कर्म में उग्रता से देशहित, सामाजिक सौहार्द, समरसता, समभाव प्राप्त नहीं ही हो सकता। हमें अवसरवादिता और निस्सार सैद्धांतिक दासत्व से मुक्त होकर सोचने-विचारने की अनिवार्यत: आवश्यकता है। 'मेरे ग्रामों के वासी' अब यह जान गए हैं कि रटे-रटाए बयान, अभारतीय अप्रासंगिक-निस्सार सिद्धांत अब उनके मानस (समाज) में भाव प्रभाव, रस सार उत्पन्न नहीं कर सकते। भारत हो! ज्ञानानुशासन के भारतीय संस्करण हो! भारत की मौजूदा तस्वीर बदलने के लिए अवश्य ही इस सोच की आवश्यकता है। पंत की 'वाणी' से इस जागरण वक्तव्य को विराम "तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार/वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार/भव कर्म आज युग की स्थितियों से है पीड़ित/जग का रूपांतर भी जनैक्य पर अवलंबित/गगन चित शून्य—आज जग, नव निनाद से हो गुंजित, मन जड़—उसमें नव स्थितियों के गुण हो जागृत, तुम जड़ चेतन की सीमाओं के आर-पार, झंकृत भविष्य का सत्य कर सको स्वराकार।"

❖

हिंदी विभाग, तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,
तिरुवारूर-610 005 मोबाइल 94860 37432,
ई-मेल : anandpatil.hcu@gmail.com

दादा-दादी व पोता-पोती के बीच का प्यारा व सुनहरा रिश्ता

— मोनिका अग्रवाल

बाबा-दादी जो हमें सिखाते हैं वह बच्चे के जेहन में इस तरह छप जाता है जोकि वह ताउम्र नहीं भुला पाते। उनकी सीख में छिपा होता है उनका ढेर सारा प्यार और अनोखा तरीका। अब आप सोच रहे होंगे कि भला वह क्या? वह है उनके सामाजिक सरोकार वाली कहानियाँ। जो कि बात-बात पर बाबा और दादी के पिटारे से निकल आती हैं। फिर चाहे खाने-पीने की सही आदतों से जुड़ी हों या फिर सोने-जागने के वक्त से। बड़ों का कहना सुनने से जुड़ी हों या फिर जीवन में कुछ कर गुज़रने से जुड़ी। दादा-दादी अपनी कहानियों के ज़रिए बच्चों को धर्म, पंथ और राष्ट्र भक्ति से भी परिचित करवाते हैं।

आपने वह कहावत तो सुनी ही होगी की मूल धन से प्यारा ब्याज होता है। यह कहावत दादा-दादी व उनके पोता पोती के बीच के संबंध को भी दर्शाती है। आप ने लगभग सभी घरों में ही ऐसा देखा होगा कि दादा-दादी अपने बच्चों से अधिक प्रेम अपने पोते-पोतियों से करते हैं और यह देख कर आप को भी बहुत ख़ुशी होती होगी। आप के बच्चे भी आप से ज़्यादा अपने दादा-दादी को प्यार करते होंगे। इसके पीछे के कारण भी बहुत ख़ास होते हैं। दादा-दादी बच्चों को उनके माता-पिता के गुस्से से बचाते हैं, उनके खाने के लिए नई-नई चीज़ें बनाते हैं व उन्हें ढेर सारा प्यार करते हैं। ऐसा ही नाना-नानी के साथ भी होता है बल्कि कुछ बच्चों को तो अपने दादा-दादी से ज्यादा अपने नाना नानी पसंद होते हैं। आइए जानते हैं इस प्यारे रिश्ते के साथ जुड़े कुछ तथ्य।

दादा-दादी बहुत अलग व क्रेज़ी आइडिया देते हैं।

आपने देखा होगा कि जब भी आप के बच्चे अपने दादा दादी से किसी चीज़ की सलाह माँगते हैं तो उनके पास सबसे अलग व सबसे मनोरंजक आइडिया मिलेंगे जोकि आप के बच्चों को भी बहुत पसंद आते हैं। जैसे यदि आप अपने बच्चों को उनके दादा दादी के साथ हेयर कट के लिए भेजते हैं तो आप बहुत उम्मीद करते होंगे कि वह एक अच्छे से हेयर स्टाइल के साथ वापिस आएँ लेकिन होता यह है कि वह दोनो गंजे होकर आते हैं और आपकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाता है।

बहुत शांत स्वभाव के होते हैं।

चाहे आप के बच्चे कितने ही शरारती क्यों न हों परन्तु उनके दादा-दादी उन पर कभी भी गुस्सा नहीं करेंगे या उनकी शैतानियों से कभी भी तंग नहीं आएँगे बल्कि उन्हें उनकी यही हरकतें अधिक पसंद होती हैं। वह बहुत ही शांत स्वभाव के होते हैं और इसी स्वभाव से आप के बच्चों के साथ वह न केवल खेलते हैं बल्कि उनकी केयर भी करते हैं।

बहुत ज्यादा हग व किस करना

चाहे कोई भी रिश्ता हो उसमें हग व किस बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनसे एक केयर करने का अहसास होता है जिससे रिश्ते में और भी अधिक अच्छी बॉन्डिंग हो जाती है। दादा-दादी अपने पोते-पोतियों को हर रोज़ ढेरों हग व किस करते हैं। वह बच्चों के लिए भर पेट

भोजन भी बनाते हैं और उन्हें बड़े प्यार से खिलाते भी हैं। इन छोटी-छोटी चीजों से यह रिश्ता और भी मजबूत बनता है।

वह कभी गुस्सा नहीं करते

हो सकता है कि आपके बच्चे अपने दादा-दादी के चश्मे या उनके फ़ोन बहुत बार तोड़ चुके हों परन्तु फिर भी वह अपना आपा कभी नहीं खोते हैं। वह कभी भी आप के बच्चों को डाँटते नहीं हैं बल्कि एक बहुत शांत तरीके से उन्हें समझाते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए व क्या नहीं। हालाँकि उनका नुकसान होता है परन्तु वह फिर भी अपने पोते या पोती से कभी नाराज़ नहीं होते हैं।

उनकी कहानियाँ सिखाती हैं बहुत कुछ

दादा-दादी जो हमें सिखाते हैं वह बच्चे के जेहन में इस तरह छप जाता है जोकि वह ताउम्र नहीं भुला पाते। उनकी सीख में छिपा होता है उनका ढेर सारा प्यार और अनोखा तरीका। अब आप सोच रहे होंगे कि भला वह क्या? वह है उनके सामाजिक सरोकार वाली कहानियाँ। जो कि बात-बात पर दादा और दादी के पिटारे से निकल आती हैं। फिर चाहे खाने-पीने की सही आदतों से जुड़ी हों या फिर सोने-जागने के वक्त से। बड़ों का कहना सुनने से जुड़ी हों या फिर जीवन में कुछ कर गुज़रने से जुड़ी। दादा-दादी अपनी कहानियों के ज़रिए बच्चों को धर्म, पंथ और राष्ट्र भक्ति से भी परिचित करवाते हैं।

जोड़े रखते हैं बुनियाद से

समय अपनी गति से चल रहा है और उसके साथ चलते हुए हम भी बदल रह हैं। जिसके चलते जाने-अनजाने हम अपनी बुनियाद से दूर हो रहे हैं। नतीजा, आने वाली पीढ़ी उन तमाम बातों से अनजान रह जाती है जो आगे चलकर व्यवहारिक ज़िंदगी में उनके काम आने वाली हैं। दादा-दादी के साए में पलने वाले बच्चों के साथ ऐसा होने की संभावनाएँ कम रहती हैं। दादा-दादी अपने पोता-पोती को उनकी बुनियाद से समय-समय पर मिलाते रहते हैं। कई बार उनके बताए देसी-नुस्खे बच्चों की सेहत से जुड़े मसलों जैसे खाँसी-ज़ुख़ाम, पेट दर्द, कान दर्द आदि को जल्दी से ठीक कर देते हैं।

उनका तजुर्बा आता है काम

दादा और दादी की छत्रछाया बच्चों के लिए उस वट वृक्ष की तरह होती है जो गर्म हवाओं के थपेड़ों के बीच भी राहत का अहसास करा जाएँ। दादा-दादी की ज़िंदगी का तजुर्बा बच्चों के लिए जैकपॉट से कम नहीं। ज़िंदगी की व्यवहारिक कसौटी पर दादा-दादी का तजुर्बा उनकी मुश्किलें झट से आसान बना जाता है। दादा-दादी की नसीहतें बच्चों के मनोबल के साथ उनकी सकारात्मकता में भी इज़ाफ़ा करती हैं।

एक बार फिर जीते हैं बचपन

दादा-दादी बच्चों के साथ बच्चे बन जाते हैं। उनके लिए ऐसा कर पाना इसलिए सम्भव होता है क्योंकि वह अपने पोता-पोती के साथ एक बार फिर से बचपन जीते हैं। और उनमें अपना अक्स देखते हैं। या यूँ कहें कि बच्चों के साथ बच्चा बनकर वह यादों के झरोंखों से अपने बचपन में जा पाते हैं।

उनके रहते नहीं होते है बच्चे अकेले

ज़िंदगी की आपाधापी में बच्चों के माता-पिता अक्सर व्यस्त होते हैं। कई बार उनके पास इतना भी वक्त नहीं होता कि वह बच्चों के साथ बैठकर उनकी परेशानियाँ या ख़ुशियाँ साझा कर पाएँ। ऐसे में वह ख़ुद को अकेला महसूस करते हैं। दादा-दादी की मौजूदगी में ऐसा नहीं होता। बल्कि अगर यह कहा जाए कि दादा-दादी के होने पर वह ज़्यादा संजीदगी के साथ बच्चों की परेशानियों को साझा करते हैं और ख़ुशियों पर भी दिल खोलकर ख़ुश होते हैं।

रिश्तें पर लगाते हैं मरहम

जब कभी भी बच्चे माता-पिता के बीच के तकरार को भाँप कर उनके बीच सुलह कराने की कोशिश करते हैं तो उसमें दादा और दादी अपने लाडलों की भरपूर मदद करते नज़र आते हैं। वह न सिर्फ़ बच्चों को सलाह देते नज़र आते हैं बल्कि उनके साथ उनके प्लान का हिस्सा बनने में भी गुरेज़ नहीं करते। इतने पर ही बस नहीं होता। माता-पिता और बच्चों के बीच छिड़ी जंग में भी शांतिदूत बन कर सामने आते हैं। उनके लिए ऐसा इसलिए संभव हो जाता है

क्योंकि बच्चे माता-पिता से भी ज़्यादा अपने दादा-दादी का कहना मानते हैं। दादा-दादी अपने पोता-पोती को माँ और पापा की डाँट से भी कई बार बचाते हैं।

होते हैं बच्चों के इन्साइक्लोपीडिया

बाल मन ढेरों सवालों से भरा होता है। उन मासूम सवालों के जवाब यदि उनको समय रहते न मिलें तो उनकी जिज्ञासा में इज़ाफा तेज़ी से होने लग जाता है। और वह ख़ुद से अपने सवालों के जवाब तलाशते हैं। कई बार उन्हें जवाब मिल जाते हैं कई बार वह कयास लगाते हैं जो उनकी सोच को दिशा बना देता है। दादा-दादी बच्चों की उन जिज्ञासाओं को समय रहते न सिर्फ़ ख़त्म करते हैं बल्कि एकदम सटीक जवाब देकर उन्हें पथ भ्रष्ट होने से बचाते हैं।

होते हैं बच्चों के सेविंग बैंक

बच्चों में हर चीज़ को हासिल करने की ज़िद होती है। वह अपनी पसंद के खिलौने, टॉफ़ी, चॉकलेट, बुक वगैरह में कोई भी कम्प्रोमाइज़ नहीं करना चाहते। माँ और पापा के चलते उनकी हर ज़िद पूरी नहीं हो पाती जबकि दादा-दादी आसानी से उनकी हर फ़रमाईश को पूरा कर देते हैं। तो हुए न दादा और दादी बच्चों के सेविंग बैंक।

माता-पिता की भूमिका भी है ज़रूरी

यक़ीनन दादा-दादी के साथ उनके पोता-पोती की बॉडिंग ज़बरदस्त होती है। पर यह बात भी उतनी ही सच है कि इस रिश्ते की मिठास को और भी मीठा बनाने में माता-पिता की भूमिका होती है। अगर इन दो पीढ़ियों के बीच नज़रिए का फ़र्क़ आने लगे तब माता पिता की ज़िम्मेदारी शुरू होती है। ऐसे में माता-पिता को समय-समय पर बच्चे के सामने दादा-दादी की तारीफ़ करनी चाहिए उन्हें पूरा सम्मान देना चाहिए। ताकि भूलकर भी बच्चा दादा और दादी को नज़रअंदाज़ न करे। बच्चे को अहसास कराइए कि दादा और दादी उनके लिए कितने ज़रूरी होते हैं।

इमोश्नली भी बनते हैं स्ट्रांग

जब बच्चे अपने दादा-दादी के साथ बहुत समय बिताते हैं, तो उन्हें इस बात की बेहतर समझ होती है कि किसी भावनात्मक या व्यवहार संबंधी समस्या से कैसे निपटा जाए। ये चीज़ें उन्हें बड़े होने के साथ किसी भी तरह के आघात का सामना करने में सक्षम बनाती है। ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चला है कि दादा-दादी के संपर्क में रहने वाले बच्चे अकेलेपन, चिंता और अवसाद जैसी समस्याओं से कम पीड़ित हैं। वे हर तरह से जीना सीखते हैं और हर मुश्किल को हल करना जानते हैं।

नैतिक शिक्षा

मुख्य रूप से, माता-पिता का काम अपने बच्चों में अच्छे संस्कार, नैतिकता पैदा करना और उन्हें सहानुभूति और दया सिखाना है। दादा-दादी विश्वास, प्रेम और प्रारंभिक शिक्षा के स्तंभ के रूप में कार्य करते हैं। वे बच्चों को अच्छी कहानियाँ सिखाते हैं और समझाते हैं कि जीवन में कुछ चीज़ें महत्वपूर्ण क्यों हैं। दादी-नानी की कहानियाँ बच्चों को ज्ञान देती हैं और ऐसी नैतिक कहानियों का बच्चों के जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। आपका बच्चा अपने दादा-दादी से संस्कार और नैतिकता सीखकर एक सुंदर, समझदार और सम्मानित व्यक्ति बन सकता है।

भले ही आज इंटरनेट पर दादी-दादी की कहानियाँ उपलब्ध हैं लेकिन असली मज़ा तो उनकी गोद में बैठकर ही सुनने में आता हैं। आज के मॉडर्न ज़माने में बच्चों की सोच और उनका बड़ों के प्रति प्यार कहीं खोता जा रहा है लेकिन इसके पीछे ज़िम्मेदार हम ही हैं।

अगर आप बच्चों के सिर पर संस्कारों व विचारों की गठरी बाँध कर रख देंगे तो ज़ाहिर है बच्चे इसको सहन नहीं कर पाएँगे। इसलिए आज के बदलते लाइफ़ स्टाइल में दादा-दादी को ख़ुद में बदलाव लाना होगा। बच्चों को किसी चीज़ के बारे में समझाने के लिए उनकी उम्र का बनना होगा तभी वह बातों पर ग़ौर करेंगे।

ग्रैंड पेरेंट्स भी रहते हैं ख़ुश

अपने बच्चों के साथ माता-पिता को रखने से वे न केवल आपके बच्चे को खुश और स्वस्थ रखते हैं, बल्कि यह आपके बूढ़े माता-पिता के लिए भी अच्छा है। आपके

माता-पिता आपके बच्चों के साथ रहकर ख़ुश हैं। उम्र बढ़ने के साथ माता-पिता अवसाद, अल्ज़ाइमर डिमेंशिया आदि के शिकार हो जाते हैं और ध्यान देने वाली बात यह है कि ये सभी बीमारियाँ अकेलेपन के कारण होती हैं। इसलिए, ऐसी स्थिति में, आपके माता-पिता आपके बच्चों के साथ रहकर ख़ुश और स्वस्थ रह सकते हैं।

पुरानी बातें और यादें

परिवार से जुड़ी, माता-पिता से जुड़ी और बच्चों के खुद के बचपन से जुड़ी, सारी पुरानी बातें बच्चों को ग्रैंड पेरेंट्स से ही तो पता चलती हैं। उन्हें पता चलता है कि उनके परिवार की ख़ासियत क्या है, किसने क्या ग़लती की या किसने कैसे परिवार का नाम रोशन किया। ये बातें उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं और आत्मविश्वास भी देती हैं। दादी-नानी के मुँह से सुनी ये पुरानी बातें उनके आगे के जीवन को थोड़ा और आसान बना देती हैं। इन्हीं बातों को जानने और सुनने के दौरान बच्चों की यादें भी बनती हैं, जो उनके आगे के जीवन में उन्हें अच्छी बातों के तौर पर याद रहती हैं।

मशीन नहीं ले सकती लोगों की जगह

माता-पिता कामकाजी होते हैं तो बच्चों को कंप्यूटर, मोबाइल आदि का सहारा मिल जाता है, जबकि ग्रैंड पेरेंट्स का साथ उन्हें यह सिखाता है कि मशीन लोगों की जगह नहीं ले सकती है। हमेशा फ़ोन पर व्यस्त रहने वाले पिता जी की जगह दादा-दादी ले सकते हैं, पर कंप्यूटर नहीं।

❖

कुमार कुंज, जी एम डी रोड, मुरादाबाद-244001
मोबाइल : 9568741931
ई-मेल : monikagarwal22jan@gmail.com

रचनाकारों से अनुरोध

- ★ कृपया अपनी मौलिक और अप्रकाशित रचना ही भेजें।
- ★ कृपया अपनी रचना ए-4 आकार के पेज पर ही टाइप करवाकर भेजें। ई-मेल द्वारा प्रेषित रचना यूनिकोड में टंकित करें या रचना के साथ टंकित फॉन्ट अवश्य भेजें।
- ★ कृपया लेख, कहानी एक से अधिक और कविता आदि तीन से अधिक न भेजें अन्यथा निर्णय नहीं लिया जा सकेगा।
- ★ रचना अनावश्यक रूप से लंबी न हो। अधिकतम शब्द-सीमा 3000।
- ★ रचना के साथ लेखक अपना संक्षिप्त जीवन-परिचय भी प्रेषित करें।
- ★ रचना के अंत में अपना पूरा नाम, फोन नंबर और ई-मेल पता स्पष्ट शब्दों में अवश्य लिखें।
- ★ रचना के साथ विषय से संबंधित चित्र अथवा कहानी के साथ विषय से संबंधित कलाकृतियों का चित्र भी भेज सकते हैं।
- ★ यदि संस्कृत के श्लोक अथवा उर्दू के शेर आदि उद्धृत किए गए हैं, वर्तनी को कृपया भली-भाँति जाँच लें।
- ★ यदि फोटो कॉपी भेज रहे हों तो सुनिश्चित कर लें कि वह सुस्पष्ट एवं पठनीय हो।
- ★ रचनाएँ किसी भी दशा में लौटाई नहीं जाएँगी। अत: प्रतिलिपि (फोटो कॉपी) अपने पास अवश्य सुरक्षित रखें।
- ★ स्वीकृत रचनाएँ यथासमय प्रकाशित की जाएँगी।
- ★ आप अपने सुझाव या प्रतिक्रिया कृपया pohindi.iccr@nic.in पर प्रेषित कर सकते हैं।

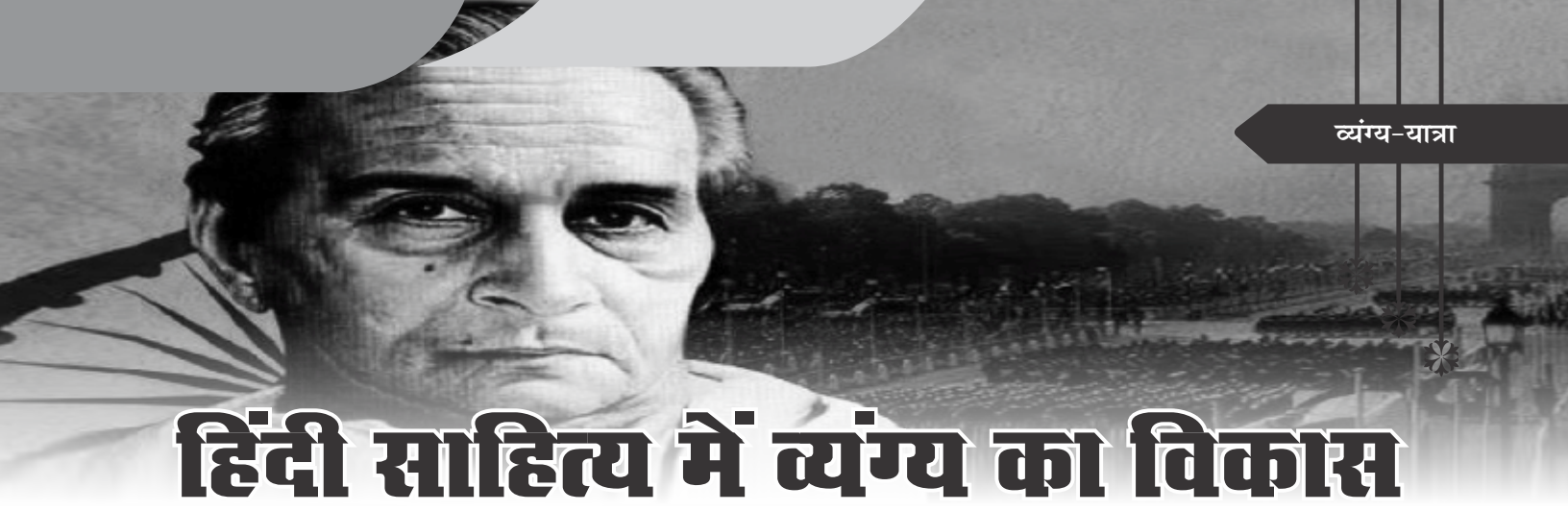

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का विकास

— चुन्नीलाल

"व्यंग्य की सार्थक पहल भारतेन्दु युग से आरंभ हुई, किंतु स्वतंत्रता के बाद इसका स्वरूप और भी तीक्ष्ण एवं प्रभावशाली हो गया। भारतेंदु युग में जिस तरह से साहित्यकारों ने व्यंग्य की नब्ज पकड़ कर विदेशी नीतियों पर व्यंग्य प्रहार किए, उसी प्रकार स्वतंत्रता के बाद व्यंग्यकारों का एक बहुत बड़ा दल सामने आया, जिन्होंने साहित्य के माध्यम से देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि क्षेत्र में फैली विसंगतियों और इसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का पर्दाफाश किया। दामोदर दत्त दीक्षित के अनुसार-"स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। व्यवस्था से जुड़े लोगों की कथनी और करनी के अंतर उजागर होने लगे। स्वतंत्रता के जो सपने देखे गए, वे पूरे नहीं हुए। समाज की पुरानी विकृतियाँ गई नहीं, नई-नई पैदा होने लगीं। स्वाभाविक ही था कि लेखक व्यंग्य-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए।"

प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी व्यंग्य की विकास परंपरा को तीन खंडों में-आरंभिक युग, स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर युग में विभाजित करते हुए हिंदी साहित्य में व्यंग्य का महत्व और व्यंग्य को समृद्ध करने में व्यंग्यकारों के प्रदेय का अवलोकन है।

पूर्व समय में व्यंग्य विभिन्न विधाओं के साथ जुड़कर विसंगतियों पर हस्तक्षेप करता रहा। उनका किसी तरह का स्वतंत्र असितत्व नहीं था। व्यंग्य-आलोचकों ने भी व्यंग्य को स्वतंत्र विधा मानने से इंकार किया। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक व्यंग्य-शैली के रूप में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि में प्रयुक्त होते रहे, किंतु स्वतंत्रता के बाद व्यंग्य-लेखकों की संख्या और पाठक-वर्ग की व्यंग्य के प्रति लगन बढ़ी। यहीं से व्यंग्य को विधा के रूप में मान्यताएँ मिलने लगी। आज व्यंग्य साहित्य के साथ जुड़कर लोकप्रिय विधा बन चुका है, व्यंग्यकार व्यंग्य के विविध रूपों का प्रयोग कर समाज में फैली या बढ़ रही विसंगतियों पर कड़े प्रहार कर रहे हैं तथा पाठक-वर्ग को विसंगतियों के विभिन्न मुहावरों से परिचित करा रहे हैं। इनका लक्ष्य केवल कठोर प्रहार करना ही नहीं है, बल्कि अव्यवसिथत ढाँचों में सुधार की कामना है। व्यंग्य समाज के दु:ख-दर्द, पीड़ा के लिए एक तरह की औषधि है। शोषण के विरुद्ध सशक्त हथियार है। इन सभी विशेषताओं के कारण व्यंग्य आज साहित्य-जगत में श्रेष्ठता के धरातल पर स्थापित है।

व्यंग्य का अर्थ एवं परिभाषा

भारतीय काव्यशास्त्र में व्यंग्य को ध्वनि के अंतर्गत स्थान दिया गया है। संस्कृत साहित्य में व्यंग्य 'वि' उपसर्ग, 'णत्' प्रत्यय और 'अज्जू' धातु से मिलकर बना है। हिंदी साहित्य-कोश के अनुसार "वि तथा 'अंग' के योग से व्यंग तथा व्यंग से व्यंग्य शब्द का निर्माण हुआ है।"[1] इसी प्रकार बालेंदु शेखर तिवारी के अनुसार-"संस्कृत में व्यंग्य 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'अज्ज' धातु है, 'व्यत्' प्रत्यय के योग से उत्पन्न हुआ शब्द है, जिसके अनेक अर्थ हैं-विविक्षा के द्वारा

निर्देश, गूढ़ अथवा अप्रत्यक्ष इंगित के द्वारा निर्देश, संकेतित अर्थ और शब्द-शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ।"[2]

अंग्रेजी शब्दकोश में व्यंग्य को सटायर (Satire) से परिभाषित किया गया है, जो कि लैटिन शब्द 'सैतुरा' (Satura) से उत्पन्न हुआ है। पूर्व समय में 'सैतुरा' का प्रयोग 'परनिंदा' के लिए किया जाता था, पर अब 'सटायर' शब्द परनिंदा के साथ-साथ उलट-फेर या विडंबना के उपहास के लिए प्रयोग में लाया जाता है। "हिंदी साहित्य में व्यंग्य दुर्गुण एवं मूर्खताओं की सशक्त निंदा करता है। व्यंग्य चमत्कारपूर्ण होता है, कटाक्षयुक्त होता है। यह किसी को मीठा लगता है और आनंद देता है, किसी को कड़वा लगता है और तिलमिला देता है। यह कमियों को उजागर करने वाला प्रकाश-प्रवर्तक होता है और सुधार करने वाला कोचक हथियार होता है। हिंदी में जिसे 'सटायर' के अर्थ में व्यंग्य कहते हैं, वह गुजराती भाखा में 'कटाक्ष' मराठी में उपरोध और उर्दू में 'तन्स या हस्सो' के रूप में रूढ़ हो गया है।"[3]

व्यंग्य आज एक लोकप्रिय विधा के रूप में हमारे सामने उपस्थित है। यह कड़े प्रहार के साथ अव्यवस्था में सुधार भी है। कई विद्वानों ने इसे औषधि या दवा माना है, जो व्यक्ति-समाज के दु:ख-दर्द और पीड़ा के ख़िलाफ़ लड़ता है। "आज व्यंग्य शब्द का प्रयोग उस अर्थ में होता है, जिसमें व्यक्ति या समाज की (Satire) विकृतियों, विद्रूपताओं को सामान्य शब्दों में प्रकट न करके, विशिष्ट भंगिमा के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जो राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक आदि विभिन्न प्रकार की विसंगतियों, अंतर्विरोधों, असामंजस्यों, अन्याय, अत्याचारों, अनाचारों, आडंबरों को स्वीकार करके विविध उपहास्य एवं घृणोत्पादक तरीके पर आलोचनात्मक ढंग से चोट करता है।"[4]

व्यंग्य की परिभाषा

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने व्यंग्य की परिभाषा निम्नानुसार दिया है-

भारतीय विद्वानों एवं व्यंग्यकारों के अनुसार

हरिशंकर परसाई के अनुसार-"व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।"[5] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को कोई जवाब देना अपने को उपहासास्पद बना लेना हो।"[6]

शेरजंग गर्ग के अनुसार-"व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा भाषा को टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णत: सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णत: अगंभीर होते हुए भी गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए भी दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए भी तटस्थ लग सकती है। मखौल लगते हुए बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णत: सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की शक्ति अनिवार्य है।"[7]

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार व्यंग्य की परिभाषा

ऑक्सफ़ोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार-"व्यंग्य वह रचना है, जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का, कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है। उसका अभीष्ट किसी व्यक्ति-विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है और इस प्रकार वह एक व्यक्तिगत आक्षेप जैसा होता है।"[8]

ए. निकोल के अनुसार- "व्यंग्य इस सीमा तक कटु हो सकता है कि किंचित भी हास्यजनक न हो। व्यंग्य बहुत तीखा वार करता है। इसमें दया, विनम्रता एवं उदारता का लेश भी नहीं होता। यह व्यक्ति के शारीरिक गठन पर कभी-कभी पूरी निर्दयता से प्रहार करता है। यह व्यक्तियों के चरित्र पर आक्रमण करता है। यह युग की समूची परिस्थितियों की धज्जियाँ किसी को भी क्षमा किए बगैर उड़ाता है।"[9]

व्यंग्यकार स्विफ्ट के अनुसार- "व्यंग्य एक ऐसा दर्पण है, जिसमें झाँकने को अपनी छाया के अलावा और सभी का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है।"[10]

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का विकास

हिंदी साहित्य में व्यंग्य का आरंभ आदिकाल से माना जाता है। इस युग के सिद्ध-नाथों की काव्य-रचनाओं में व्यंग्य स्फुट रूप में दिखाई पड़ते हैं। व्यंग्य का जितना अधिक विकास आधुनिक काल के बाद हुआ, उतना पूर्व में नहीं हुआ है। आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल में व्यंग्य के छिटपुट उदाहरण मिलते हैं। दामोदर दत्त दीक्षित के अनुसार-"उदाहरण के तौर पर सिद्धों और नाथों की काव्य-रचनाओं में स्फुट रूप में व्यंग्य-दृष्टांत देखे जा सकते हैं।

'सरहपाद' के काव्य में व्यंग्य का स्वरूप पंडित-संत अक्सर सत्य का बखान करते हैं, किंतु शरीर के भीतर छुपे परम् सत्य ईश्वर को जान नहीं पाते-"पण्डिअ सअल संत कबखाणइ, देहहि रूद्र बसन्त न जाणइ।"[11]

गेरखनाथ लिखते हैं-धीर वही है जिसका चित्त विकृत नहीं होता और विकृत चित्त वाला मनुष्य कभी जोग धारण नहीं कर सकता।

"नौ लख पातरि आगे नाचै, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा"[12]

व्यंग्य के सबसे सशक्त प्रयोग कबीर की रचनाओं में मिलते हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं में कुरीतियों, अंधविश्वासों और पोंगा पंथी पर बिना लाग-लपेट के तिलमिला देने वाले प्रहार किए। भक्तिकाल के अन्य काव्य-साहित्य में विरल रूप से व्यंग्य की छवियाँ देखने को मिलती हैं। रीतिकाल में केशवदास की काव्य-कृति 'रामचंद्रिका' के संवादों में और अन्य कवियों के साहित्य में अन्योक्ति आदि के उदाहरणों में यत्र-तत्र व्यंग्य के प्रयोग देखे जा सकते हैं।"[13]

कबीरदास ने अपने समय में उपजी सामाजिक विसंगतियाँ, जैसे-हिंदू-मुस्लिम कट्टरता, जात-पात, ऊँच-नीच की भावना आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक क्षेत्र में असमानता आदि पर कड़े व्यंग्य प्रहार किए हैं। कबीरदास ने व्यंग्यात्मक कथनों का प्रयोग कर समाज को सही राह दिखाने व जागरूक करने का प्रयास किया है। इसीलिए कबीरदास को समाज सुधारक की संज्ञा दी जाती है।

कबीरदास मुस्लिम धर्म की अंधभक्ति पर व्यंग्य-प्रहार करते हुए लिखते हैं-

"दिन भर रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
यह तो ख़ून वह बंदगी कैसी खुशी खुदाय॥"[14]

इसी प्रकार कबीरदास ने हिंदू और मुस्लिम धर्म की बाह्याडंबर पर व्यंग्य-बाण छोड़ा है-

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुवा तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि॥"[15]

इसी तरह भक्तिकाल के अन्य कवि सूरदास (कृष्ण काव्य धारा) और तुलसीदास (रामभक्ति काव्यधारा) के अपने काव्य में छुटपुट व्यंग्य दिखलाई पड़ते हैं।

सूरदास ने 'भ्रमरगीत' प्रसंग में उद्धव-गोपी संवाद के अंतर्गत उपहास के लिए व्यंग्य-शैली को चुना है। गोपियाँ अपने तर्क-वितर्क से उद्धव को परास्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेती हुई कहती हैं-

"निरगुन कौन देस को वासी ?
मधुकर कहि समुझाय सौंह है, बूझति साँस न हाँसी।
कौन है जनक कौन है जननी, कौन नारि को दासी।
कैसे बरन भेस है कैसो, किहि रस में अभिलाषी॥"[16]

इसी प्रकार से तुलसीदास जी ने समाज की आर्थिक विपन्नता पर व्यंग्य-प्रहार किया है-

"खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीधमान सोच बस
कहै एक एकन सौं कहाँ जाई का करी।"[17]

भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल का आगमन हुआ, इस काल के अधिकांश कवि राजा-महाराजा के दरबार, उनके आश्रय में रहकर जीवन-यापन करते थे। इसलिए व्यंग्य लिखने का साहस इस काल के अधिकांश कवियों में नहीं था। राजा-महाराजा, सुर-सुंदरी, वैभव-विलास में मस्त रहे तो कविगण उनकी प्रशस्ति लिख गर्व महसूस करने लगे थे। इन सबके बीच बिहारी के कुछ पदों में व्यंग्य की छटा

दिखाई पड़ती है, जिसमें धार्मिक मत-मतांतरों की आलोचना की गई है-

"अपने-अपने मत लगे, बादि मचावत सोरूँ
ज्यों, त्यौं सबकौ सोइबौ एकै नंद किसोरूँ।"[18]

स्वतंत्रता पूर्व अर्थात् आधुनिक काल के भारतेंदु, द्विवेदी एवं प्रेमचंद युग में प्रचुर मात्रा में व्यंग्य लिखे गए। आधुनिक काल का आरंभ भारतेंदु युग से माना जाता है। इस काल के प्रमुख लेखक एवं कवि स्वयं भारतेन्दु हरिश्चंद्र, प्रताप नारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' है, जिनकी रचनाओं में शैलीबद्ध व्यंग्य का प्रयोग दिखलाई पड़ता है। सुधीर वाघ के अनुसार-"हिंदी साहित्य में व्यंग्य-लेखन की अविच्छिन्न परंपरा का वास्तविक प्रारंभ आधुनिक काल में हुआ। हिंदी साहित्य का आधुनिक काल इस दृष्टि से भी 'आधुनिक' और 'नया' है कि व्यंग्य ने आधुनिकता की अनुकूल धारा पाते हुए नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि गद्य की विविध विधाओं में विस्तार प्राप्त किया है। कहना असंगत न होगा कि हिंदी साहित्य में व्यंग्य को सर्वप्रथम प्रतिष्ठा भारतेंदु युग में मिली है।"[19]

भारतेंदु युग के प्रतिनिधि रचाकार स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अंग्रेज़ी शासन, सामाजिक असमानता, अंधविश्वासों, छुआछूत जैसी अनेक कुरीतियों पर व्यंग्य प्रहार किए हैं। उनकी लिखी 'अंधेर नगरी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' व्यंग्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'अंधेर नगरी' प्रहसन भ्रष्ट शासन प्रणाली पर करारा व्यंग्य है।

भारतेंदु परंपरा के अन्य रचनाकार प्रतापनारायण मिश्र ने 'समझदार की मौत', 'धोखा', 'खुशामद' व्यंग्य प्रधान रचनाओं के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर तीखी चोट की है। इसी प्रकार भारतेन्दु युग में विसंगतियों पर व्यंग्य-प्रहार के लिए बालकृष्ण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने सामाजिक जन-जागृति एवं सुधार की भावना से 'वकील', 'हाकिम', 'क्या होगा', 'खटका' जैसी हास्य-व्यंग्य प्रधान रचनाएँ लिखीं। इनके अलावा राधाचरण गोस्वामी ने 'बूढ़े मुँह मुहाँसे', किशोरी लाल गोस्वामी ने 'चोपटे-चपेट', बदरीनारायण 'प्रेमघन' ने 'विधवा विपत्ति वर्षा', 'भारत के लूटेरे' आदि महत्वपूर्ण व्यंग्य-रचनाएँ लिखी हैं, जिसमें देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य है। दामोदर दत्त दीक्षित के अनुसार-"उन्नीसवीं शाताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतेंदु युग के लेखकों को अंग्रेज़ों की दासता और शोषण उद्वेलित करता था। साथ ही गरीबी, अशिक्षा, अंधविश्वास और रूढ़ियों से ग्रस्त समाज को बदलने की, उसे आदर्श रूप देने की आकांक्षा भी मन में थी। शासकों की सीधी आलोचना कर पाना उस समय संभव नहीं था। अतः अपने विचारों को व्यक्त करने का व्यंग्य से बेहतर कोई अन्य माध्यम न था। इस नाते तत्कालीन साहित्य में व्यंग्य का प्रमुख स्थान है।"[20]

भारतेंदु युग के पश्चात् द्विवेदी युग के साहित्यकारों में व्यंग्य के प्रति रूझान कम हो गया, इस काल के व्यंग्य-लेखकों में बाबू गुलाबराय, सरदार पूर्ण सिंह, बालमुकुंद गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, चंद्रधर शर्मा गुलेरी प्रमुख हैं। चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने 'कछुआ धर्म' व्यंग्य प्रधान रचना लिखी जिसमें परिस्थितियों का मुकाबला न कर पाने वाले हिंदुओं की पलायन-वृत्ति पर कठोर व्यंग्य हैं।

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय ने 'मेरा मकान' निबंध में मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक विपन्नता का चित्रण किया है, जिसमें सस्ते दामों का लालच देकर रद्दी ज़मीन की ख़रीद-फ़रोख़्त करने वालों पर तीखा व्यंग्य है। बालमुकुंद गुप्त रचित 'शिवशंभू के चिट्ठे', 'चिट्ठे और खत' व्यंग्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस निबंध-संग्रह में लार्ड कर्जन को संबोधित करते हुए अंग्रेज़ी शासन प्रणाली और देश की ग़रीबी का आलोचनात्मक चित्रण है।

आगे चलकर गुलाबराय, बेढब बनारसी, हरिशंकर शर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि ने अपनी रचनाओं में व्यंग्य का शैलीबद्ध प्रयोग किया है। इस युग के अन्य साहित्यकार बेढब बनारसी का नाम सर्वोपरि है। इन्होंने अपनी व्यंग्य-रचनाओं से पराधीन भारत की जन-मानस में स्फ़ूर्ति भरने का कार्य किया। इनकी लिखी रचनाओं में अंग्रेज़ी सरकार की विद्रूपताओं का पर्दाफ़ाश है, साथ ही इस व्यंग्य-रचना में देश की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विसंगतियों पर व्यंग्य-चोट है-"देखिए हिंदू

जाति को किसी प्रकार का दु:ख नहीं है। इसका मान करो तो भी अपमान करो तो भी, यह बुरा नहीं मानती। आप चाहें तो इसका उदाहरण अभी देख सकते हैं। किसी हिंदू को एक लात मारिए, वह आपको देखकर सलाम करके हट जाएगा। तपस्या की चरम सीमा पर पहुँचने पर मनुष्य की ऐसी मनोवृत्ति हो जाती है।"[21] इसके अलावा 'हुक्का-पानी', 'बद अच्छा बदनाम बुरा', 'जबरदस्त का ठेंगा सिर पर' आदि व्यंग्य-रचनाएँ लिखी हैं। इसी प्रकार पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जो कि हिंदी साहित्य के ख्याति प्राप्त साहित्यकार हैं। उन्होंने 'मतवाला' में प्रकाशित हास्य-व्यंग्य पूर्व रचनाओं से सार्थक पहचान बनाई है। उनके उपन्यास 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' और 'चतुरी चमार' इस युग के व्यंग्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

व्यंग्य की सार्थक पहल भारतेन्दु युग से आरंभ हुई, किंतु स्वतंत्रता के बाद इसका स्वरूप और भी तीक्ष्ण एवं प्रभावशाली हो गया। भारतेंदु युग में जिस तरह से साहित्यकारों ने व्यंग्य की नब्ज़ पकड़ कर विदेशी नीतियों पर व्यंग्य प्रहार किए, उसी प्रकार स्वतंत्रता के बाद व्यंग्यकारों का एक बहुत बड़ा दल सामने आया, जिन्होंने साहित्य के माध्यम से देश की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि क्षेत्र में फैले विसंगतियों और इसके लिए ज़िम्मेदार व्यक्तियों का पर्दाफ़ाश किया। दामोदर दत्त दीक्षित के अनुसार-"स्वतंत्रता प्राप्ति के कुछ वर्षों बाद मोहभंग की स्थिति उत्पन्न हुई। व्यवस्था से जुड़े लोगों की कथनी और करनी के अंतर उजागर होने लगे। स्वतंत्रता के जो सपने देखे गए, वे पूरे नहीं हुए। समाज की पुरानी विकृतियाँ गई नहीं, नई-नई पैदा होने लगीं। स्वाभाविक ही था कि लेखक व्यंग्य-लेखन की ओर प्रवृत्त हुए।"[22] स्वतंत्रता के पूर्व जो व्यंग्य कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध शैली के रूप में प्रयुक्त हो रहे थे, उसे स्वतंत्र विधा के रूप में मान्यता मिलने लगी। इस युग के श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में हरिशंकर परसाई, रवींद्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल का नाम उल्लेखनीय है। हिंदी व्यंग्य को प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में इन चारों व्यंग्यकारों का महत्वपूर्ण योगदान है, जिसे स्वतंत्रता के बाद प्रथम पीढ़ी का व्यंग्यकार माना गया है। इस युग के श्रेष्ठ व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने विपुल मात्रा में व्यंग्य लिखे हैं। उनकी व्यंग्य-रचना ग़रीब, मज़दूर, शोषित, वंचित, उत्पीड़ित, मेहनतकश वर्ग के लिए सहानुभूति का केंद्र बना तो, शोषितों, अत्याचारियों के लिए जंजीर। परसाई की कुछ उल्लेखनीय व्यंग्य-रचनाएँ- 'सदाचार का ताबीज', 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'भोलाराम का जीव', 'पगडंडियों का ज़माना', 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' आदि हैं। परसाई ने 'भोलाराम का जीव' व्यंग्य-कथा में भोलाराम के माध्यम से कार्यालयी व्यवस्था की विसंगतियों का पर्दाफ़ाश किया है, तो 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' में 26 जनवरी और 15 अगस्त के अवसर पर निकाली जाने वाले झाँकियों और प्रतिनिधित्व करने वाले राज्यों पर तंज कसा है-"गणतंत्र समारोह में हर राज्य की झाँकी निकलती है। ये अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है मगर झाँकियाँ झूठ बोलती है।" इसी युग के दूसरे श्रेष्ठ व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल हैं, जिन्होंने 1968 में कालजयी उपन्यास 'रागदरबारी' लिखा, जिसके कण-कण में व्यंग्य का स्वरूप दिखलाई पड़ता है। इसके अलावा 'मकान और पहला पड़ाव', 'जहालत के पचास साल', 'कुछ ज़मीन में कुछ हवा में' आदि व्यंग्य-सृजन किए हैं। इसी कड़ी में शरद जोशी जो कि वैविध्यपूर्ण व्यंग्य-लेखक के रूप में जाने जाते हैं। वे अपनी रचनाओं के भीतर हास्य-व्यंग्य का मिश्रित प्रयोग करते हैं। उन्हें गंभीर विषयों को सहज रूप में प्रस्तुत करने में महारत है। उनके कुछ श्रेष्ठ व्यंग्य-संग्रह-'जीप पर सवार इल्लियाँ', 'रहा किनारे बैठे', 'अंधों का हाथी', 'घाव करे गंभीर', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' आदि हैं। इसी युग के चौथे श्रेष्ठ व्यंग्यकार रवींद्रनाथ त्यागी हैं, जिन्होंने अनेक व्यंग्य-रचनाएँ लिखकर व्यंग्य को प्रतिष्ठा दिलाने में अहम भूमिका अदा की है। उनके कुछ प्रमुख व्यंग्य-संग्रह-'वसन्त से पतझर तक', 'भाद्रपद की साँझ', 'पराजित पीढ़ी', 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' आदि हैं। इस युग के अन्य वरिष्ठ व्यंग्य-लेखकों में जिन्हें स्वतंत्रता के बाद द्वितीय पीढ़ी के व्यंग्य-लेखक कह

सकते हैं। लतीफ घोंघी, मनोहर श्याम जोशी, मुद्राराक्षस, नरेंद्र कोहली, शेरजंग गर्ग, श्याम सुंदर घोष, शंकर पुणतांबेकर आदि प्रमुख हैं। प्रथम एवं द्वितीय पीढ़ी की परंपरा को आगे ले जाने में तृतीय पीढ़ी के व्यंग्य-रचनाकार ज्ञान चतुर्वेदी, हरि जोशी, सुरेशकांत, सूर्यबाला, प्रेम जनमेजय, बालेंदु शेखर तिवारी, दामोदर दत्त दीक्षित, हरीश नवल, यशवंत कोठारी, गिरीराज शरण अग्रवाल आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा। चतुर्थ पीढ़ी जिसे हम समकालीन व्यंग्यकार कह सकते हैं, उनमें आलोक पुराणिक, गिरीश पंकज, सुभाष चंदर, सुशील सिद्धार्थ, स्नेहलता पाठक, निर्मल गुप्त, अर्चना चतुर्वेदी, अल्का पाठक, पूरन सरमा, श्रवण कुमार उर्मलिया, पंकज प्रसून आदि व्यंग्य-लेखन कार्य में सक्रिय हैं।

हिंदी साहित्य में व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को एक ऐसा सशक्त हथियार माना है, जो समाज में फैली विसंगतियों, आडंबरों, मिथ्याचारों पर कठोर प्रहार करता है। शोषित, उपेक्षित, असहाय, लोगों को उचित अधिकार दिलाता है। एक तरह से कहें तो व्यंग्य-साहित्य की स्वतंत्र विधा है, जो अन्य विधाओं में समाहित होकर विसंगतियों पर हस्तक्षेप करता है। व्यंग्य-लेखन में किसी व्यक्ति या समाज की अव्यवस्था को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है। बोलचाल की भाषा में व्यंग्य को हास्य, उपहास, परिहास, विडंबना, ठिठोली, वक्रोक्ति, निंदा-विनोद आदि कहा जाता है। व्यंग्य का मुख्य लक्ष्य अव्यवस्था को चुनौती देना, समाज के भीतर जागरूकता की ज़मीन तैयार करना है। इस कार्य के लिए व्यंग्यकार समाज के भीतर शल्य-चिकित्सा, गुरु और न्यायाधीश की भूमिका अदा करता है।

इसी तरह व्यंग्य की परंपरा को आगे ले जाने के लिए समयानुकूल नई-नई पीढ़ी उभर कर सामने आती रही है। वर्तमान में विपुल मात्रा में व्यंग्य लिखे-पढ़े जा रहे हैं। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर काल को व्यंग्य का चरमोत्कर्ष कहना उचित होगा।

संदर्भ :

1. वर्मा, धीरेन्द्र. हिंदी साहित्य कोश भाग-1. 1958, पृ. 804.
2. तिवारी, बालेंदु शेखर. हिंदी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य. कानपुर : अन्नपूर्णा प्रकाशन, 1978, पृ. 50.
3. वाघ, सुधीर. समकालीन हिंदी नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य. कानपुर : विकास प्रकाशन, 2009, पृ. 35.
4. वर्मा, राधेश्याम. हिंदी व्यंग्य उपन्यास. दिल्ली : निर्माण प्रकाशन, 1990, पृ. 12.
5. परसाई, हरिशंकर. सदाचार का ताबीज. दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, पृ. 10.
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 1990, पृ. 164.
7. गर्ग, शेरजंग. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य. दिल्ली : साहित्य भारतीय प्रकाशन, 1973, पृ. 27-28.
8. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका भाग-2, लंदन, प्रथम संस्करण, 1990.
9. चंदर, सुभाष. हिंदी व्यंग्य का इतिहास. दिल्ली : भावना प्रकाशन, 2008, पृ. 21.
10. वही, पृ. 21.
11. नगेंद्र, हरदयाल. हिंदी साहित्य का इतिहास. मयूर पेपर बैक्स, 2017, पृ. 46.
12. वही, पृ. 60.
13. अक्षरा : सितम्बर-अक्टूबर, 2015, पृ. 179.
14. दास, श्यामसुंदर (संपा.). कबीर ग्रंथावली. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, 2011, पृ. 212.
15. मिश्र, हृदयेश एवं पांडेय, शिवलोचन. हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 59.
16. चौधरी, तेजपाल. हिंदी व्यंग्य के बदलते प्रतिमान. जयपुर : पंचशील प्रकाशन, 2003, पृ. 12.
17. तुलसीदास. कवितावली. संस्करण 16, पृ. 163.
18. चौधरी, तेजपाल. हिंदी व्यंग्य के बदलते प्रतिमान. पृ. 66.
19. वाघ, सुधीर. समकालीन हिंदी नाटकों में राजनीतिक व्यंग्य. कानपुर : विकास प्रकाशन, 2009, पृ. 56.
20. अक्षरा : सितम्बर-अक्टूबर, 2015, पृ. 179.
21. चंदर, सुभाष. हिंदी व्यंग्य का इतिहास. दिल्ली : भावना प्रकाशन, 2008, पृ. 114.
22. अक्षरा : सितम्बर-अक्टूबर, 2015, पृ. 180.

❖

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय
रायपुर (छत्तीसगढ़), मोबाइल : 9302148050
ई-मेल : chunnisahu92@gmail.com

कॉलेज में एक दिन

— अनुराग वाजपेई

कॉलेज के गलियारे से धड़ाधड़ बहुत सारे लेक्चरर एक साथ बाहर आए। उनके चेहरों पर पसीना और गुस्सा नज़र आ रहा था। चाल में उत्तेजना थी। यह सब हमारे कस्बे के सरकारी कॉलेज के नए पुराने लेक्चरर थे। आजकल इन्हें असिस्टेंट और एसोसिएट प्रोफ़ेसर कहा जाता है। इनमें एक टीचर्स यूनियन का अध्यक्ष भी था। उसके हाथ में एक कागज़ फड़फड़ा रहा था। मैंने पूछा, यह क्या है? वह बोला तुगलकी आदेश है। हमें हफ़्ते में सत्ताईस पीरियड पढ़ाने को कहा जा रहा है। हम अध्यापक हैं, बुद्धिजीवी। कोई मज़दूर नहीं। मैंने कहा, तो क्या करोगे? वह बोला-हड़ताल करेंगे, धरना देंगे, आमरण अनशन करेंगे पर सत्ताईस पीरियड नहीं पढ़ाएँगे। उसके साथ के बाकी लेक्चरर भी सहमत थे। आमतौर पर अध्यापक लोग एक दूसरे से कम ही सहमत होते हैं लेकिन इस मुद्दे पर सब की राय एक-सी थी। अभी तक वे हफ़्ते में चौबीस पीरियड पढ़ा रहे थे। झगड़ा तीन पीरियड ज़्यादा पढ़ाने को लेकर था। तभी चपरासी आ गया। उसने इस बलिदानी जत्थे में से दो को प्रिंसिपल का संदेश दिया। प्रिंसिपल के कमरे में इससे भी बड़ा तुगलकी आदेश रखा था। इन दोनों का ट्रांसफ़र कर दिया गया था। अपनी सारी हेकड़ी भूल कर यह दोनों अब प्रिंसिपल से इस ट्रांसफ़र को कैंसिल करवाने का उपाय पूछने लगे। उपाय पूछकर बाहर निकले और सीधे स्कूटर स्टैंड पर गए। स्कूटर स्टार्ट किए और साथ के नारे लगाते अध्यापकों को वहीं छोड़कर लोकल एमएलए के घर के लिए रवाना हो गए। मैंने अध्यापकों के नेता से पूछा, क्या हुआ? वह बोला-होगा क्या, ट्रांसफ़र हो गया होगा। प्रशासन हमें तोड़ने के लिए सारे हथकंडे अपना रहा है। मैंने कहा इसमें तोड़ने की क्या बात है, ट्रांसफ़र कोई सज़ा है क्या? वह बोला सज़ा नहीं है तो और क्या है? आप जानते हैं इन्हें, एक का कोचिंग कॉलेज चलता है और दूसरे के पास ट्रैक्टर की एजेंसी है। ट्रांसफ़र हो गया तो यह काम कैसे होंगे! मैंने कहा, गुरु जी अगर यह लोग इतने ही अमीर हैं तो स्कूटर पर क्यों घूम रहे हैं? अध्यापक नेता बोला-घर जाकर देखो, दोनों के यहाँ तीन-तीन कारें हैं। पर यहाँ नहीं लाते लोगों के सामने अध्यापक ग़रीब ही बना रहे तो ठीक है। मैं अपनी जिज्ञासाओं को शांत कर रहा था तभी प्रिंसिपल साहब भी इधर आते नज़र आए। वे छोटे कद के बुद्धिजीवी थे जो घर में कमीज़ और पायजामा पहनते थे लेकिन कॉलेज हमेशा टाई लगाकर आते थे। वे उस ज़माने की यादों को संजोए हुए थे जब लड़के उनके चरण छुआ करते थे। अध्यापकों ने उन्हें सम्मान के साथ अपने बीच स्थान दिया। एक ने पूछा, सर आप इधर कैसे? प्रिंसिपल साहब बोले-मेरे कमरे में लड़के घुस आए हैं। कुर्सी के नीचे सुतली बम फोड़ दिया है। एक लेक्चरर बोला, सर पुलिस बुला लीजिए। वे बोले कल भी तो फोड़ा था। रोज़-रोज़ इन बातों पर पुलिस बुलाएँगे तो जब वास्तव में सच्चा वाला बम फूटेगा तब ये दो सिपाही भी नहीं आएँगे। फिर प्रिंसिपल साहब धीरे से हँसे और अध्यापक नेता के कंधे पर हाथ रख कर बोले-क्यों वर्मा जी, आज क्लास-वलास नहीं लेंगे क्या? वर्मा जी बोले, सर, क्या क्लास लें एक दो हों तो ले भी लें, हफ्ते में सत्ताईस क्लास कौन लेगा? प्रिंसिपल साहब बोले, भाई, सरकार का आदेश है। वैसे भी कौन से लड़के आते हैं। आप लोग हर चीज का विरोध करेंगे तो काम

कैसे चलेगा। एक लेक्चरर बोला, तो ना चले। हम सरकार की हर ग़लत बात को नहीं मानेंगे। इसी दौरान एक महिला लेक्चरर वहाँ पहुँची, इतने सारे लेक्चरर लोगों को एक साथ खड़े देख कर बोली, क्या हो गया? हड़ताल हो गई क्या? रजिस्टर निकल गया हो तो साइन कर दूँ। उन्होंने उम्मीद नहीं की थी कि प्रिंसिपल भी इन्हीं लेक्चरर्स के बीच में खड़े होंगे। वे बाहर निकले और बोले, मैडम रजिस्टर चार बजे निकलेगा अभी तो तीन ही बजे हैं। लेक्चरर साहिबा थोड़ा घबरा गईं। बोलीं, सर हम सुबह भी आए थे पर तब रजिस्टर नहीं निकला था। प्रिंसिपल साहब बोले तो आप रजिस्टर देखने आती हैं या क्लास लेने। इसी बीच दो तीन सौ लड़के नारे लगाते हुए आ गए। वे कॉलेज में प्रवेश की तारीख आगे बढ़ाने की मांग कर रहे थे। लेक्चरर्स ने बड़ी मुश्किल से प्रिंसिपल को बचाकर निकाला। लेक्चरर्स का नेता इस घेरे के बीचों बीच खड़ा था। वह अध्यापकों के एक गुट का नेता था और उसने कईयों को ट्रांसफ़र करवाने की चेतावनी दे रखी थी। एक पुरानी, लेकिन नई-सी दिखने वाली अध्यापिका आई और बोली, सर क्या मुझे आपके होते यह कॉलेज छोड़ना पड़ेगा? प्रिंसिपल साहब मुझे रिलीव कर रहे हैं। नेता वर्मा उसे एक तरफ़ ले गया और बोला आप चिंता मत करिए मैं और सक्सेना कल ही राजधानी जाएँगे और वहाँ से आप का ट्रांसफ़र कैंसिल करवा देंगे। आप तो क्लास लेती हैं। आपके डिपार्टमेंट की उस नई लेक्चरर को जो बड़ा अकड़ कर रहती है उसको यहाँ से विदा करेंगे। आप चिंता मत कीजिए। एक अध्यापक ने पूछा, क्यों वर्मा जी कैसे करवाओगे मैडम का ऑर्डर कैंसिल? वर्मा बोला, यार करेंगे कुछ इनके लिए भी। हेड ऑफ़िस में एक आनंदी बाबू हैं उनको भेंट पूजा चढ़ाएँगे। इनका नाम लिस्ट से बदल जाएगा। दूसरा अध्यापक बोला वर्मा, तुम्हें क्या करना है। यह तुम्हारे डिपार्टमेंट की थोड़े ही है। वर्मा बोला डिपार्टमेंट क्या होता है और मेरा सब्जेक्ट क्या है यह तो मैं ख़ुद ही भूल चुका हूँ। मैं तो सबका ध्यान रखता हूँ।

उधर प्रिंसिपल साहब अपने कमरे में बैठे थे। उनका कमरा छात्रों के नारों की गूँज से भरा हुआ था। लड़के उनके कमरे में बेरोकटोक आ रहे थे, जा रहे थे। दफ़्तर में ऊपर गाँधीजी एक तस्वीर में मुस्कुरा रहे थे। प्रिंसिपल कक्ष में स्टील की अलमारी थी, पर्दे के पीछे टेलीफ़ोन रखा था। टेबल मजबूत लकड़ी की थी। चार कुर्सियाँ उससे भी मजबूत थी। प्रिंसिपल साहब के चेंबर में इसके अलावा कोई सामान नहीं था। आलपिन तक अलमारी में थी। कोई माँगता तो प्रिंसिपल साहब जनेऊ से बँधी चाबी से उसे खोल कर सामान निकाल देते और अलमारी फिर बंद कर देते। मैंने प्रिंसिपल साहब से इसका रहस्य पूछा वे बोले मुझसे पहले यहाँ तीन प्रिंसिपल लगातार पिट चुके हैं। मैं यहाँ ऐसा कोई सामान नहीं रखता जिससे कोई खतरा हो। पेपरवेट से लड़के सिर फोड़ सकते हैं। कुर्सी हल्की हो तो उसे उठाकर फेंक कर मार सकते हैं। टेबल पर शीशा हो तो उसे मुक्के से तोड़ सकते हैं। दरवाज़ों पर पर्दे हों तो उससे गला घोट सकते हैं। मैंने सब हटवा दिया है। मेरी मुहर भी बाहर चपरासी को दे दी है। कॉलेज के ज्यादातर लड़के बड़े प्रतिभाशाली हैं वे मेरे हस्ताक्षर कर लेते हैं। चपरासी मोहर लगा देता है। ऑफ़िस में इसी बीच कुछ लेक्चरर आ गए और चार कुर्सियों और उनके हत्थों पर जम गए। मैंने पूछा साहब, यहाँ पढ़ाई कब शुरू होगी? वे बोले, आपको पढ़ाई की पड़ी है अभी हमारा सातवें पे कमीशन का एरियर ही नहीं बना। दो लेक्चरर जो पढ़ाना छोड़ कर एरियर बनाने के काम में लगाए गए थे, बोले बने कैसे? क्लर्क चाहते ही नहीं है कि एरियर मिल जाए। सब हमसे जलते हैं। मैंने कहा भाई बन जाएगा एरियर। आप लोग पढ़ाना तो शुरू करिए। सभी ने मुझे घूर कर देखा और एक बोला-आप को क्या पड़ी है जो सुबह से पढ़ाई के पीछे पड़े हैं। हमें मिलता ही क्या है जो दिन भर क्लास लेते रहें। इंजीनियर, डॉक्टर से कोई नहीं बोलता सब टीचर के पीछे पड़े रहते हैं। उपदेश मत दीजिए। इसी बीच प्रिंसिपल साहब ने एक और कागज निकाला। यह एक शपथ पत्र था जिस पर हर लेक्चरर को लिखना था कि वह ट्यूशन नहीं करता है। लेक्चरर्स का नेता इसे देखते ही फाड़ने को दौड़ा। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे। हद हो गई यह हमारा अपमान है हम कोई चोर लुटेरे हैं, हम गजेटेड अफ़सर हैं। हम नहीं भरेंगे इसे। प्रिंसिपल ने बड़े भाई की तरह समझाया बोले, देखो बेकार गुस्सा मत करो इसे भर देने से कुछ फर्क नहीं पड़ता है कौन देखने आ रहा है। बात सबकी समझ में आ गई और उन्होंने वह शपथ पत्र

क्रमशः ..... पृष्ठ 128 पर

थाने में एफआईआर

— डॉ. हरीश कुमार सिंह

शर्मा जी की नई साईकल जो वे दो दिन पहले ही अपने लिए कसा के लाए थे चोर घर से रात के अंधेरे में उठा ले गए थे। चोर तो चोर ठहरे, उन्हें अगर चोरी करनी है तो सात तालों में बंद कीमती सामान पर हाथ साफ़ कर लेंगे फिर यह तो एक मामूली ताले वाली नई साईकल थी जिसे उठा कर ले जाने में चोरों को ज्यादा मशक्कत नहीं करनी पड़ी होगी। शर्मा जी काफ़ी दुखी थे मगर क्या करते। चोरी की रपट लिखाने के लिए थाने जाने की सलाह यार दोस्तों ने दी तो शर्मा जी टाल गए कि रहने दो, पुलिस पहले से ही काम और शरीर के बोझ की मारी है और उनकी परेशानी क्यों बढ़ाई जाए। पुलिस उनकी साइकिल खोजने में मदद करेगी और अपनी कोई कसर नहीं छोड़ेगी यह शर्मा जी को भी संदेह था। इसलिए वो थाने जाकर समय बर्बाद नहीं करना चाहते थे क्योंकि पुलिस और थानों की ख्याति से वो भलीभाँति परिचित भी थे। मगर फिर शर्मा जी ने सोचा कि आज़ादी मिले सत्तर से अधिक साल हो गए अब तो भारतेंदुजी की 'हाकीमेच्छा नामक दफ़ा' भी समाप्त हो गई होगी, उन्होंने साइकल चोरी की रपट लिखाने को थाने जाने की ओर रूख किया। थाने पहुँचे तो पता चला कि वहाँ काफ़ी भीड़ है और कोई सभ्रांत महिला, रपट लिखाने पहुँची हैं और उनके साथ पूरा कालेज स्टाफ़ भी है। असल में परीक्षा में एक छात्र को नकल करते पकड़ने पर, छात्र महिला प्राध्यापक को धक्का देकर कॉपी लेकर ही भाग गया था और जब वापस नहीं लौटा तो प्राध्यापिका महोदय रपट लिखाने थाने पहुँची थी। जो छात्र नकल करते पकड़ा गया था वह भी 'पहुँचा' हुआ था और जब उसे पता चला कि उसकी थाने में रपट की तैयारी है तो वह भी कुछ छात्र नेताओं के साथ थाने आ गया था। थानेदार प्रोफेसर साहिबा से समूचा घटनाक्रम ध्यान से सुन रहे थे और रपट लिखने की तैयारी ही थी कि थाने का फ़ोन बजा। थानेदार साहब ने फ़ोन उठाया और फ़ोन सुना। फ़ोन सुनने के बाद थानेदार जी का रवैया बदला हुआ था और जो थानेदार जी रपट लिखने की तैयारी में थे अचानक से प्रोफ़ेसर साहिबा से बोले कि जब साल भर आप अपने छात्रों को कुछ पढ़ाएँगी ही नहीं तो बेचारे छात्र नकल ही तो करेंगे और क्या करेंगे।

प्रोफेसर भी खुर्राट थीं बोली कि देखिए ज्यादा ज्ञान न दीजिए जो आपकी ड्यूटी है वो निभाइए और एफआईआर याने प्रथम सूचना रिपोर्ट तुरंत दर्ज कीजिए। थानेदार हड़बड़ा रहे थे कि क्या करें, क्या न करें। अब नकलची छात्र के समर्थन में एक राजनेता भी थाने पर आ चुके थे और उन्होंने थानेदार को बताया कि अभी कुछ देर पहले आपको फ़ोन मैंने ही किया था और यह छात्र जिस पर नकल का आरोप है, ग़रीब है, और बेचारे का कैरियर ख़राब न हो इसलिए यहाँ आया हूँ। राजनेता सत्ताधारी पार्टी के नुमाइंदे थे, ज़मीनी कम हवाई ज़्यादा थे क्योंकि चंदा देकर हमेशा कुछ न कुछ पद संगठन में पा ही जाते थे। इसलिए थानेदार ने समझदारी दिखाते हुए महिला प्रोफ़ेसर को कहा कि देखिए आप समझदार हैं, दोनों पक्षों की हमें सुनना पड़ती है इसलिए अभी रपट नहीं लिखी जा सकती, पहले हम तफ़्तीश यानी जाँच करेंगे कि माजरा क्या है, आप एक कोरा कागज लो और इस पर पूरी घटना लिख कर दो। प्रोफ़ेसर बोलीं कुछ भी हो जाए यहीं थाने पर भूखी प्यासी बैठी रहूँगी धरने पर, पर बिना रपट लिखाए नहीं जाऊँगी। नकलची छात्र, राजनेता के इलाके का होकर उनका छर्रा था तो महिला

प्रोफ़ेसर भी जिस समाज की बेटी थीं उनके समाज के कर्ता-धर्ता भी आ गए थे थाने। लोकल नेता जी ज़ोर-ज़ोर से सबको सुनाते हुए बोले कि हम शिक्षकों की इज़्ज़त करते हैं उनका मान रखते हैं इसलिए प्रताड़ित छात्र को उस दूसरे थाने में रपट लिखाने से रोके हुए हैं अन्यथा...। थानेदार ने प्रोफ़ेसर से कहा कि आपके विरुद्ध भी छात्र, फ़लाने एक्ट में उस दूसरे थाने में प्रताड़ित करने का प्रकरण दर्ज करवाने जा रहा है। अगर वहाँ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज हो गई तो ज़मानत बाद में होगी, पहले गिरफ़्तारी होगी। सोच लो और आपस में समझौता कर लो। प्रोफ़ेसर बोलीं कि थाने के ये सारे दिखावटी बोर्ड हटवा दो और इन पर लिखवा लो कि हम चोर, उचक्कों और असामाजिक तत्वों की रक्षा, भक्ति और सेवा के लिए हैं। बेचारे शर्मा जी सन्न थे थानेदार की बातें सुनकर। समझ रहे थे कि यह थानेदार नहीं बोल रहा, ऊपर से सरकार बुलवा रही है। जागरूक मीडिया ने जब थानेदार से सवाल किया तो बोले कि पहले निष्पक्ष जाँच होगी और फिर दोषियों पर प्रकरण दर्ज किया जाएगा ऊपर से यही आदेश हैं। निराश शर्मा जी और हताश महिला प्रोफ़ेसर अपने अपने घर जा चुके थे। तीन दिन बाद एक सिपाही शर्मा जी को ढूँढ़ते हुए पहुँचा कि साहब ने थाने बुलाया है। शर्मा जी घबराते हुए थाने पहुँचे। थानेदार बोले कि क्या शर्मा जी आपको हम पर विश्वास नहीं है। आपने अपनी साईकल चोरी की रपट नहीं लिखाई। हमें तो रात में गश्ती के दौरान पकड़े गए इन चोरों ने बताया कि यह नई साईकल आपके यहाँ से चुराई है। आप रपट लिखाओ और अपनी नई साईकल ले जाओ। शर्मा जी हैरान थे और उनकी उम्मीदें मुस्कुरा रहीं थी मगर सोच रहे थे कि महिला प्राध्यापक की उम्मीदों पर पानी किसने फेरा।

❖

सी 1/9, ऋषि नगर, उज्जैन, मध्य प्रदेश
मोबाइल : 9425481195
ई-मेल : harishkumarsingh2010@gmail.com

..... *पृष्ठ 126 का शेष* **(कॉलेज में एक दिन)**

भर दिया। मैंने कहा पर यह तो वाकई आप लोगों का अपमान है आप लोगों की नीयत पर शक किया जा रहा है। आप लोग खुद ही क्यों नहीं कह देते कि हम ट्यूशन करने वालों की पहचान करके उनका बहिष्कार करेंगे। नेता बोला देखो तुम यार ज़्यादा होशियारी मत करो। हम ख़ुद समझदार हैं अपना मुद्दा ख़ुद निपटा लेंगे। इसी बीच डाक आ गई। एक अध्यापक ने डाक देखी। सबकी नज़र तीन खाकी रंग के सरकारी लिफ़ाफ़ों पर थी। प्रिंसिपल ने उन्हें खोला एक में आठ लेक्चरर्स के तबादलों की सूचना थी। बाकी में साधारण सर्कुलर थे जैसे समय पर आएँ, कक्षाएँ पूरी लगे वगैरा-वगैरा। एक बार फिर हड़कंप मच गया। इसी दौरान दो और लेक्चरर आए। वे सीधे राजधानी से आ रहे थे। उसी दफ़्तर से जहाँ से यह विस्फोटक लिफ़ाफ़ा आया था। इन्होंने अपने ब्रीफ़केस खोले और वैसे ही दूसरे लिफ़ाफ़े निकाले। यह उनके ट्रांसफ़र कैंसिल होने के आदेश थे। प्रिंसिपल साहब दोनों लिफ़ाफ़े देखते रहे। दोनों लेक्चरर वीरता भरी मुस्कान के साथ पसीना पोंछते हुए मटके से पानी पीने लगे। एक बोला जब तक हम चाहेंगे यही रहेंगे। वर्मा जी, आप हमारी कितनी भी शिकायत कर लीजिए हमें कोई नहीं हिला सकता। वर्मा जी जो राजधानी जाकर इन दोनों का तबादला करवा कर आए थे सन्न रह गए। बोले आप लोगों को ग़लतफ़हमी हुई है मैंने आपकी कोई शिकायत नहीं की। इसके बाद वहाँ फिर दो गुट बन गए और सारे लेक्चरर आपस में लड़ने लगे। पाँच बज गए थे। प्रिंसिपल का चपरासी ताला लिए हुए आया और उसने सबको बाहर कर दिया। वे दो खाली लिफ़ाफ़े जिनमें अध्यापकों से समय पर आने, पूरे समय रुकने और रिसर्च पर ध्यान देने के निर्देश थे उनके पैरों में लिथड़ कर फट गए। कॉलेज में एक और दिन बीत गया।

❖

1 बीएफ 4, सतलुज अपार्टमेंट, सेक्टर-2
विद्याधर नगर, जयपुर-302039 (राजस्थान)
मोबाइल : 9462021663 ई-मेल : anuragvajpeyi@gmail.com

साहित्य और संगीत : जीवन के दो छोर

— डॉ. महेंद्र प्रजापति

साहित्य और संगीत की जुगलबंदी मनुष्य के जीवन का उत्कर्ष है। रामायण, महाभारत, साहित्य वेदों, पुराणों की सभी कृतियों का संबंध साहित्य से रहा है। मध्यकालीन कविता में संगीत का अनोखा रूप देखने को मिलता है। प्रत्येक कवि संगीत-साधना करता था क्योंकि परमात्मा की वंदना के लिए कविताओं का सस्वर पाठ किया जाता था। साहित्य के विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से होती थी। भरत मुनि का 'नाट्य शास्त्र' संगीत, गीत, नृत्य तीनों से परिपूर्ण है।

संगीत, आत्मा राग और जीवन का अनुराग है। संगीत विहीन दुनिया कैसी होगी, इसकी कल्पना भी हमें डरा देती है। संस्कृत के मर्मज्ञ साहित्यकार भर्तृहरि ने अपनी बहुचर्चित रचना नीतिशतकम् में लिखा है–

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।

अर्थात् जो मनुष्य साहित्य, संगीत, कला से वंचित होता है वह बिना पूंछ तथा बिना सींगों वाले साक्षात् पशु के समान है। वह बिना घास खाए जीवित रहता है यह पशुओं के लिए निःसंदेह सौभाग्य की बात है। संगीत का आधार साहित्य है। साहित्य का आधार पीड़ा। कहने का अर्थ यह है कि साहित्य से उपजी पीड़ा संगीत से जीवंत हो उठती है। भारद्वाज मुनि और महर्षि वाल्मीकि से जुड़ा एक मार्मिक प्रसंग है। एक दिन ब्रह्म मुहूर्त में गंगा के साथ बहने वाली 'तमसा' नदी के किनारे दोनों नहाने गए। उसी स्थान पर क्रौंच पक्षी का जोड़ा प्रेम में मग्न था, उसी समय एक शिकारी ने नर क्रौंच को बाण से मार दिया। मादा क्रौंच का विलाप इतना करुण और हृदयविदारक था कि वाल्मीकि का हृदय द्रवित हो उठा। उसी समय उनके मुख से एक श्लोक फूटा–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शास्वती समा
यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्

कहने का अर्थ है कि, निषाद! तुझे कभी भी शांति न मिले, तुमने क्रौंच के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के ही हत्या कर डाली। करुणा की ऐसी ही भावनाएँ संगीत को जन्म देती हैं।

संगीत मानव-सभ्यता के विकास की संगिनी है। प्राचीन काल में देवताओं की वंदना और प्रार्थना के लिए पदों और श्लोकों का गायन होता था। भारत में तो संगीत की समृद्ध परंपरा है। राजस्थान, वाराणसी, लखनऊ जैसे सांस्कृतिक शहरों में आज भी संगीतकारों के घराने हैं। भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि यह बहुसांस्कृतिक चेतना से परिपूर्ण है इसलिए यहाँ कला की विभिन्न छवियाँ देखने को मिलती हैं। भारतीय संगीत परम्परा की विभिन्न पद्धतियाँ विश्व के अलग-अलग कोनों में मिल जाएँगी। रागों और धुनों के अद्वितीय और अनोखे रूप भारतीय संगीत में मिलते हैं।

साहित्य और संगीत की जुगलबंदी मनुष्य के जीवन का उत्कर्ष है। रामायण, महाभारत, साहित्य वेदों, पुराणों की सभी कृतियों का संबंध साहित्य से रहा है। मध्यकालीन कविता में संगीत का अनोखा रूप देखने को मिलता है। प्रत्येक कवि संगीत साधना करता था क्योंकि परमात्मा की वंदना के लिए कविताओं का सस्वर पाठ किया जाता था।

साहित्य के विभिन्न रसों की अभिव्यक्ति संगीत के माध्यम से होती थी। भरत मुनि का 'नाट्य शास्त्र' संगीत, गीत नृत्य तीनों से परिपूर्ण है। नाट्यशास्त्र में साहित्य और संगीत एक दूसरे के लिए आवश्यक माने गए हैं।

आदिकाल को आचार्य शुक्ल ने वीरगाथा काल भी कहा है। इसका संबंध संगीत से है। ढोलक, झांझड़, करताल और मंजीरे के साथ आज भी लोग ऊँचे सुर में अभिनय करते हुए आल्हा का गायन करते हैं। दरअसल, आल्हा गीत की एक विधा है जो विशेष तरह के संगीत के संयोग से गायी जाती है। भारत के बुंदेलखंड में आल्हा लोकगीत के रूप में बहुचर्चित है। एक छोटे से प्रदेश से निकल कर अब यह विश्व स्तर पर लोकप्रिय हो चुका है। वीर रस से परिपूर्ण आल्हा बुंदेलखंड ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण संगीत परम्परा है। 'आल्हा' में बुंदेलखंड के आल्हा और ऊदल के साहस और वीरता की कहानियाँ लयबद्ध सुनाई जाती हैं। जिसमें अतिशयोक्ति का भरपूर प्रयोग होता है। मूलतः बुंदेली और अवधी बोलियों में यह गायन परम्परा बहुत चर्चित है लेकिन इसकी बढ़ती लोकप्रियता ने भारत की कई भाषाओं और बोलियों पर अपना अधिकार जमा लिया है। आदिकाल के विख्यात कवि जगनिक ने बारहवीं शताब्दी में 'आल्हा' को काव्य विधा में लिखकर इसे लोकप्रिय बना दिया। आदिकालीन कवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में आल्हाखंड को पूरे मनोयोग से लिखा है। चंदबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में चौपाई, दोहा, सोरठा, छप्पय, छंद, भुजंगी, नगपाल, नीसानी, पद्धड़ी, मोतीदाम, रसावला, चन्द्रायन, हनूफाल, कुंडलियां, श्लोक, छाया कुल, ऋभंगी, मधुभार, निशानी, त्रोटक, नाराच, गीता पति, मालती, नराज, रजगति, उत्फाल, मायाकगति, रसान, निशाल, टोमर आदि का मनोरम प्रयोग कर अनेक धुनों में प्रस्तुत किया है।

बारहवीं शताब्दी में लिखित बहुचर्चित काव्य रचना 'गीतगोविन्द' में प्रेम के बहुरंगी रूप मिलते हैं। 'गीत-गोविन्द' गीति काव्य है। कृष्ण और राधा की प्रेम लीलाओं की विभिन्न छवियाँ इसमें देखने को मिलती हैं। राधा कृष्ण को मानने वाले सम्प्रदायों में गीत-गोविन्द के पदों का शास्त्रीय गायन होता है। आलोचकों का मानना है कि गीत-गोविन्द की रचना जगन्नाथ के रात्रि पूजन के समय होने वाले नृत्य के लिए की गयी। कवि जयदेव के इन पदों को संगीतकारों ने इतने मनोहारी ढंग से गाया है कि इसकी लोकप्रियता आज भी बनी हुई है। कृष्ण के जीवन के विभिन्न घटना-रूपों को पदों में ढालकर प्रेम रस की अनूठी अभिव्यक्ति की गई है।

आदिकाल के लोककवि विद्यापति के पद आज भी मिथिला में सस्वर गाए जाते हैं। उनके पदों में निहित संगीत आम जनता से सीधे संवाद करता है। वहाँ के रीति-रिवाजों और जीवन संस्कारों में विद्यापति के पद ख़ूब गाए जाते हैं। विद्यापति की पदावली मैथिली भाषा में हैं जो अपनी सरसता के लिए प्रसिद्ध है। रससिद्ध कवि विद्यापति संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। उनकी कविताओं की भाषा में देशज शब्दों के साथ छन्द, लय और ताल का अनुपम संयोग है। उनके पदों में संगीत की तमाम राग-रागिनियाँ समायी हुई हैं। राधा-कृष्ण को आधार बनाकर विद्यापति ने प्रेम विषयक रस की अद्‌भुत वर्षा की है। जीवन का सहज अनुराग संगीत के संयोग से प्रस्तुत हुआ है जो मन मोह लेता है।

भक्तिकालीन कविताओं का संगीत से गहरा लगाव है। मध्यकाल के कवियों की भक्ति-भावना का आधार ही संगीत है। कबीर दास के पदों की गायन परम्परा आज भी उसी जीवंतता से देखने को मिलती है। कबीर के आलावा सूरदास, तुलसी, मीराबाई, रैदास, गुरुनानक जैसे कवियों के यहाँ संगीत की समृद्ध परंपरा मिलती है। कृष्ण भक्ति और संगीत तो एक दूसरे के पूरक हैं। सूरदास के पदों को आज भी इस्कॉन जैसे संस्थानों में नियमित रूप से गाया जाता है। चाहे भक्ति के पद हों या वात्सल्य के अथवा प्रेम के सभी का गायन यहाँ होता है। 'मेरो मनवा अनत कहाँ सुख पावै', 'अबकी राखि लेहू भगवान', 'कामधेनु को छांडि के, छेरी कौन दुहावै' जैसे सूर के पद अपनी सहजता और सरलता के कारण लोकप्रिय हैं। सूरदास को संगीत शास्त्र का भी अद्‌भुत ज्ञान था। उनके पदों को गाने वाले गायक बड़ी सुगमता से संगीत देकर उसका गायन करते हैं। 'मैया कबहिं बढ़ेगी छोटी', 'मैया मैं तो चन्द्र खिलौना लैन्हों', 'मैया मोहि दाऊ बहुत खिजायो' जैसे बालसुलभ लीलाओं के पद तो आम जनता को कंठस्थ हैं। सूरदास के पदों में जो विनय के साथ करुणा तथा प्रेम में हठ और समर्पण का भाव है, वह अनोखा है। 'भ्रमरगीत' में इसके विभिन्न भाव देखे जा सकते हैं।

भ्रमरगीत के पदों को भारत के महान संगीतकारों ने गीतबद्ध किया है। 'मधुबन तुम कत रहत हरे', 'आयो घोष बड़ो व्योपारी' जैसे पद भाव विह्वल करते हैं। इसमें कृष्ण के प्रति गोपियों का गुस्सा और प्रेम एक साथ देखने को मिलता है। संगीतकारों ने इसे मार्मिक ढंग से संगीतबद्ध किया जिसे देशभर के गायकों ने भावपूर्ण ढंग से गाया है।

भक्ति साहित्य के सगुण और निर्गुण (राम-काव्य और कृष्ण-काव्य) दोनों धाराओं में संगीत की सुरमई प्रस्तुतियाँ देखने को मिलती हैं। मीराबाई की कविताओं को राजस्थान घरानों के कई संगीतकारों ने लयबद्ध कर देशभर में गाया है। मीरा स्वयं बहुत अच्छी संगीतकार थीं। अपने कृष्ण के प्रति उनकी भावना इन्हीं कविताओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती थी। कृष्ण केंद्रित कविताओं में मीरा ने अपनी विरह-वेदना माधुर्य प्रेम को अभिव्यक्त किया है। मीरा के पदों में कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम देखने को मिलता है। यह प्रेम, संगीत से सामाजिक अभिव्यक्ति बनाता है। 'अब तो मेरो राम नाम दूसरा न कोई', 'हे री मैं तो प्रेम-दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय', 'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरों न कोई', 'मैं अबला बौरानी' जैसे मीरा के पद मंदिरों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में खूब गाए जाते हैं।

सूफ़ी साहित्य और संगीत का अद्‌भुत समन्वय है। सूफ़ी कवियों की साधना पद्धति का मार्ग संगीत ही है। भक्तिकालीन मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन जैसे कवियों ने प्रेम, रूप माधुर्य, विरह और करुण रस की व्यंजना संगीत द्वारा ही अभिव्यक्त की है। शास्त्रीय संगीत के संगीतकारों और गीतकारों ने सूफ़ी और संत कवियों के मनोयोग से गाया है। सूफ़ी कवियों की क़व्वालियाँ बहुत चर्चित हैं। थोड़ा-सा पीछे जाएँ तो अमीर ख़ुसरों की 'छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नैना मिलइके', 'काहे को ब्याही विदेश रे, लखि बाबुल मोरे' की लोकप्रियता जन-जन में हैं। सूफ़ी कवियों के गायन में जो रोमानियत है वह किसी अन्य साहित्य में नहीं है। संगीत के प्रति अनुराग का भाव जगाने में सूफिज्म का योगदान भुलाया नहीं जा सकता है। भारतरत्न भीमसेन जोशी, पं. जसराज, श्रीमती गिरिजा देवी, लता मंगेशकर जैसे संगीत के मर्मज्ञ कलाकारों ने इनकी कविताओं का गायन किया है। सूफ़ी काव्य के गायन की लोकप्रियता हिंदु और मुसलमान दोनों में है क्योंकि अधिकतर सूफ़ी कवि भारतीय संस्कृति के क़रीब थे जिससे यहाँ के लोग उनसे सहज ही जुड़ जाते थे। राग बिलावल, मल्हार, भैरवी, वसंत जैसे राग भारतीय संगीत के प्राण-तत्व हैं। सूफ़ी-संतों और सगुण कवियों की कविताओं को थोड़ा नए संगीत में ढालकर सिनेमा में भी ख़ूब लोकप्रियता मिली है। आधुनिक साहित्य से संगीत की समृद्धशाली परंपरा धीरे-धीरे क्षीण होती गई। दिनकर, गोपाल दास नीरज, हरिवंश राय बच्चन, महादेवी वर्मा, महाप्राण निराला आदि कवियों को संगीत का ज्ञान था। छायावाद तक की कविताओं का गायन आज भी होता है क्योंकि छंद मुक्त कविताओं का आरंभ अभी तक नहीं हुआ था। 'कामायनी' का प्रत्येक सर्ग संगीतबद्ध करके गाया जा चुका है। निराला की कविताओं 'तुलसी दास', 'राम की शक्ति पूजा' पर संगीतमयी प्रस्तुतियाँ होती रही हैं। रस, छंद, अलंकार और शब्द शक्ति का अद्‌भुत सामंजस्य इन कविताओं को मार्मिक बना देता है। हरिवंशराय बच्चन 'मधुशाला' को जब गाते थे तो पूरी सभा संगीतमय हो उठती थी। उनके मुक्तकों की लोकप्रियता आज भी उसी तरह है। दिनकर की 'उर्वशी' पर कई नाटकों का मंचन और उसके पदों का गायन होता रहा है। मैथिलीशरण गुप्त के बहुचर्चित महाकाव्य 'यशोधरा' के सभी गीतों को संगीत की कसौटी पर कसा जा चुका है। 'सखि वे मुझसे कह कर जाते' को देश के कई प्रतिष्ठित संगीतकारों ने सुर दिए और गायकों ने गाया है।

इस प्रकार देखें तो साहित्य का आरंभ और आज संगीत से पगा हुआ है। साहित्य और संगीत जीवन के दो छोर हैं। एक छोर से दूसरे छोर तक जीवन के उत्कर्ष और उत्साह की अनोखी यात्रा है। संगीत न होता तो मनुष्य का जीवन रसहीन, गंधहीन, स्वादहीन होता। भारतीय समाज की बहुसांस्कृतिक चेतना ने संगीत में भी कई प्रयोग किए। कई धर्मों, संप्रदायों और संस्कृतियों ने संगीत की विभिन्न धाराओं को जन्म दिया। संगीत साधना की गरिमामयी परंपरा भारत में देखने को मिलती है। संगीतकारों और गीतकारों के अलावा साहित्यकारों ने भी काव्य रचनाओं का गायन किया। संगीत भारत की आत्मा है।

❖

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
हंसराज कॉलेज, दिल्ली
मोबाइल : 9871907081

कर्तव्य पथ पर लौटता मुख्यधारा का हिंदी सिनेमा

— संजीव श्रीवास्तव

दो हजार बीस का सिनेमा एक बार फिर हमारे जीवन और समाज के क़रीब आता दिख रहा है। मुख्यधारा का सिनेमा ज़िंदग़ी की पटरी पर रिवर्स गीयर ले रहा है। समाज, परिवार की ज़िम्मेदारियों का बख़ूबी अहसास करा रहा है। सिनेमा की यह सूरत आशान्वित करती है। जिस माध्यम के व्यवसाय को हम महज मनोरंजन का उद्योग मानते हैं, उसमें सामाजिकता और परिवार बोध की प्रखरता पहले के मुकाबले अधिक प्रबल हुई है। यहाँ गुज़रे ज़माने की भावुकता और क्षणिक थ्रिल नहीं है बल्कि इनका अपना अनुसंधान पक्ष है और इसकी वैचारिकी का धरातल भी। आज का सिनेमा समाज को साथ लेकर चलने के लिए आगे आया है। यहाँ हताशा और विध्वंस नहीं है। सोच की नई राह है। सृजन का नया पथ है। समकालीन स्त्री पक्ष का नया स्वरूप है और यही पारिवारिकता का नया आधार भी है।

गत दिनों एक फ़िल्म आई थी, नाम था-'अंग्रेज़ी मीडियम'। पिता और पुत्री की संवेदनाओं की कहानी। फ़िल्म में वर्णित हिंदी बनाम अंग्रेज़ी भाषा का ज़िक्र तो मात्र एक उपालंभ था। लेकिन फ़िल्म की कथा के केंद्र में पिता-पुत्री के भावनात्मक संबंध और पारिवारिक संस्था के प्रति प्रेम ही प्रमुखता से अनुस्यूत था। कहानी के दो स्तंभ थे; पुत्री की ज़िद और पिता का वात्सल्य। दोनों मिलकर कहानी का एक ऐसा आयाम तैयार करते हैं जहाँ पारिवारिकता की भरपूर गुंजाइश बन जाती है।

वास्तव में परिवार के सारे सदस्य एक साथ बैठकर फ़िल्म दे सकें, आज के हिंदी सिनेमा में ऐसा पारिवारिक बोध एक मरीचिका की भाँति रहा है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है सिनेमा का समय फिर से बदल रहा है। सिनेमा फिर से परिवार बोध को साथ लेकर चलना चाहता है। इस संबंध में कुछ और फ़िल्मों का ज़िक्र करने से पहले आइये हम सिनेमा में परिवार की तलाश के लिए ज़रा पीछे के दशकों में चलते हैं।

सत्तर के दशक तक अधिकाधिक सिनेमा निर्विवाद तौर पर परिवार केंद्रित सिनेमा था। जिनका सामाजिक बोध भी सुस्पष्ट था। रूमान का दायरा भी परिवार से पृथक नहीं था। किन्तु जब आपातकालीनोत्तर समाज का स्वर बदलने लगा तो सिनेमा की भाषा और चित्रावली की शैली भी बदली। फिर अस्सी के दशक तक आते-आते सिनेमा को हिंसा, अश्लीलता तथा द्विअर्थी संवादों से परहेज़ बिल्कुल नहीं रह गया। इस दौर के सिनेमा में भाषा, संवाद, संवेदना या फिर उसके प्रसंगों के सामाजिक बोध की तलाश करें तो उसके सुयोग्य उदाहरण बहुत कम नज़र आते हैं। सिल्वर स्क्रीन पर 'अवतार' एक ही बार हो सका। संगीत पक्ष गुम-सा हो गया है। गीत की शब्दावली में वो असर नहीं रहा जो साठ या सत्तर के दशक में होता था। मनोरंजनवाद का विस्फ़ोट अपने व्यावसायिक शिखर पर आ गया।

नब्बे का दशक आते-आते सिल्वर स्क्रीन पर फिर परिवार लौटा। 'हम आपके हैं कौन' के बाद 'दिल वाले दुल्हनिया ले जाएंगे' जैसा एक नया परिवारिक बोध आया। हाँ, यहाँ 'उपकार' या 'खानदान' जैसी ग्रामीण पृष्ठभूमि नहीं थी बल्कि नए शहरी भारतीयों की पारदैशिकता थी। परंपराओं के साथ गुंथी और समृद्ध भारतीयता थी, जिसकी कहानी में उल्लास पक्ष को अधिक स्वर दिया गया था। खेत-खलिहानी के बदले कॉरपोरेट और कारोबार था। चूँकि सिनेमा को अपना नया दर्शक वर्ग तलाशना था। पारिवारिकता का यह दौर सिल्वर स्क्रीन पर काफ़ी पसंद किया गया। शहर से लेकर गाँवों तक।

वहीं साल दो हजार आते-आते हमारी पारिवारिकता को नये सिरे से रामायणी आदर्शवाद का एक नया स्वरूप मिला। 'हम साथ-साथ हैं', 'कभी खुशी कभी ग़म' या कि 'बागबान' में भारतीय संस्कृति, कॉरपोरेट, बाज़ार और पर्यटन सबकुछ एक साथ था। लोकप्रियता की पराकाष्ठा हासिल करने में यह मिश्रित स्वरूप कदापि पीछे नहीं रहा। घर-घर में एकजुटता का संदेश प्रसारित करने में भी यह फ़िल्म काफ़ी हद तक कामयाब रही। इस फ़िल्म के ज़रिये गाँव से लेकर शहर ही नहीं बल्कि देश से लेकर विदेश तक हर वर्ग के दर्शकों को साध लिया गया।

सिनेमा चूँकि युगबोध का व्यवसाय है। लेकिन यहाँ नए-नए दर्शक वर्ग की तलाश भी चलती रहती है। जिस भाँति साहित्य समाज का दर्पण है, लेखक की सदिच्छाओं का आईना है उसी तरह सिनेमा भी समकालीनता का प्रितिबिंब है। आपातकालीनोत्तर सिनेमा की भाषा बदली तो उसके लिए तत्कालीन समाज की दशा बड़ी वजह थी। इससे सिनेमा की कहानी का दायरा बदला। शायद उस वक्त की यही पारिवारिकता थी। इसीलिए मैं कहता हूँ कि सिल्वर स्क्रीन भी समाज का घूमता आईना है।

तीस और चालीस के दशक के इस घूमते आईने में परिवार की ज़िम्मेदारी सुधारवाद और राष्ट्रवाद की तस्वीर थी। पचास के दशक के सिनेमा में नव निर्माण की स्वप्निलता की छाया थी। छठे दशक में जय जवान जय किसान को परिवार का साथ मिला तो सातवें दशक में हताशा और विखंडन की नई इबारत लिखी गई।

हिंदी सिनेमा में परिवार बोध अलग-अलग दौर में अपना रूप बदलता रहा है।

दो हजार बीस का सिनेमा एक बार फिर हमारे जीवन और समाज के करीब आता दिख रहा है। मुख्यधारा का सिनेमा ज़िंदगी की पटरी पर रिवर्स गीयर ले रहा है। समाज, परिवार की ज़िम्मेदारियों का बख़ूबी अहसास करा रहा है। सिनेमा की यह सूरत आशान्वित करती है। जिस माध्यम के व्यवसाय को हम महज़ मनोरंजन का उद्योग मानते हैं, उसमें सामाजिकता और परिवार बोध की प्रखरता पहले के मुकाबले अधिक प्रबल हुई है। यहाँ गुज़रे ज़माने की भावुकता और क्षणिक थ्रिल नहीं है बल्कि इनका अपना अनुसंधान पक्ष है और इसकी वैचारिकी का धरातल भी। आज का सिनेमा समाज को साथ लेकर चलने के लिए आगे आया है। यहाँ हताशा और विध्वंस नहीं है। सोच की नई राह है। सृजन का नया पथ है। समकालीन स्त्री पक्ष का नया स्वरूप है और यही पारिवारिकता का नया आधार भी है।

आज का सिनेमा फिर से नये दर्शक वर्ग की तलाश कर रहा है। लिहाज़ा नया हिंदी सिनेमा नए युगबोध से लैस हो चला है।

हमने इस लेख की शुरुआत में अंग्रेज़ी मीडियम नामक फ़िल्म का ज़िक्र किया था। चूँकि आज के सिनेमा से पिता-पुत्री संवाद गायब है। ऐसे में यह फ़िल्म पारिवारिक रिश्ते को फिर से एकसूत्र में पिरोती है। दर्शकों में एक अलग संवेदना जगाती है। वर्तमान में कई ऐसी फ़िल्में हमें नजर आती हैं जोकि नये दर्शकों की तलाश में परिवार नामक संस्था के पास से होकर गुज़रती हैं।

उल्लेखनीय है कि नब्बे का दशक लगते ही हिंदुस्तान के बड़े शहरों में मल्टीप्लेक्स संस्कृति की उपज होती है और यह सिनेमा का नया केंद्र बन जाता है। सिनेमा को एक उपभोक्ता वस्तु की तरह प्रस्तुत किया जाने लगता है। नई पीढ़ी को यह उपभोक्ता वस्तु इतनी रास आती है कि इसका फैलाव अपेक्षाकृत कम बड़े शहरों तक होता है। और यही वजह है कि इस पीढ़ी को लक्षित करके फ़िल्म निर्माण का नया चलन शुरू होता है। जिसके बाद सिल्वर स्क्रीन से परिवार और समाज धीरे-धीरे गायब होने लगता है। मल्टीप्लेक्स में आने वाली युवतम भीड़ को ही दर्शक वर्ग समझ लिया जाता है। अपने दौर के नामचीन फ़िल्म मेकर भी इस चलन के प्रति आकर्षित होते हैं। जाहिर है इससे सिनेमा की स्थायित्व गुणवत्ता में क्षरण होने लगता है। लेकिन हमारे सिनेमा की शायद यह एक बड़ी ख़ासियत है कि जो एक पल पथभ्रष्ट होता है तो दूसरे पल संभल भी जाता है। बॉक्स ऑफ़िस का व्यापार एक चलन को हमेशा बर्दाश्त नहीं कर पाता। हर दौर का सिनेमा अपने छूटे और बिछड़े हुए दर्शकों को नये सिरे से हासिल करने की कोशिश करता है।

साल दो हजार बीस आते-आते हिंदी सिनेमा फिर संभला और मल्टीप्लेक्स की युवा पीढ़ी को नई ज़िम्मेदारी का अहसास कराने लगा। इस दृष्टिकोण से पटाखा, छपाक, पंगा, गुलमकई, थप्पड़, मर्दानी-2 आदि स्त्री-विमर्श की फ़िल्में होने के साथ-साथ परिवार केंद्रित भी हैं और समाजोन्मुख भी। इन फ़िल्मों में नई पीढ़ी की स्त्रियाँ थीं लेकिन इनके साथ इनका परिवार भी खड़ा था।

हिंदी के लेखक चरणसिंह पथिक की रचना पर आधारित फ़िल्म 'पटाखा' में दो बहनों की कहानी को जिस प्रकार दो दुश्मन देशों के सीमा द्वंद्व और भौगोलिकता को प्रतीक बनाकर दिखाया गया, वहाँ मनोरंजन का मायने ही बदल गया। दो बहनें दो अलग-अलग प्रवृति और सोच को जोड़ती हैं। उनका परिवार एक ही है। मायका में एक परिवार, ससुराल में एक परिवार। दो बहनें यानी दो ज़िद। दो बहनें यानी दो विचार। दो बहनें यानी दो धुरी। लेकिन अपने भूगोल में सीमित। कहानी दो बहनों के माध्यम से दो समाज, दो परिवार की पृथकता और दो देशों की भौगोलिक विवशता को दर्शाती है। हम चाहकर भी अलग नहीं हो सकते। अर्थात् विद्वेष अथवा झगड़े किसी काम के नहीं।

इसी प्रकार गीतकार गुलज़ार की बेटी और फ़िल्म निर्देशक मेघना गुलज़ार की फ़िल्म 'छपाक' ने सिल्वर स्क्रीन पर एक युगांतकारी पहल को सामने रखा। हिंदी सिनेमा का सौंदर्य बोध, सौंदर्य प्रसाधन की चमत्कारी विज्ञापनी शैली और भाषा से कभी कम नहीं रहा लेकिन 'छपाक' ने सौंदर्यबोध की नई परिभाषा गढ़ दी। 'छपाक' लोकप्रियता के परंपरागत प्रतिमानों से सीधा हस्तक्षेप करती है। यह मुख्यधारा के सिनेमा के परंपरागत प्रतिमानों से मुठभेड़ है। फ़िल्म की मुख्य किरदार मालती ज़िंदग़ी की दुश्वारियों को सहते हुए अपने ज़ख़्म का बदला लेने में कामयाब होती है। छपाक मुख्यधारा की फ़िल्म होकर भी संदेश प्रधान फ़िल्म थी। इसमें किसी तरह के जादुई परिवर्तनवाद का सहारा नहीं लिया गया था। फ़िल्म में परिवार को साथ लेकर चलने वाली स्त्री-विमर्श की वास्तविक कहानी दिखाई गई थी।

हिंदी फ़िल्मों में इससे पहले नायिकाएँ नेत्रहीन, मूक, ग्रामीण तो कई बार बनी हैं लेकिन उसके चेहरे के सौंदर्य को समाप्त नहीं किया गया। मुझे यह फ़िल्म देखते हुए राजकपूर द्वारा निर्मित और ज़ीनत अमान द्वारा अभिनीत फ़िल्म सत्यम शिवम सुंदरम की याद भी आती है। उस फ़िल्म में भी ज़ीनत अमान का चेहरा एक तरफ़ से जला हुआ था। पाँच दशक के बाद किसी फ़िल्मकार और अभिनेत्री ने फिर से यह साहस कर दिखाया। 'छपाक' की नायिका परंपरावादी सौंदर्यबोधी चेतना की शिकार नहीं है। उसे सुंदरता की हताशा भी नहीं है। वह तो यथार्थ का सामना करने के लिए तत्पर है। इसके उलट समाज में उसके वास्तविक यथार्थ का सामना कर सकने का साहस नहीं। क्योंकि समाज की सोच

अपना सौंदर्यबोध बदलने को तैयार नहीं। 'छपाक' व्यावसायिक सिनेमा की भीड़ में एक नए क़िस्म का नायिका भेद गढ़ती है।

एसिड अटैक एक जानलेवा हमला है-और इसी अटैक पीड़िताओं की कहानियों पर आधारित छपाक मुख्य रूप से लक्ष्मी अग्रवाल की ज़िंदग़ी की प्रमुख घटनाओं से प्रेरित फ़िल्म है। फ़िल्म ने इतिहास में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया। फ़िल्म का एक संवाद बड़ा मारक है-"एसिड तो पहले दिमाग में बनता है। हाथ में तो बाद में आता है।" यानी फ़िल्म सवाल उठाती है एसिड की खुलेआम बिक्री पर तो प्रतिबंध लगाया जा सकता है लेकिन जिसकी सोच एसिड जैसी घातक हो, उस पर बैन कैसे लगाया जा सकता है। जाहिर है इसके लिए तो सोच बदलने की दरकार है। जिस तरफ़ यह फ़िल्म इशारा करती है। और समाज में स्त्रीत्व व सौंदर्यबोध के प्रति जिम्मेदारी का अहसास दिलाती है।

सोच, सौंदर्य, समाज, परिवार और स्त्रीत्व की कहानी कंगना रनौत अभिनीत फ़िल्म 'पंगा' भी कहती है। यहाँ 'पंगा' महज़ एक फ़िल्म का नाम भर नहीं है। वास्तव में यह मध्यवर्गीय परिवार के दायरे, समाज की रूढ़िवादी सोच और पुरानी परंपरा की सीमाओं से खुला विद्रोह भी है। यह जया निगम नामक उस कबड्डी खिलाड़ी की कहानी है जिसके किरदार में भारतीय महिलाएँ अपने-अपने दमन के अस्तित्व का प्रतिबिंब देख सकती हैं। एक गृहिणी अपने पति और बच्चे को गरमागरम परांठे खिलाने से लेकर अपने सपनों के मैदान में कमबैक करती है और एक दिन देश का नाम रोशन कर जाती है। एक पंक्ति में यह किसी औरत की अभूतपूर्व विजय गाथा प्रतीत होती है लेकिन इसके पीछे उसका संघर्ष और दमन समाज की लाखों, करोड़ों महिलाओं को हिम्मत और ताक़त दे जाता है। यह कहानी भी कपोल कल्पना नहीं अपितु नेशनल कबड्डी खिलाड़ी जया निगम की वास्तविक ज़िंदग़ी से प्रेरित है। जया निगम शादी से पहले कबड्डी की नेशनल टीम की कैप्टन रह चुकी थीं। वैवाहिक ज़िंदग़ी और माँ बनने के बाद वह कबड्डी छोड़ देती हैं और रेलवे में नौकरी करने लगती हैं। लेकिन शादी के दस साल बाद वह कबड्डी के खेल में वापसी करती हैं, और इसके साथ ही फ़िल्म भी सिनेमा हॉल में भारतीय परिवार को वापस लाने में सफलता हासिल कर लेती है। इसीलिए तो इसका नाम भी 'पंगा' है जोकि रूढ़ परंपराओं से सीधी मुठभेड़ है।

'छपाक' और 'पंगा' के इतर बात 'थप्पड़' की करते हैं। स्त्री और परिवार यहाँ भी केंद्र में है। लेकिन यहाँ स्त्री का परंपरागत रूप नहीं है। यहाँ भी कोई सौंदर्यबोध नहीं है। बस, स्त्रीत्व अपने अस्तित्व के शिखर पर है। सालों साल की सोच और दमन चक्र को झकझोरती हुई-सी अमृता की अपनी कहानी है। बस एक थप्पड़! कहना तो आसान है लेकिन क्यों? इसका जवाब किसी के पास नहीं। फ़िल्म में स्त्री का यह पक्ष मजबूती के साथ उभरा है। संभवत: किसी हिंदी फ़िल्म में ऐसा पक्ष पहली बार सामने आया है। सिल्वर स्क्रीन पर स्त्री 'दामुल' में अपने साथ अन्याय का बदला ले चुकी हैं, शोषण करने वालों की आँखों में मिर्च मसाला झोंक चुकी हैं, दामिनी कहला चुकी हैं, हजार चौरासी की माँ से लेकर गॉडमदर तक बन चुकी हैं और अस्तित्व की तलाश में प्रतिघात भी कर चुकी हैं लेकिन घर के अंदर होने वाली हिंसा या दमन को लेकर ऐसा कदम कभी नहीं उठाया, जैसा कि 'थप्पड़' में अमृता के किरदार ने फैसला किया। एक संगठित परिवार को प्रेम का समर्पण चाहिए। बस! परिवार कोई सौदा या समझौता का कॉरपोरेट ऑफिस नहीं है। समर्पित प्रेम के लिए सोच में परिवर्तन की दरकार होती है। फ़िल्म में एक स्थल पर अमृता कहती है-"औरतों को हमेशा सह लेने के लिए कहा जाता है। ऐसा हमारी माँ ने कहा। माँ को उनकी माँ ने कहा और उनकी माँ को उनकी माँ ने। माँ, दादियाँ सदियों से यही कहती आई

हैं।" ख़ास बात ये कि फ़िल्मकार ने इसे दिखाने के लिए कहानी में कोई वर्ग भेद नहीं रखा है। मेड से लेकर मालकिन तक को थप्पड़ के प्रहार से गुजरना पड़ता है। यहीं पर आकर फ़िल्म कालबोध की परिधि से पार हो जाती है क्योंकि घरेलू हिसा केवल हिन्दुस्तानी समाज में नहीं है, यह देशकाल से परे है। विकासशील और विकसित देश में भी है। गाँव में और महानगर में भी है। इस लिहाज़ से बदलाव इसके मूल में है। मामूली सी बात पर परिवार के टूटने की यह कहानी तो है लेकिन यह मामूली सी बात का कर्तव्यबोध ही किसी परिवार की एकजुटता की मजबूत डोर भी है।

वास्तविक ज़िंदग़ी की कहानी किसे प्रभावित नहीं करती, इस लिहाज़ से नोबेल शांति पुरस्कार विजेता मलाला यूसुफ़ज़ई के जीवन की प्रमुख घटनाओं से प्रेरित फ़िल्म 'गुल मकई' समाज को उचित दिशानिर्देश देती है। फ़िल्म में अध्ययन व शांति संदेश प्रमुख तत्व हैं और जिजीविषा इसकी आधारभूमि है। स्त्री यहाँ भी केंद्र में है। जिसकी ज़िंदग़ी एक परिवार और समाज को समर्पित है। एक स्त्री के हौसले और हिम्मत की बानगी। पूरी दुनिया की लड़कियों को पढ़ने, जीने और आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाली एक ज़िंदादिल ज़िंदग़ी।

'गुल मकई' वास्तव में स्त्री या लड़कियों में किताबों के प्रति अनुराग जगाने वाली फ़िल्म भी है। फ़िल्म में मलाला को बार-बार किताबों के साथ दिखाया जाता है। मलाला की यह कहानी महिला साक्षरता और शिक्षा को प्रेरित करने वाली है।

उल्लेखनीय है कि सिनेमा के पर्दे पर साहसी स्त्री महज़ एक आदर्श कल्पना नहीं है। सत्तर, अस्सी या नब्बे के दशक में हम साहसी महिलाओं की कहानियों को बख़ूबी देख चुके हैं। इन महिला किरदारों ने सार्थक हस्तक्षेप किया है। लेकिन हाल की जिस फ़िल्म की तरफ़ मैं इशारा कर रहा हूँ उसका समकालनीता बोध आज के परिवार की एक बड़ी चुनौती को साथ लेकर चलता है। उस परिवारिकता की एक प्रखर बानगी 'मर्दानी 2' फ़िल्म में प्रमुखता से उभर कर सामने आती है। फ़िल्म यह बताती है कि परिवार ही बच्चों की पहली पाठशाला है। किसी भी बच्चे के जीवन में पहले माता-पिता आते हैं उसके बाद ही गुरू आते हैं। यही वजह है कि निर्भयाओं की दुर्दांत कहानियों से संवेदनहीन हो चुके समाज में यह फ़िल्म सवाल उठाती है कि परिवार की पहली ज़िम्मेदारी औलाद की मुक़म्मल परवरिश है। माता-पिता की बेहतर परवरिश से किसी भी चरित्र को दुराचारी होने से बचाया जा सकता है। जिसका असर पूरे समाज पर पड़ता है। समाज में महिलाओं से जुड़े अपराधों पर तभी लगाम लगाया जा सकता है। फ़िल्म किसी भी परिवार की इसी ज़िम्मेदारी को बड़े ज़ोर शोर से फ़ोकस करती है। फ़िल्म में दिखाई गई यह सोच इसे अन्य फ़िल्मों से अलग बनाती है।

हाल की फ़िल्मों के ये कुछ नज़ीर हमें कई स्तर पर आश्वस्त करते हैं। मुख्यधारा की सिनेमा का यह युगबोध हमें आशान्वित भी करता है। यह सिनेमा भले ही अपने खोए दर्शक वर्ग को खोज रहा है लेकिन आज की इन फ़िल्मों की कहानियाँ अगर समाज, परिवार और स्त्री के जज़्बातों के प्रति ज़िम्मेदार हो रही हैं तो इनका स्वागत किया जाना चाहिए। यही नए सिनेमा का नया सौंदर्यबोध है जहाँ कर्तव्यबोध का संदेश सर्वोपरि है। ज़ाहिर है इससे सिनेमाघरों में फिर से परिवार वापिस होगा। हाँ, इसके साथ ही अगर हमारे फ़िल्मकार गीत, संगीत, भाषा और संवाद पक्ष के प्रति भी थोड़े संवेदनशील और ज़िम्मेदार हो जाएँ तो शायद उन्हें कुछ और खोए, रूठे दर्शक मिल जाएँ और संभवत: सिनेमा का नया युग आ जाए!

❖

स्वतंत्र मीडियाकर्मी साहित्य और सिनेमा से विशेष अनुराग
37-ए, तीसरी मंजिल, गली नं,-2, प्रताप नगर,
मयूर विहार-1, दिल्ली-110091
मोबाइल : 931367771 ईमेल : sanjeevsdelhi@gmail.com

प्रेम, प्रतिरोध और मीरा के काव्य की सार्वकालिकता

— पल्लवी प्रकाश

किसी भी रचनाकार की रचना-दृष्टि के पीछे उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण योग होता है। मीरा जिस युग की उपज थीं वह मध्यकालीन सामंतवादी युग था, साहित्य के इतिहास में जिसे भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल चूँकि सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से पतन का युग था जिसमें नैतिक मूल्यों का घोर अवमूल्यन हो रहा था, अत: सामाजिक और सांस्कृतिक अवमूल्यन के इस युग में भक्त कवियों ने अपनी अंतर्व्यथा को व्यक्त करने के लिए कविता का सहारा लिया। मीरा की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा, और तद्युगीन समाज में नारी की दोयम स्थिति के विरोध में किए जा रहे उनके संघर्षों से संचालित है।

प्रेम और प्रतिरोध का गहरा संबंध है। यह प्रेम ही है जो किसी भी सार्थक प्रतिरोध के लिए उत्प्रेरक का काम करता है। देश के प्रति प्रेम ही वह कारक था जिसने महात्मा गाँधी के कुशल नेतृत्व में दमनकारी ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध भारतीयों के प्रतिरोध को स्वर दिया। भक्त कवयित्री मीरा का कृष्ण प्रेम ही वह ऊर्जा स्रोत बनता है जो उन्हें मध्यकालीन सामंती समाज के पितृसत्तात्मक जीवन मूल्यों के विरुद्ध प्रतिरोध दर्ज करने का संबल देता है। मीरा न सिर्फ नारी जाति के संघर्षात्मक विद्रोह और संघर्ष को व्याख्यायित करती हैं बल्कि वे तत्कालीन समाज की उन सभी स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सामंतवादी पराधीनता की बेड़ियाँ तोड़ कर अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करना चाहती हैं।

प्रेम और प्रतिरोध : स्वरूप और विश्लेषण

मीरा के यहाँ प्रेम और प्रतिरोध, दोनों ही वैयक्तिकता की सीमा रेखा में सिमट कर नहीं रहते बल्कि उनका साधारणीकरण हो जाता है। मीरा की काव्य संवेदना किसी सहृदय के काव्य संस्कारों को जागृत करने के लिए सफल माध्यमों में से एक मानी जाती रही है। कृष्ण प्रेम और भक्ति के रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं के विरुद्ध मीरा का प्रतिरोध ही काव्य के रूप में फूट पड़ता है।

किसी भी रचनाकार की रचना-दृष्टि के पीछे उसके सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश का महत्वपूर्ण योग होता है। मीरा जिस युग की उपज थीं वह मध्यकालीन सामंतवादी युग था, साहित्य के इतिहास में जिसे भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। भक्तिकाल चूँकि सामाजिक और राजनीतिक दृष्टि से पतन का युग था जिसमें नैतिक मूल्यों का घोर अवमूल्यन हो रहा था, अत: सामाजिक और सांस्कृतिक अवमूल्यन के इस युग में भक्त कवियों ने अपनी अंतर्व्यथा को व्यक्त करने के लिए कविता का सहारा लिया। मीरा की कविता भी भक्ति आंदोलन, उसकी विचारधारा, और तद्युगीन समाज में नारी की दोयम स्थिति के विरोध में किए जा रहे उनके संघर्षों से संचालित है। मीरा का जीवन-संघर्ष, विद्रोह, उनकी भक्ति

वस्तुतः प्रेम और रहस्य की अनुभूति के साथ ही व्यक्त हुई है। भक्ति-आंदोलन के रूढ़िविरोधी या विद्रोही रूप की उत्पत्ति दरअसल उस सामंतवादी शासन व्यवस्था के प्रतिकार स्वरूप हुई है जिसमें स्त्री और शूद्रों को समाज के निचले पायदान पर रखा गया। भक्ति-आंदोलन नारी को भी पुरुष की तरह ही घर से बाहर आने का आमंत्रण देता है, लेकिन सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था में उच्च वर्ग की स्त्रियों के लिए घर से बाहर निकलना वर्जित था। मीरा का समस्त जीवन, उनकी कविता और उनकी कृष्णभक्ति, इसी सामंतवादी जीवन मूल्यों का निषेध है। कुल और समाज की मर्यादा का प्रेत भी उन्हें कृष्ण भक्ति के मार्ग से डिगा नहीं सका। अगर आख्यानों की मानें तो मीरा ने पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का प्रथम चरण तब उठाया था जब स्वयं को कृष्ण की ब्याहता घोषित किया। "किंवदंती है कि विवाह के समय मीरा ने पति की बजाय गिरिधर जी (कृष्ण) के साथ ही फेरे लिए जिनके प्रति वह बाल्यकाल से समर्पित थीं। उन्होंने स्वयं को उनकी वधू घोषित कर दिया और भौतिक विवाह को अस्वीकार, पति की कुलदेवी, दुर्गा की पूजा से भी उन्होंने इंकार कर दिया।"[1]

यह निश्चय ही मीरा के विद्रोह का प्रथम चरण रहा होगा। उस पितृसत्तात्मक सामाजिक मान्यता के विरुद्ध, जहाँ स्त्री को विवाह में चयन की स्वतंत्रता नहीं होती। मीरा का सम्पूर्ण जीवन ही उनका अपना चयन था, उनकी भक्ति से लेकर उनकी कविता तक। विद्रोह का अगला चरण ही था पति की मृत्यु के पश्चात सती न होने का निर्णय, जिसने सामंतवादी शासन व्यवस्था की चूलें हिला दीं। एक राजघराने की वधू तमाम जर्जर परंपराओं को धता बताते हुए खुलेआम यह घोषणा कर देती है कि सती न होने के उसके निर्णय के पीछे गिरिधर की भक्ति ही है—

गिरिधर गास्यां, सती न होस्यां
मन मोह्यो-घण नामी[2]

मीरा के लिए कृष्ण जीवन के आलंबन हैं, और इसीलिए वे सती नहीं होतीं क्योंकि वे तो स्वयं को कृष्ण की ब्याहता ही मानती हैं। बिना कृष्ण के उन्हें जग नहीं सुहाता—

हरि म्हारा जीवण प्राण आधार।
ओर आसरो ना म्हारे आप बिन तीनू लोक मंझार।
आप बिन म्हांने जग ना सुहावे, निरख्यो सो संसार
मीरा प्रभु! दासी रावली, लीज्यो नेक निहार।[3]

मीरा का यह क्रांतिकारी निर्णय निश्चय ही उस पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था के लिए किसी करारे तमाचे से कम नहीं था जिसमें स्त्री के अस्तित्व की कल्पना पुरुष अस्तित्व से अलग होकर की ही नहीं जा सकती थी। स्त्री के सचेतन, स्वतंत्र निर्णय लेने वाले व्यक्तित्व को समाज के लांछन और लोकनिंदा का सामना करना तय ही था, लेकिन मीरा के निर्भीक व्यक्तित्व को बदनामी से कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। समाज द्वारा बनाए गए नियमों को मानने के लिए मीरा बाध्य नहीं हैं—

राणा जीम्हाने या बदनामी लगे मीठी।
कोई निंदो कोई बिन्दो, मैं चलूंगी चाल अपूठी[4]

मीरा की कृष्ण भक्ति के प्रति शंकालु केवल राणा परिवार ही नहीं था बल्कि कुछ वैष्णव साधु भी मीरा से ईर्ष्या रखते थे। "चौरासीवैष्णवनकी वार्ता" में ऐसे कई प्रसंग वर्णित हैं जिससे इन वैष्णव साधुओं की मीरा के प्रति ईर्ष्या की भावना का पता चलता है। मीरा ने बिना किसी हिचकिचाहट के अपना पक्ष सामने रखा है—

चोरी न करस्यां, जीव न सतास्यां,
काँई करसी म्हारो कोई
गजसूँ उतर के खर नहीं चढ़स्यां,
आ तो बात न कोई[5]

मीरा की कविता बार-बार उन प्रश्नों से टकराती है, जो कुल की मर्यादा को तोड़ने के कारक माने गए हैं। एक राजघराने की स्त्री कृष्ण को अपना पति माने, लौकिक पति की मृत्यु के पश्चात भी सती न हो, बल्कि मंदिरों में जाकर साधु-संतों की संगति करे और गायन और नृत्य के उपादानों के साथ कृष्ण की भक्ति करे तो यह कुल की मर्यादा को लांघने के जैसा ही था और इसीलिए मीरा को तरह-तरह के आरोपों और लांछनों का सामना करना पड़ा। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "मीरा की कविता में

लोकलाज, कुल की मर्यादा को तोड़ने या लांघने की बात बार-बार कही गयी है। यह अकारण नहीं। इसके सामाजिक कारण भी हैं। मीरा अपने इष्ट को समर्पित तो होती हैं लेकिन इस समर्पण में जो बाधा आती है, उसका संकेत भी वह दे देती हैं। यह भी देखने की चीज है कि तुलसी के ही समान मीरा की कविता में भी दुर्जन और खल बार-बार आते हैं। विषमता का बोध मीरा के यहाँ प्रकट है। कबीर या तुलसी ने अपने समकालीन किसी खल का नाम लेकर उल्लेख नहीं किया। मीरा ने राणा का नाम लिया है। मीरा की कविता में अमृत-विष साथ-साथ अक्सर आते हैं। कहा गया है कि उन्हें विष दिया गया था उन्होंने पी लिया तो अमृत हो गया। पता नहीं यह सत्य है या असत्य लेकिन इसका प्रतीकार्थ जरूर है। विषपान मीरा का, मध्यकालीन नारी का स्वाधीनता के लिए संघर्ष है और अमृत उस संघर्ष से प्राप्त तोष है जो भाव सत्य है। मीरा का संघर्ष जागतिक, वास्तविक है, अमृत उनके हृदय या भावजगत में ही रहता है।"[6]

मध्यकालीन भारतीय समाज में शूद्रों को जहाँ सवर्णों के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए जाति प्रथा का सामना करना पड़ता था वहीं स्त्रियों को सामंतवादी मानसिकता और झूठी कुल मर्यादा के मिथ से टकराना पड़ता था। भक्ति-आंदोलन में आर्थिक समानता कोई प्रधान मुद्दा नहीं था, केवल भक्ति की समानता के अवसरों की माँग थी। "लेकिन इस भाव जगत की समानता के अनुकूल आचरण करने पर जातिप्रथा और नारी पराधीनता की रूढ़ि रास्ता रोक कर खड़ी हो जाती थी। मीरा जब कविता में बार-बार लोकलाज और कुल की मर्यादा को तोड़ने की बात करती हैं तब वह उसी बाधा का संकेत करती हैं। ऐसे उल्लेख मीरा के यहाँ बहुत ज्यादा हैं। जैसे तुलसीदास को जहाँ अवसर मिलता है, भूख, अकाल, महामारी और कामदेव के प्रभाव का उल्लेख कर देते हैं, कबीर 'जाति जुलाहा मति का धीर' जैसा उल्लेख कर देते हैं, वैसे ही मीरा, लोकलाज, कुल की मर्यादा तोड़ने का अदबदा कर उल्लेख करती हैं।"[7]

लोकलाजकुलकाण जगत की दईबहायजस पाणी
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी[8]

लोकलाज को तोड़ने की वजह से मीरा को लोगों की कड़वी बातें सुननी पड़ती हैं, लोग उनकी निंदा करते हैं, तरह-तरह की बातें करते हैं। सास लड़ती है, ननद खिजाती है, पहरा बिठा दिया गया है ताकि मीरा बाहर ना जा सके।

हेली म्हासूंहरि बिना रह्यो ना जाय
सासलड़े मेरी ननद खिजावै राणा रह्या रिसाय
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो,
तालो दियो जड़ाय[9]

मीरा को कुलनासी और बावरी जैसी उपाधियों से विभूषित किया गया, लेकिन उनकी भक्ति की दृढ़ता में कोई कमी नहीं आई-

पग घूंघरू बाँध मीरा नाची रे
लोग कहे मीरा भई बावरी सास केवे कुलनासी रे
विषरो प्यालो राणोजी भेज्यो, पीवत मीरा हांसी रे[10]
मीराबाई ग्रंथावली, कल्याण सिंह शेखावत, पृष्ठ 92

ऐसा माना जाता है कि है कि सास-ननद, पहरा, ताला, चौकी आदि के प्रतीक मध्यकालीन स्त्रियों की परतंत्रता को व्यक्त करने के लिए आए हैं। लेकिन मीरा के लिखने के तरीके से लगता है कि यह उनका आत्मकथात्मक अनुभव है। सास और ननद के अलावा मीरा को उत्पीड़ित करने वाले राणा भी हैं। मीरा के आचरण में ऐसा क्या था जो उन्हें कुलनासिनी माना गया? मीरा की भक्ति से उनके परिवार वालों को आपत्ति नहीं हो सकती थी, आपत्ति की वजह थी उनकी साधु संगति। सामंतवादी परिवार की एक सामान्य विधवा की तरह अगर मीरा ने घर के भीतर रह कर पूजा-अर्चना में अपना समय व्यतीत किया होता तो किसी को भला क्या आपत्ति हो सकती थी, आपत्ति तो थी उनके घर से बाहर निकल कर मंदिरों में साधु-संतों के साथ कीर्तन करने से। जिस राजकुल में पर्दा प्रथा के सख्त नियम हों, वहाँ राणाकुल की वधू अगर सामान्य भक्त की तरह व्यवहार करे तो कुल की मर्यादा को ठेस तो लगनी ही थी। मीरा ने इस कुल की मर्यादा के बंधनों को तोड़, घर से

बाहर निकल कर साधुसंगति की और कृष्ण से मिलने की इच्छा प्रकट की है। इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए घर की चारदीवारी से निकलना जरूरी था और इसीलिए मीरा घर से बाहर निकलती हैं क्योंकि वे तो गिरिधर के हाथों बिकी हुई हैं—

मीरा गिरिधर हाथ बिकाणी, लोक कहे बिगड़ी[11]

मीरा का इस संसार में अपना कोई नहीं है कृष्ण के सिवा। भाई-बंधु, सगे-साथी, इन सबका साथ छूट चुका है, भक्तों को देख कर वे प्रसन्न होती हैं, और जगत को देख कर रोती हैं। साधु-संतों की संगति में वे लोकलाज को खो चुकी हैं। मीरा को लगन लग गयी है और परिणाम की उन्हें कोई चिंता नहीं।

म्हारे तो गिरधर गोपाल दूसरो ना कोई
दूसरो न कोई साधों! सकल लोक जोई[12]

मीरा की साधुसंगति से जिस प्रकार राणा को शिकायत थी उसी प्रकार मीरा को भी शिकायत थी कि राणा के देश में सज्जन नहीं दुर्जन बसते हैं...

नहिं सुख भावे थारो देस लड़ो रंगरुड़ो
थारे देस में राणा साध नहीं छै,
लोग बसे लोग बसे कूड़ो[13]

पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था ने मध्यवर्गीय भारतीय स्त्रियों के पीड़न में स्त्रियों को इस्तेमाल किया। सास-बहू, ननद-भौजाई आदि पारिवारिक संबंधों में कलह भारतीय स्त्री-समाज का बहुत बड़ा सच है। मीरा को कष्ट पहुँचाने वाले उनके देवर राणा विक्रमाजीत सिंह थे। मीरा ने साफ लिखा है कि अगर सिसौदिया रूठेगा तो अपना राज लेगा, लेकिन हरि रूठेगा तो कहाँ जाऊँगी।

सिसौदियो रूठ्यो तो म्हारों काई कर लेसी
म्हें तो गुण गोविन्द का गास्यां, हो माई[14]

राणा के व्यवहार से क्षुब्ध होकर मीरा कह उठती हैं कि राणा जी तुम मुझसे बैर क्यों रखते हो? तुम तो आदमियों में उतने ही गुणहीन हो जितने वृक्षों में कैर का वृक्ष।

राणा जी थेक्यांनेराखोम्हांसूं बैर
थे तो राणा जी म्हानेइसड़ालागोज्योंब्रच्छन में कैर[15]

मीरा को पीड़ा पहुँचाने वाले लोगों में से परिवार वालों के अलावा कुछ कपटी साधु आदि भी थे। ऐसी जनश्रुति है कि मीरा के पास एक कपटी साधु ने जाकर कहा कि श्रीकृष्ण ने मुझे अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा है, आपके साथ रमण करने के लिए। इस पर मीरा ने उत्तर दिया कि पहले भोजन कीजिए, फिर सेज सजाती हूँ। संतों के बीच नि:शंक होकर रमण कीजिए।

विषयी कुटिल एक भेष धर साधू लियो
कियो यों प्रसंग मोसों अंगसंग कीजिये
आज्ञा मोकों दई आप लाल गिरधारी
अहो शीश धरी लईकरि भोजन हूँ लीजिये
असभनि समाज में बिछाय सेजि बोलि लियो
सक अब कौन की निसंक रस भीजिये।[16]

एक स्त्री होने की वजह से ही कपटी साधु जैसे लोगों से मीरा का वास्ता पड़ा होगा, यह अलग बात है कि मीरा ने अपने उत्तर से उसे लज्जित कर दिया। लेकिन इस तरह के प्रसंग भारतीय समाज में स्त्री की परिस्थिति को भली-भाँति दर्शाते हैं, जहाँ स्त्री का अस्तित्व पुरुष के साथ ही है, उससे अलग होकर नहीं।

मीरा का जीवन-संघर्ष उनके पति की मृत्यु के साथ ही शुरू हुआ। पति की मृत्यु से लेकर स्वयं की मृत्यु तक रचे गए मीरा के सम्पूर्ण काव्य में विरह भावना की अभिव्यक्ति है तथा एक सामंती समाज द्वारा स्त्री पर लगाए गए तमाम बंदिशों का प्रतिकार भी है। मीरा की रचनाओं में अलौकिक प्रियतम से मिलन की आकांक्षा, न पा सकने की व्यथा, उससे मिलने में व्यवधान डालने वाले पितृसत्तात्मक जीवन मूल्यों का विरोध, अपनी असहायता और भावजगत में प्रियतम से मिलन की निश्चिंतता, ये सब एक अंतरसूत्र में संबद्ध हैं।

जनश्रुति है कि मीरा को विष दिया गया था, इसकी वास्तविकता का तो पता नहीं, लेकिन विष, मीरा के जीवन के यथार्थ को सामने लाता है जबकि अमृत उनके भाव जगत का परिचायक है। मीरा की कविता में अमृत और विष दोनों ही प्रतीकों का सुंदर प्रयोग हुआ है। विष, मीरा के संघर्ष की

आँच में तप कर अमृत का रूप धारण कर लेता है। वस्तुत: अमृत और विष, मीरा की भावना और जीवन-संघर्ष का प्रतीक ही हैं। मीरा की पीड़ा एक नारी की पीड़ा थी। वह भक्त थीं, अज्ञात प्रियतम की भक्ति करती थीं, लेकिन घर में बैठ कर साधना नहीं करती थीं। भक्त होने के पश्चात वे स्वयं को सिर्फ भक्त मानती थीं, स्त्री या पुरुष नहीं। भक्ति अपने-आप में व्यक्ति-साधना थी, कोई स्त्री होकर भी स्त्रीत्व से निरपेक्ष होना चाहे तो समाज उसे स्त्री मानने से इंकार नहीं करने लगेगा। मीरा, स्त्रीत्व के बंधन को त्याग कर बाहर आना चाहती थीं, समाज की रूढ़ियाँ उन्हें भक्त मानकर उनकी भक्ति को गलत ना भी मानती, लेकिन राणाकुल की सामंती मर्यादा, उनकी भक्ति से टकरा रही थी। यह भक्ति भावना और जर्जर-सामाजिक रूढ़ियों का द्वंद्व था। यह द्वंद्व इसलिए इतना मुखर था क्योंकि मीरा जैसा व्यक्तित्व, भावना को जीवन-आचरण में भी उतारना चाहता था। मीरा, नारीत्व से मुक्त होकर भक्त ही रहना चाहती थीं। ऐसा सुना गया है कि वृंदावन के एक स्वामीजी को उन्होंने यह कह कर हतप्रभ कर दिया था कि आप स्वयं को पुरुष कैसे मानते हैं, वृंदावन में तो एक ही पुरुष है, और वह हैं कृष्ण। लेकिन यह भाव जगत की बात है। वास्तविक जीवन में जब समाज उन्हें स्त्री होने का बोध कराता होगा, कुटिल साधु जैसे खली-कामी लोग मिलते होंगे, तब मीरा को अपने नारी होने का अहसास होता होगा। विश्वनाथ त्रिपाठी के अनुसार, "मीरा को अपनी असहायता का तीव्र बोध है। यह बोध जितना ही तीव्र है, उतना ही हरि के प्रति समर्पण की भावना है। इस असहायता के बोध में कहीं न कहीं अबलात्व का बोध और यह अहसास कि स्त्री सचमुच अबला होती है, मिला है। पति की मृत्यु, सास ननद की ताड़ना, पिता की मृत्यु, देवर राणा का पीड़न, और ऊपर से दुर्जनों की लोकनिंदा इन सबने मीरा को बहुत असहाय मन:स्थिति में डाला होगा। लोकनिंदा की हालत तो यह है कि विश्व प्रसिद्ध और भारत की सर्वाधिक प्रसिद्ध भक्त कवयित्री होने के बावजूद आज भी राजस्थान में ऐसे लोग हैं जो मीरा को अच्छी निगाह से नहीं देखते।"[17]

मीरा स्वयं को अबला मानकर तब ईश्वर की शरण में जाना चाहती हैं—

हरि म्हारो सुण ज्यो अरज महाराज
मैं अबला बल नाहिं गोंसाईं राखो अबकै लाज[18]

यह गिरिधर गोपाल इतने शक्तिशाली हैं कि उनकी शरण में जाकर मीरा अपने सारे दु:ख भूल जाती है। वह गिरिधर नागर की दासी हैं और गिरिधर नागर ऐसे सर्वशक्तिमान हैं जो जगत के ताप से, राणा के कोप से और दुर्जनों की हँसी से उन्हें मुक्ति दिलाते हैं। गिरिधर गोपाल रक्षक भी हैं और रंजक भी। उनकी छवि पाकर मीरा प्रसन्न हो जाती हैं। गिरिधर नागर शक्ति-शील और सौंदर्य से समन्वित एक ऐसे प्रियतम हैं जो मीरा को इस लौकिक जगत में नहीं मिलें। वे मीरा के स्वप्न लोक के प्रिय हैं। ये आदर्श पति, प्रेमी, प्रियतम, रक्षक, रंजक इस जनम में नहीं मिलें, अत: वह पूर्वजन्म के प्रिय हैं, जन्म-जन्मांतर का उनका साथ है—

थाणे काँई काँई बोल सुणावा म्हांरा सांवरा गिरधारी
पूरब जणमरी प्रीत पुराणी, जावाणा गिरधारी[19]

भक्तिकाल के कवि सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था के विरोधी थे, लेकिन उनके इस विरोध का स्तर भावनात्मक था, भक्ति की सुलभता ही प्रमुख मुद्दा था। कोई राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक स्तर पर का सजग विरोध नहीं था। इस विरोध के मूल में था भक्त कवियों का व्यक्तिगत अनुभव, इसके पीछे कोई सजग व्यवस्था विरोध नहीं था। भक्त कवियों ने अगर राजदरबारों से दूरी बनाई तो इसलिए क्योंकि वे शोषण पर आधारित शासनतंत्र के समर्थक नहीं थे। राजकुल में जन्मी मीरा ने भी राजकुल छोड़ दिया और सामान्यजन सा जीवन बिताने लगीं। मीरा की सत्संगति से कुल में लगने वाले दाग के प्रति उनकी ननद जब आगाह करती है, तो मीरा पलट कर जवाब देती हैं—

ऊदा बाई मन समझ जाओ अपने धाम
राज पाट भोगो तुम ही हमसे न तान्सू काम।[20]

मीरा के प्रिय उनके हृदय में ही स्थित हैं। जिस हृदय में ताप है, रोग है, द्वंद्व है, उसी हृदय में उनके गिरिधर नागर भी हैं, जो रोगों को दूर करने वाले वैद्य भी हैं।

जा घट बिरहा, सोई लखि है, कै कोई हरिजन मानै हों
रोगी अंतर वैद बसत है, वैद ही ओखद जाणे हो[21]

मीरा भक्ति आंदोलन की सामंतवाद विरोधी लहर के साथ उदित हुई मध्यकाल की स्त्री भक्त हैं। वे किसी भी संप्रदाय से नहीं बँधी तथा उनके काव्य में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं। मीरा की रचनाओं पर निर्गुण, सगुण, सूफीमत, और नाथपंथ, सबका प्रभाव दिखलाई देता है। मीरा जिस युग में नारी मुक्ति की बात करती हैं, लोक की मर्यादा की धज्जियाँ उड़ाती हैं, वह आज के तमाम नारीवादियों को पाठ पढ़ाने के लिए काफी है।

लोक लाजरी काण न मानूँ,
निरभय निसाण धुरास्याँ हे माय
स्याम नाम री जहाज चलास्यां,
भवसागर तिर जास्यां हे माय।[22]

मीरा के काव्य की सर्वकालिकता

मीरा जिस युग की उपज थीं, वह सामंती युग था, जिसमें कई जर्जर सामाजिक रूढ़ियाँ व्याप्त थीं। मीरा उन तमाम नियमों, रूढ़ियों और परंपराओं को तोड़ते हुए जीवन पथ पर आगे बढ़ती हैं। उनमें संकीर्ण मानसिकताओं से ऊपर उठने की निर्भीकता है और सामंती शक्तियों के विरोध का संकल्प भी है। कुमकुम संगारी के अनुसार, "मीरा की उपलब्धि यह है कि एक पथभ्रष्ट कृतघ्न पत्नी बनकर वह न सिर्फ उनसे की जा रही सामाजिक अपेक्षाओं से मुक्ति पा लेती हैं, बल्कि विवेक, स्वाधीनता, परितृप्ति, आत्मिक विकास और सबसे बढ़कर कृष्ण से विवाह तक भी उनकी पहुँच हो सकी है।"[23]

मीरा के काव्य में प्रेम की रक्षा का भाव निहित है, उनका कृष्ण प्रेम वैयक्तिक नहीं रहा बल्कि उसका विस्तार समस्त विश्व तक हो गया है, प्रेम में एकनिष्ठता का पर्याय बन गया है। मीरा के प्रतिरोध का दायरा भी व्यापक रहा जिसमें काव्य के माध्यम से भारतीय नारी जागरण के प्रथम स्फुरण को स्वर मिला। मीरा का काव्य, प्रेम और प्रतिरोध के सुंदर समायोजन का सार्थक उदाहरण है अतः उसकी सर्वकालिकता पर कोई प्रश्नचिन्ह नहीं लग सकता।

संदर्भ :

1. कुमकुम सन्गारी, मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012 पृष्ठ 47
2. सुदर्शन चोपड़ा (सं.), भक्त कवयित्री मीरा, हिंद पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 115
3. कल्याणसिंह शेखावत, मीरा ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 109
4. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावाली, हिंदी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, 1966, पृष्ठ 109
5. कल्याणसिंह शेखावत, मीरा ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 98
6. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 55
7. वही, पृष्ठ 55
8. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966, पृष्ठ 111
9. वही, पृष्ठ 112
10. कल्याण सिंह शेखावत, मीरा ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 92
11. वही, पृष्ठ 84
12. वही, पृष्ठ 100
13. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966, पृष्ठ 109
14. वही, पृष्ठ 110
15. वही, 110
16. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ 61
17. वही, पृष्ठ 66
18. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966, पृष्ठ 138
19. वही, पृष्ठ 115
20. डॉ. पदमावती शबनम, मीराः व्यक्तित्व और कृतित्व, पृष्ठ 202-203
21. परशुराम चतुर्वेदी, मीराबाई की पदावली, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1966, पृष्ठ 121
22. कल्याणसिंह शेखावत, मीरा ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 108
23. कुमकुम संगारी, मीराबाई और भक्ति की आध्यात्मिक अर्थनीति, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2012, पृष्ठ 56-57

❖

लेखिका एवं अतिथि व्याख्याता, ए एन कॉलेज, पटना
सी/43, जगत अमरावती अपार्टमेंट, बेली रोड, पटना-800001
मो. : 8809931217, ई-मेल : pallaviprakash123@gmail.com

दिन अभी ढला नहीं

विरेंद्र वीर मेहता

"कितने साल गुज़र गए सुधा, लेकिन ज़्यादा नहीं बदला हमारा गाँव। बस कुछ आधुनिकता की निशानियों को छोड़; वही बाग-बगीचे और वही हरे-भरे रास्ते।" शाम की सैर के बीच छाई चुप्पी को भंग करते हुए उमाशंकर जी ने पत्नी से बात शुरू की।

"सही कहा आपने। कुछ बगीचों की बाड़ जरूर टूटी-फूटी लकड़ियों की जगह मेटल की खपचियों से बन गई है, पहले से सुंदर और ज़्यादा मजबूत।" सुधा ने सामने नज़र आते बग़ीचों की बाड़ के उस पार लहलहाती फसल को निहारते हुए उत्तर दिया।

बरसों बाद लौटे थे वे गाँव। बहुत पहले ही अपनी ज़िद के चलते अपना संयुक्त परिवार छोड़ बच्चों को लेकर विदेश चले गए थे क्योंकि वह नहीं चाहते थे कि गाँव के देहाती-अनपढ़ माहौल में उनके बच्चे साँस लें। समय गुजरता गया, उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षित और आधुनिक नागरिक के साथ सफल इंसान भी बनाया लेकिन शायद उचित संस्कार नहीं दे पाए। परिणामतः आज फिर वह अपने गाँव में लौट आए थे, नितांत अकेलेपन को समेटे।

"मैं जानता हूँ सुधा, तुम्हारे लिए गाँव में रहना कठिन है

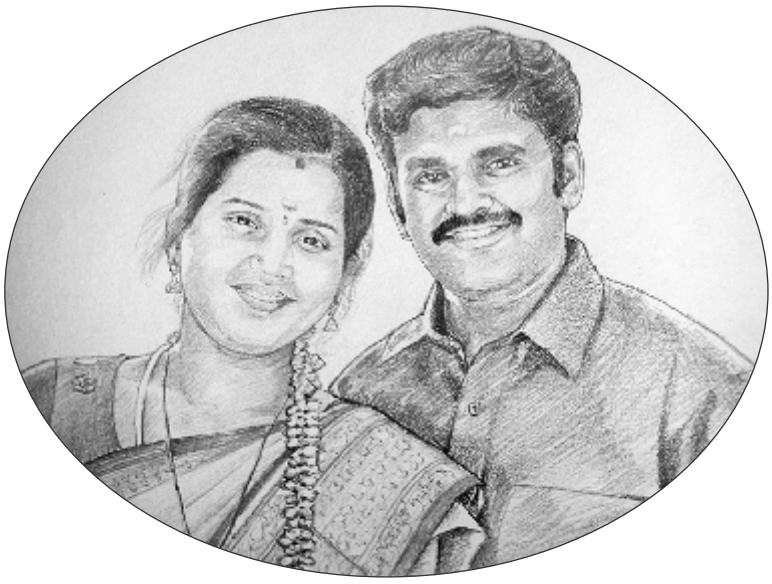

लेकिन बच्चों से मैं अपना अपमान बर्दाश्त कर सकता हूँ पर उनका बार-बार तुम्हारा अपमान करना, यह बर्दाश्त नहीं होता था। ख़ैर, उन्हें सही संस्कार नहीं दे सके; ये दोष भी तो हमारा ही है।"

"आप ऐसा न कहें और परेशान भी न हों। मुझे यहाँ कोई दिक़्क़त नहीं होगी।" पति की बात का उत्तर देते हुए वह कहने लगी, "सच तो ये है कि मैं सारा जीवन यही समझती रही कि उच्च शिक्षा और आधुनिक सभ्यता से ही हम संतान को एक अच्छा इंसान बना सकते हैं। लेकिन अब जाकर समझी हूँ कि संस्कार तो प्रकृति के वो बीज होते हैं जो परिवार के बुज़ुर्गों और अपनों के सान्निध्य-प्रेम से ही पैदा होते हैं। काश! कि हमने अपने बच्चों की परवरिश यहीं परिवार के बीच रहकर की होती, तो जीवन की ढलती साँझ में हम अकेले नहीं होते।"

"सुधा, बीता हुआ समय तो लौटकर नहीं आता लेकिन हम चाहें तो अतीत का प्रायश्चित कर सकते हैं।" उन्होंने अपनी नज़रें पत्नी पर जमा दी।

"कैसे... ?"

"सुधा!" पत्नी की प्रश्नवाचक नज़रों को निहारते हुए उनकी आँखों में एक विश्वास था, "हमारे समाज में और भी बहुत से परिवार बिखरे हुए हैं या बिखरने की कगार पर है, जिन्हें हम चाहें तो..."

"हाँ क्यूँ नहीं, इससे बेहतर हमारे जीवन का आख़िरी पड़ाव और क्या होगा?"

❖

मंज़िलें और भी हैं

"नहीं आज नहीं।" कहता हुआ वह आगे बढ़ गया। 'बार' के बाहर खड़ा गार्ड भी हैरान था, सातों दिन पीने वाला शख़्स आज बिना पिए जा रहा था।

वह आगे बढ़ता गया लेकिन उसके मन-मस्तिष्क में बेटी की बात घूम रही थी—"पापा, आज आप ड्रिंक नहीं करेंगें और चर्च में हमारे लिए 'प्रेयर' भी करेंगे।"

आखिर वह उस दोराहे पर आ खड़ा हुआ, जहाँ से एक रास्ता रैन-बसेरे की ओर से जाता था। वहाँ के गंदे-अधनंगे बच्चों के कुछ माँगने के लिए पीछे पड़ जाने की आदत के चलते; वह उधर जाने से कतराता था। दूसरा रास्ता 'सर्वशक्तिमान' के दरवाज़े पर जाता था जिस ओर जाना उसने महीनों पहले बंद कर दिया था क्योंकि ठीक एक वर्ष पहले उसके ख़ुद के हाथों हुई दुर्घटना में अपने परिवार को खोने का ज़िम्मेदार भी वह 'उसे' ही मानता था।

'क्या करे और क्या न करे' की मन:सिथति में वह कुछ देर सोचता रहा और फिर एक ठंडी साँस लेकर बुदबुदाते हुए रैन बसेरे की ओर चल पड़ा—"नहीं बिटिया नहीं! मैं जीवनभर भटकता रहूँगा इन्हीं गलियों में, लेकिन अब 'उधर' कभी नहीं जाऊँगा।"

"अरे बाबू, कुछ खाने को दे ना।" जिस बात से वह डर रहा था, वही हुआ। रैन बसेरे के ठीक सामने शोर मचाते बच्चों में से कुछ बच्चों के साथ वह बच्ची भी उसकी टाँगों से आ चिपकी।

"अरे चलो, दूर हटो।" सहज प्रतिक्रियावश उसने बच्चों को दूर धकेल दिया और तेज कदमों से वहाँ से निकल जाना चाहा, लेकिन नीचे गिरे बच्चों में से बच्ची के रोने की आवाज से उसके पाँव अनायास ही थम गए।

"कहीं लगी तो नहीं? बोल न, क्या खाएगी बिटिया?" वह ख़ुद भी नहीं जानता था कि आज ऐसा क्यों हुआ लेकिन

कुछ क्षणों में ही वह उस बच्ची के साथ और बच्चों को भी ब्रेड लेकर बाँट रहा था।

रोने वाली बच्ची अब मुस्करा रही थी और वह उसे एकटक देख रहा था। महीनों के बाद उसने आज 'नैंसी' को हँसते देखा था। "नैंसी मेरी प्यारी बेटी!" वह बुदबुदाया।

"क्या देख रहे हो पापा? आज मैं बहुत खुश हूँ, आज आपने मेरी दोनों बातें मान ली।"

"पापा!...दोनों बातें।" वह जैसे सोते से जाग गया हो। "हाँ, मान ही तो ली मैंने दूसरी बात भी। ये ब्रेड खाते बच्चे भी तो नन्हें-नन्हें 'ईसा' ही हैं और ये बच्ची मेरी नैंसी।"

"सुनो बेटी।" उसने जाती हुई बच्ची को पुकारा, "आज तुमने अपनी ही दुनिया में भटकते मुझ मुसाफ़िर को उसकी मंजिल का पता दे दिया है। थैंक्यू नैन्सी, थैंक्यू...!"

बच्ची कुछ नहीं समझी, पर वह मुस्कराता हुआ आगे बढ़ चला था।

❖

62, गली न. 7, नियर मंगल बाज़ार, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092
मोबाइल 8130607208, 9818675207
ई-मेल : v.mehta67@gmail.com

दबे पाँव

नीरज सुधांशु

उनका शरीर जैसे अपनी ही धुरी पर घूम रहा था। अधमुँदी आँखों से हर तस्वीर चलती हुई धुँधली-सी दिखाई दे रही थी।

थोड़ी देर पहले ही एन्जियोग्राफ़ी के बाद वर्मा जी को रूम में शिफ्ट किया गया था। वे अभी भी हल्के नशे की गिरफ़्त में थे। नज़र अभी किसी एक जगह नहीं टिक पा रही थी। सामने वाली दीवार पर एक छिपकली चल रही थी, वो उस पर नज़र जमाने की असफल कोशिश कर रहे थे। बेटा अखिल डाक्टर से बात करके उनके केबिन में गया हुआ था।

''आपके पिता के हार्ट में एटी पर्सेंट ब्लॉकेज आया है।'' डाक्टर ने रिपोर्ट का मुआयना कर बताया।

''पर इन्हें तो पहली ही बार ऐसी घबराहट का अहसास हुआ और मैं सीधे यहाँ लेकर चला आया।'' बेटे को उनकी हालत पर आश्चर्य हो रहा था।

''यह तो हम नहीं कह सकते कि कब से है। कभी-कभी बीमारी साइलेंट रहती है और अचानक ही लक्षण पैदा होते हैं।'' डाक्टर ने समझाया।

''मेरे पिता ठीक तो हो जाएँगे न!''

''इनकी बायपास सर्जरी करनी होगी।''

''बायपास...! सर्जरी करनी ज़रूरी है क्या। देख लीजिए न डाक्टर साहब, कोई और उपाय भी तो होगा। दवाइयों से काम नहीं चल सकता क्या?''

''अब केवल दवा से काम नहीं चल पाएगा।''

उधर पिता की नज़र अब छिपकली को साफ़-साफ़ देख पा रही थी।

''डॉक्टर साहब, बाईपास सर्जरी में तो बहुत पैसा ख़र्च होगा न!'' बेटे ने सुन रखा था।

''हमारे यहाँ सबसे कम ख़र्च में ट्रीटमेंट होता है।'' डॉक्टर ने दिलासा दिया।

''कुछ समय दीजिए, अभी तो इस इरादे से नहीं आया था।'' अखिल ने परिवार के लोगों से राय लेने व सेकेंड ओपिनियन लेने के इरादे से टालना चाहा।

''देख लीजिए, आपके पिता के दिल की हालत बहुत नाज़ुक है, कभी भी, कुछ भी हो सकता है।'' डॉक्टर ने चेताया। वर्मा जी का ध्यान न जाने क्यों छिपकली की ओर ही लगा था। निगाह कुछ साफ़ हुई तो पास ही एक पतंगा भी दीवार पर आसन जमाए दिखाई दिया। छिपकली दबे पाँव उसके नज़दीक पहुँच रही थी।

''पैसे का इंतज़ाम भी तो करना होगा, इतने पैसे लेकर नहीं चला था मैं।'' उसने समस्या से अवगत कराया।

''पैसे का क्या है, उन्हें भर्ती कर दीजिए व घर ख़बर कर दीजिए, या ऑनलाईन पेमेंट कर दीजिए, क्रेडिट कार्ड से भी चलेगा।''

''पर...''

''पर वर मत कीजिए, ऐसा न हो कि आप सोचते ही रह जाएँ, और...।'' अचानक नर्स ने आकर बताया, ''सर..., सर, इनके पेशेंट का ब्लड प्रेशर फिर से काफ़ी बढ़ गया है।''

''ओह..., कंडीशन बिगड़ रही है, जल्दी सोच लीजिए।'' डॉक्टर ने जल्द निर्णय लेने को कहा।

अखिल को कुछ नहीं सूझ रहा था। उसने घबराकर उनके सामने हाथ जोड़ लिए, ''डॉक्टर साब, कुछ भी करिए, बस, मेरे पिता जी को ठीक कर दीजिए।''

छिपकली ने आखिरकार फुर्ती से शिकार को दबोच ही लिया।

V

आर्य नगर, नई बस्ती, बिजनौर-246701 (उ.प्र.)
मोबाइल : 09837244343
ई मेल : drniraj.s.sharma@gmail.com

मंजरी कुमारी

रुक गया रोका

गुर्जरों की बस्ती 'आयानगर' दिल्ली महानगर का हिस्सा तो है, परंतु महानगरीय जीवन से अलग-थलग सा जान पड़ता है। इसी बस्ती में राखी अपने परिवार के साथ रहती है। राखी के पापा की चार कोठियाँ है, कोठियों से किराया आता है, तीनों भाई की अपनी-अपनी गाड़ी है। पापा ने अपना ढाबा भी खोल रखा है, बिक्री अच्छी हो जाया करती है।

राखी तीन भाइयों से छोटी है। सचिन, सौरभ, राहुल तीनों राखी के भाई कम बॉडीगार्ड ज्यादा लगते हैं। गुर्जर परिवार से संबंध रखने के बावजूद भी राखी ने राजनीतिक विज्ञान की पुस्तक में पढ़े मौलिक अधिकारों को याद रखा है तथा समय-समय पर परिवार वालों को भी इसकी याद कराती रहती है। राखी बोल्ड है, कद से 5 फीट 4 इंच की है और दिमाग की लंबाई उसने बड़ी रखी है। भाइयों ने आठवीं के बाद स्कूल का मुँह तक नहीं देखा लेकिन राखी पहली संतान है जिसने बिधूड़ी गोत्र को कॉलेज तक पहुँचाया है। वह गार्गी कॉलेज से बी.ए. पास कोर्स कर रही है। कुछ ही महीने में बी.ए. की पढ़ाई पूरी होने वाली है इसलिए उसके घर वाले राखी को राखी गांधी, लोहिया आदि बनाने पर तुले हुए हैं।

राखी बिधूड़ी बनकर ही खुश है। उसका सपना नौकरी करने का है। विवाह उसे छोटी चीज लगती है लेकिन विरोध करने में उसके स्वर अभी बहुत मजबूत नहीं हुए हैं। घरवालों ने राखी के लिए लड़कों पर नजर डालना शुरू कर दिया है। कल उसे लड़के वाले देखने आएँगे, शायद रोका भी कल ही हो जाए। लड़का वकालत की पढ़ाई कर रहा है। उसके पापा की छह कोठी और दो गाड़ी है। घरवालों को लड़का पसंद है। राखी की माँ गीता आज मंदिर में कीर्तन करवा कर आई है। माँ का दिल बेटी का बसता हुआ घर देखने को आतुर है।

सूर्योदय हो चुका है। आज घर की रौनक अलग ही है। सुबह से मेहमानों की खातिरदारी में विशेष व्यंजन बनाए जा रहे हैं और साग की 'मरम्मत' राखी स्वयं कर रही है। 'राखी-राखी' चिल्लाता हुआ सचिन कहीं बाहर से घर में प्रवेश करता है। राखी किचन से आवाज लगाती है-'आई भाई'। सचिन नसीहत देते हुए कहता है-'ओरी, सुण मेरी बात, अपणी जबाण ज्यादा मत चल्लइयो। तेरा भरोसा ना है, उन्नको पाठ पढ़ाने लग गई तो ब्याह होता रह जावेगा।'

राखी भाई की बात सुन मुस्कुराते हुए किचन की ओर चली जाती है। घड़ी में दस बजने की घंटी टनटना गई है। इधर डोर बेल बज गया, 'शायद लड़के वाले हैं' कहते हुए

सौरभ दरवाजा खोलता है। सामने आठ लोगों की टोली राखी को देखने के लिए बुलेट प्रूफ जैकेट पहने कई 'ब्रह्मास्त्रों' के साथ प्रवेश करती है। माँ और तीनों भाई स्वागत में लग गए हैं तथा राखी के पिता अजीत लड़के वालों को दहेज में कितना दे सकते हैं, इसकी कीमत बताने में व्यस्त हो गए। थोड़ी देर में माँ अपनी राखी को लेकर बैठक में पहुँचती है। दीपक की माँ होने वाली बहू को नीचे से ऊपर तक निहारती है। गाजरी रंग के गाऊन में राखी बेहद खूबसूरत लग रही है। चेहरे को ठीक से देखे बिना ही दीपक की माँ राखी से सवाल करती है-'लाली! सारा खाणा तैने बनायी?' इतना कहते ही दीपक की माँ पास बैठी गीता से कहने लगती है- 'देखो बहण, हमें तो अच्छा खाणा बणाण वाली चइए। मेरे बालक को खाणे में ऊँच-नीच ना पसंद।'

गीता मुस्कुराते हुए कहती है-'बहन जी! खाने की चिंता मत कीजिए, आज का सारा खाना राखी ने ही बनाया है।'

दुल्हा बनने का सपना देख रहा दीपक एक नजर राखी पर डालता है। राखी का चेहरा उसको बहुत कुछ कह देना चाहता है। दीपक की माँ इतने में एक 'बम' फेंकती है-'अब मन्ने यू न पता आज का खाणा किन्ने बणाया, मैंणे तो बस आपणी बात रख दी।'

ऐसे ही न जाने कितने प्रश्नोत्तरों की जमकर गोलाबारी दोनों माताओं के बीच चलती है। राखी मौन रहकर सब सुनते-सुनते अकुला जाती है और चीखती है-'बस....! बस कीजिए आप दोनों! आंटी आपने मुझे ठीक से देखा तक नहीं लेकिन मेरी माँ से मेरी योग्यताओं को जबरन उगलवा रहीं हैं। पढ़ाई की बात तक नहीं हुई। क्या आपके लिए सबसे बड़ी योग्यता खाना बनाने में 'संजीव कपूर' से आगे बढ़ जाना है? अगर हाँ, तो जिससे मेरी तुलना आप करना चाहती हैं, वह भी किसी का बेटा ही है। और क्या कहा आपने, अगर खाना मैंने नहीं बनाया है यह बात शादी के बाद साबित हुई या मैं स्वादिष्ट व्यंजन बनाने में असफल रही तो आपका बेटा दूसरी शादी कर लेगा। बहुत हुआ, अब मैं और बर्दाश्त नहीं कर सकती।'

राखी तेजी से खड़ी होती है और बोलती है-'दीपक जी, उठिए।' राखी की कड़क आवाज सुन दीपक सहम जाता है तथा अचानक उठ खड़ा होता है। राखी उसका हाथ पकड़कर उसे घसीटते हुए किचन की ओर बढ़ती है। राखी-दीपक के पीछे-पीछे पूरी टोली किचन में पहुँच जाती है। राखी बहुत सहजता से दीपक की माँ से कहती है-'अब आप 'लाइव' खाना बनाते हुए देख लीजिए।'

दीपक के सामने आलू पटक कर राखी उसको सब्जी काटने का हुक्म देती है तथा स्वयं आटा लगाने में तल्लीन हो जाती है। थोड़ी देर बाद जब राखी की नजर कटे हुए आलू पर पड़ती है तो वह मुस्कुराती हुई कहती है-'होणे वाली सासू माँ, आप मो ते यू कह रही हो कि तो खाणा बणाणा ना आवे, सब्जी-रोटी बणाणी नो आवे। तो सुणौ, तमारे बाणक ना पता भी है सब्जी कैसे काटा करें? कैसे काटा करें आणू? तमारे बालक को खाण में ऊँच-नीच पसंद ना है, तो सुणो मेरी बात पहले बालक नू ट्रेन कर दो खाणा बणाणे में, फिर किसी लौंडिया से सवाल कर लेणा।'

राखी को सबकी निगाहें घूर रही है। दीपक राखी से 'सॉरी' बोलता है, और कहता है-'मुझे यह रिश्ता मंजूर है। मैं कैसा भी खाना खाने को तैयार हूँ। राखी तुम भी हाँ कह दो।'

राखी की मुस्कान गहरी हो जाती है-'माफ कीजिएगा दीपक जी, यह शादी अब नहीं हो सकती, वह क्या है न, आपको आलू तक काटना नहीं आता।'

अचानक अजीब-सा सन्नाटा छा जाता है।

❖

स्वतंत्र पत्रकार एवं लेखिका
92, जमयदपुर, जी.के. 1, नई दिल्ली-110048
मोबाइल : 9811094198, ई-मेल : mmanjari2000@gmail.com

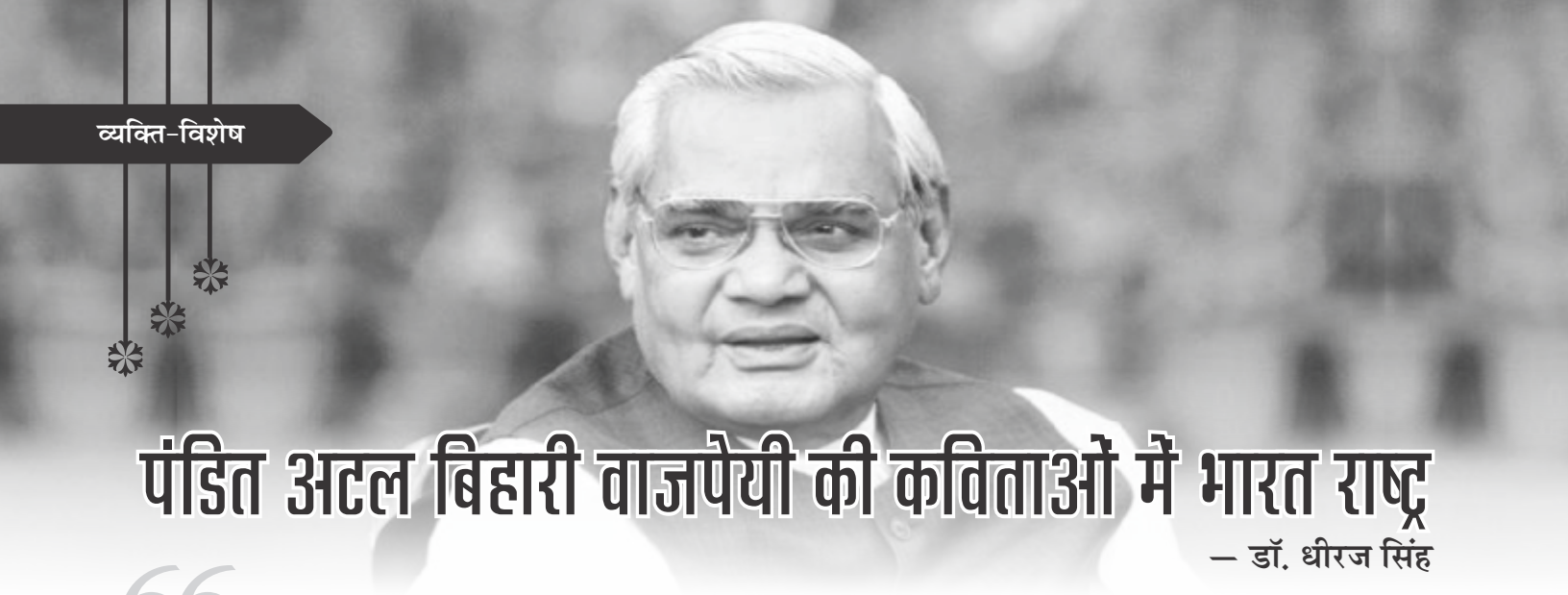

पंडित अटल बिहारी वाजपेयी की कविताओं में भारत राष्ट्र

— डॉ. धीरज सिंह

बचपन में बालक अटल के मन में जो राष्ट्रवाद का बीज पड़ा आरएसएस के प्रभाव में वह बीज अंकुरित, पल्लवित व पुष्पित होकर विकसित हुआ। एक प्रमुख राष्ट्रवादी राजनेता के रूप में अटलजी देश में स्थापित हुए। उनकी विचारधारा की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में मिलती है। अटल के राष्ट्रवादी तेवर उनकी कविताओं में नए जोश से मुखरित हुए। वैसे अटलजी ने अपनी कविताओं में अनेक विषयों को उठाया लेकिन उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्र और राष्ट्रवाद है। राष्ट्र की महिमा के गुणगान से लेकर उसकी समस्याओं पर अटलजी ने निर्भीक होकर अपनी लेखनी चलाई है। उनकी कविताएँ यथार्थ को बड़ी ही बेबाकी से चित्रित करती हैं। भारत की पहचान अति प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र के रूप में रही है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भारत राष्ट्र की उसी प्राचीन अवस्थिति को अपने चिंतन में स्वीकार किया है।

पंडित अटल बिहारी वाजपेयी भारतीय राजनैतिक क्षितिज के एक दैदीप्यमान नक्षत्र थे जिन्हें उनके मित्रों और अनुगामियों की भाँति ही विरोधियों में भी समान रूप से पसंद किया जाता था। वे एक राजनेता होने के साथ हिंदी के कवि भी थे। कविता उनको वंशानुगत रूप से मिली थी। उनके पिता श्री कृष्ण बिहारी वाजपेयी ब्रजभाषा व हिंदी के सिद्धहस्त कवि थे। उनकी मनमोहक मुस्कान, वाणी में ओज, वक्तृता, विचारधारा के प्रति निष्ठा, सहज व सरल व्यक्तित्व और ठोस निर्णय लेने की क्षमता के सभी कायल थे। कवि, राजनेता व पत्रकार इन सभी भूमिकाओं में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। अपने व्यक्तित्व व कृतित्व से उन्होंने अपने विपक्षियों के मन में भी अपनी व्यापक स्वीकार्यता बनाई व सम्मान हासिल किया। उनकी सौम्य छवि व सर्वस्वीकार्यता का ही परिणाम था कि गठबंधन की सरकार होने के बावजूद वे ऐसे पहले गैर कांग्रेसी प्रधानमंत्री बने जिन्होंने अपना प्रधानमंत्री का 5 वर्ष का कार्यकाल कुशलता व सफलतापूर्वक पूर्ण किया।

अटलबिहारी वाजपेयी के मन में राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना बचपन से ही कूट-कूट कर भरी थी। 1942 ई. में गाँधी जी के आह्वान पर उनके द्वारा प्रारम्भ किए गए-अंग्रेजों भारत छोड़ो-आंदोलन होने के कारण उन्हें 24 दिनों के कारावास की सजा भुगतनी पड़ी थी। 1939 ई. में वे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्य बने और संघ से उनका ये संबंध उनके सम्पूर्ण जीवन भर चला। आरएसएस की हिंदुत्व एवं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा को उन्होंने पूरी तरह स्वीकार व आत्मसात किया। आरएसएस के राष्ट्रवादी वैचारिक परिवेश में बालक अटल पले-बढ़े। वैचारिक स्तर पर आरएसएस ने उनके मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला।

बचपन में बालक अटल के मन में जो राष्ट्रवाद का बीज पड़ा आरएसएस के प्रभाव में वह बीज अंकुरित,

पल्लवित व पुष्पित होकर विकसित हुआ। एक प्रमुख राष्ट्रवादी राजनेता के रूप में अटलजी देश में स्थापित हुए। उनकी विचारधारा की अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में मिलती है। अटल के राष्ट्रवादी तेवर उनकी कविताओं में नए जोश से मुखरित हुए। वैसे अटलजी ने अपनी कविताओं में अनेक विषयों को उठाया लेकिन उनकी कविता का मूल स्वर राष्ट्र और राष्ट्रवाद है। राष्ट्र की महिमा के गुणगान से लेकर उसकी समस्याओं पर अटलजी ने निर्भीक होकर अपनी लेखनी चलाई है। उनकी कविताएँ यथार्थ को बड़ी ही बेबाकी से चित्रित करती हैं।

भारत की पहचान अति प्राचीन काल से ही एक राष्ट्र के रूप में रही है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने भारत राष्ट्र की उसी प्राचीन अवस्थिति को अपने चिंतन में स्वीकार किया है। संघ ने भारतीय संस्कृति को भारतीय राष्ट्रीयता के मूल के रूप में स्वीकार करते हुए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा विकसित की। पंडित अटल बिहारी वाजपेयी संघ के कर्मठ कार्यकर्ताओं में से एक थे जिन्होंने राष्ट्रसेवा हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन संघ को समर्पित कर दिया और निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र सेवा के व्रती के रूप में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया। संघ व राष्ट्र के प्रति उनकी निष्ठा अद्‌भुत थी। संघ के द्वारा विकसित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की ठोस अवधारणा के आधार पर पंडित अटल बिहारी वाजपेयी की राष्ट्र की संकल्पना विकसित हुई। और उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से अपनी उस संकल्पना को समय-समय पर भारतीय जनमानस के समक्ष प्रस्तुत किया।

प्रस्तुत शोध आलेख में पंडित अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा समय-समय पर रची गई कविताओं में राष्ट्र व उसके स्वरुप का चित्रण जिस रूप में किया गया है उसी का विश्लेषण यहाँ करने का प्रयास किया गया है।

पंडित अटल बिहारी वाजपेयी एक लोकप्रिय राजनेता होने के साथ ही एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी कवि भी थे जिनके काव्य सृजन का मूल प्रतिपाद्य राष्ट्र, राष्ट्रीयता व मानवता थे। उनके राष्ट्रवादी संस्कार संघ के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद से प्रेरित, पालित व पोषित थे। उनके राग-राग में राष्ट्र के प्रति अतुलनीय प्रेम था। उनकी राष्ट्र के प्रति यह प्रेमासक्ति उनकी कविताओं में भी अभिव्यक्त हुई है । पंडित वाजपेयी ने भारत पर बहु भाँति अपनी लेखनी चलाते हुए अपनी राष्ट्रीय भावनाओं को स्वर, सुर व लय प्रदान की। अपने काव्य में उन्होंने राष्ट्र के गीत लिखे, उसकी विशिष्टताओं को उकेरा और इसके साथ ही राष्ट्र में व्याप्त कमियों को भी इंगित करने से नहीं चूके। उन्होंने राष्ट्र से निःस्वार्थ भाव से प्रेम किया और उस प्रेम को उजागर भी किया। उनकी कविताओं में भारत राष्ट्र का जो चित्रण उनके द्वारा प्रस्तुत किया गया है उसे निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

1. भारत एक अति प्राचीन व एकमात्र जीवित राष्ट्र

सम्पूर्ण विश्व इस तथ्य से अवगत है कि भारत विश्व के प्राचीनतम राष्ट्रों में से एक है। यही एक ऐसा प्राचीनतम राष्ट्र है जिसकी सभ्यता व संस्कृति जीवित है। इस तथ्य को राजनेता व कवि दोनों ही रूपों में पंडित अटल बिहारी वाजपेयी ने स्वीकार किया। उनकी राजनैतिक विचारधारा में यह एक प्रमुख विचारबिंदु है। कवि के रूप में उन्होंने इस तथ्य को मुखर रूप से स्थान-स्थान पर अपनी कविताओं में उद्धृत किया है। उनके साहित्य-सृजन में राष्ट्र वरीय रहा है। राष्ट्र की इस विशेषता को उन्होंने बख़ूबी उभारा है। विश्व का इतिहास गवाह है कि अनेक संघर्षों एवं झंझावातों को झेलते हुए भारत ने अपने अस्तित्व को बनाए रखा। विश्व पटल से अनेक राष्ट्र जो एक समय में अतिसमृद्धशाली, शक्तिशाली व गौरवशाली हुआ करते थे उनका नाम अब इतिहास बन चुका है। विश्व पटल से उनका अस्तित्व विलुप्त हो गया है। अटलजी ने अपनी कविता "आज सिंधु में ज्वार उठा है" में इस तथ्य को चित्रित करते हुए लिखा है-

"शत शत आघातों को सहकर
जीवित हिंदुस्थान हमारा
जग के मस्तक पर रोली सा
शोभित हिंदुस्थान हमारा।

दुनिया का इतिहास पूछता
रोम कहाँ, यूनान कहाँ है
घर घर में शुभ अग्नि जलाता
वह उन्नत ईरान कहाँ है?

दीप बुझे पश्चिमी गगन के
व्याप्त हुआ बर्बर अँधियारा
किंतु चीर कर तम की छाती
चमका हिंदुस्थान हमारा।"[1]

भारत की यह विशेषता उसको विश्व में एक विशिष्ट स्थान दिलाती है। विश्व का एकमात्र प्राचीनतम जीवित राष्ट्र भारत ही है। अटलजी ने इस तथ्य को अपनी कविताओं में प्रमुखता के साथ स्थान दिया है।

2. भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति

विश्व पटल से अनेक प्राचीन राष्ट्र अपना अस्तित्व खो बैठे किंतु भारत राष्ट्र एकमात्र प्राचीनतम जीवित राष्ट्र के रूप में आज भी सुरक्षित है। यह विचारणीय है। यदि विचार करें तो पाते हैं कि यहाँ की संस्कृति ऐसी है जिसने राष्ट्र को सदैव जीवमान बनाए रखा। भारतीय संस्कृति प्राचीनतम संस्कृतियों में से है। एक समय में मिश्र, यूनान, इराक, ईरान देश थे जिनकी सभ्यता और संस्कृति अति विकसित थी लेकिन कालचक्र के प्रवाह में आज उन राष्ट्रों का अस्तित्व विलीन हो गया, उनकी सभ्यता एवं संस्कृति विनष्ट हो गई। भारत ही एकमात्र ऐसा राष्ट्र है जिसकी संस्कृति सादजीवा संस्कृति के रूप में अपनी पहचान बनाए रखते हुए अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखा और अनवरत प्रवाहमान है। भारतीय संस्कृति का यह प्रवाह कभी बाधित नहीं हुआ। राष्ट्र के समक्ष अनेक कठिन व विकट परिस्थितियाँ आईं लेकिन राष्ट्र की संस्कृति का प्रवाह कभी खंडित नहीं हुआ।

अटलजी भारत की इस सांस्कृतिक विशिष्टता को पहचानते थे। अपने काव्य में उन्होंने इस विशिष्टता को उल्लिखित किया। वे प्रश्न करते हैं कि –

"दुनिया का इतिहास पूछता
रोम कहाँ यूनान कहाँ है,
घर-घर में शुभ अग्नि जलाता
वह उन्नत ईरान कहाँ है?"[2]

आज पश्चिमी जगत के देश विकसित, उन्नत, सभ्य व सुसंस्कृत माने जाते हैं। भारतीय संस्कृति तो तब से उन्नत व विकसित थी जब पश्चिमी जगत अति पिछड़े, अशिक्षित, असभ्य व बर्बर थे। इस तथ्य का उल्लेख करते हुए अटलजी लिखते हैं –

"जब पश्चिम ने वन फल खाकर
छाल पहन कर लाज बचाई
तब भारत से साम गान का
स्वर्गिक स्वर था दिया सुनाई।"[3]

जब पश्चिमी जगत अशिक्षा के घोर अंधकार में घिरा हुआ था उस समय भारत में वेदों की रचना हो चुकी थी जिसके आलोक में भारतीय संस्कृति विकास की चरमावस्था को प्राप्त कर रही थी। पश्चिमी जगत जब ज्ञान के अलोक से वंचित हो बर्बर व असभ्य जीवन व्यतीत कर रहा था तब भारत में विश्व स्तरीय शिक्षा के केंद्र मौजूद थे और विश्वविद्यालयी शिक्षा का प्रचलन था। जब विश्व के अन्य देशों में सामाजिक नियमों का कोई सार्वजनिक प्रणयन नहीं हुआ था तब भारत में स्मृतियों एवं संहिताओं के माध्यम से निश्चित सार्वजनिक सामाजिक नियमों की स्थापना हो चुकी थी। अटलजी ने इस तथ्य को अपने काव्य में स्थान प्रदान किया।

3. भारत विश्वगुरु

भारत को विश्व में प्राचीन ज्ञान, धर्म एवं दर्शन की गुरुस्थली मन जाता है। पूरे विश्व में प्राचीनकाल से ही भारत को विश्वगुरु का दर्जा प्राप्त है। भारतीय ज्ञान के

आलोक में यहाँ अनेक सभ्यताओं का निर्माण हुआ। भारत पूरे विश्व के लिए ज्ञान का सर्वप्रमुख केंद्र हुआ करता था। विश्व के कोने-कोने से पिपासु लोग भारत में ज्ञानार्जन के लिए आया करते थे। भारतीय मनीषियों द्वारा सृजित वेद विश्व में ज्ञान के प्राचीनतम व प्रमाणिक स्रोत माने जाते हैं। कवि अटल के शब्दों में -

"वेद-वेद के मंत्र-मंत्र में,
मंत्र-मंत्र की पंक्ति-पंक्ति में,
पंक्ति-पंक्ति के शब्द-शब्द में,
शब्द-शब्द के अक्षर स्वर में,
दिव्य ज्ञान-आलोक प्रदीपित,
सत्यं, शिवं, सुन्दरं शोभित,
कपिल, कणाद और जैमिनि की
स्वानुभूति का अमर प्रकाशन,
विशद-विवेचन, प्रत्यालोचन,
ब्रह्म, जगत, माया का दर्शन।
कोटि-कोटि कंठों में गूँजा
जो अति मंगलमय स्वर्गिक स्वर,
अमर राग है, अमर राग है।"[4]

भारत विश्वगुरु क्यों है? इस संदर्भ में अटलजी लिखते हैं-

"मैं अखिल विश्व का गुरु महान देता विद्या का अमर दान,
मैंने दिखलाया मुक्तिमार्ग मैंने सिखलाया ब्रह्मज्ञान
मेरे वेदों का ज्ञान अमर, मेरे वेदों की ज्योति प्रखर।"[5]

जब विश्व अज्ञानता के अंधकार में जकड़ा था तब भारत से ज्ञान का अलोक प्रकाशित हुआ और सम्पूर्ण विश्व को उसने नवीन ज्ञानयुक्त पथ पर चलने हेतु प्रेरित किया। -

"अज्ञानी मानव को हमने
दिव्य ज्ञान का दान दिया था
अम्बर के ललाट को चूमा
अतल सिंधु को छान लिया था।"

भारत विश्व गुरु ऐसे ही नहीं कहा जाता है। यह तो एक ऐसा पावन स्थल है जहाँ कुरुक्षेत्र जैसे युद्ध के सजे मैदान में भी भगवद्गीता की रचना होती है।

"अमर भूमि में, समर भूमि में
धर्म भूमि में, कर्म भूमि में
गूँज उठी गीता की वाणी,
मंगलमय जन-जन कल्याणी
अपढ़ अजान विश्व ने पाई
शीश झुका कर एक धरोहर
कौन दार्शनिक दे पाया है,
अब तक ऐसे जीवन दर्शन।"[6]

4. भारत एक सहिष्णु राष्ट्र

भारत एक ऐसा सहिष्णु राष्ट्र है जिसने धर्म, भाषा, जाति, क्षेत्र आदि के नाम पर न कभी अत्याचार किया है और न ही इस आधार पर कभी किसी का परित्याग किया है। विश्व का इतिहास साक्षी है कि भारत में विश्व के कोने-कोने से लोग धन की आकांक्षा लेकर इसे लूटने आए, अपने मत का प्रचार-प्रसार करने आए और ज्ञान क्षुधा को भी तृप्त करने आए किंतु, भारत न तो धन पिपासु के रूप में, न अज्ञानी के रूप में और न ही धर्म प्रचारक के रूप में विश्व में कहीं गया। क्यों? क्यों कि भारत तो स्वयं ही इन सबसे समृद्ध था। इतिहास में एक भी ऐसा प्रसंग नहीं मिलता कि कभी किसी भारतीय शासक ने आक्रांता बनकर विश्व के किसी देश में लूट की हो, धर्म का प्रचार-प्रसार किया हो। किन्तु जब भारत में बाहरी लोग आए तो भारत ने सदैव उसे अपनाया, बढ़ कर सहारा दिया और उसे गले लगाया। भारत के कण-कण में व्याप्त सहिष्णुता की भावना को अटलजी ने सदैव अनुभूत किया और अपनी कविताओं में इस भाव को स्वर प्रदान किया। -

"होकर स्वतन्त्र मैंने कब चाहा है कर लूँ सब को गुलाम?
मैंने तो सदा सिखाया है करना अपने मन को गुलाम।
गोपाल-राम के नामों पर कब मैने अत्याचार किया?
कब दुनिया को हिंदू करने घर-घर में नरसंहार किया?
कोई बतलाए क़ाबुल में जाकर कितनी मस्जिद तोड़ी?

भूभाग नहीं, शत शत मानव के हृदय जीतने का निश्चय।
हिंदू तन मन, हिंदू जीवन, रग रग हिंदू मेरा परिचय!"[7]

5. मानवता के प्रति समर्पित राष्ट्र

भारत सदैव मानवता के प्रति समर्पित राष्ट्र रहा है। यहाँ की प्राचीन संस्कृति "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" का उद्घोष करती है जो सम्पूर्ण मानवता के प्रति सद्भाव का द्योतक है। भारत में सदैव 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना विद्यमान रही है। सर्व कल्याण भारतीय संस्कृति का मूल है। कितनी भी विपरीत परिस्थिति क्यों न हो किंतु भारत में सदैव मानवता की रक्षा व समाज के हित के लिए यहाँ अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वालों की कभी कमी नहीं रही है। यहाँ मनीषी दधीचि, राजा शिवि, राजा हरिश्चंद्र, दानी भामाशाह, पन्ना धाय आदि अनेकों ऐसे महानायक रहे हैं जिन्होंने सत्य, परोपकार, शरणागत की रक्षा आदि के लिए अपना सर्वस्व लुटा दिया। जो भी विदेशी भारत में आया उसे सहर्ष स्वीकार कर अपनाया गया। अटलजी के ही भाव में –

"हमने उर स्नेह लुटा कर,
पीड़ित ईरानी पाले हैं,
निज जीवन की ज्योति जलाकर,
मानवता के दीपक बाले हैं।
जग को अमृत का घट देकर,
हमने विष का पान किया था,
मानवता के लिए हर्ष से
अस्थि बज्र का दान दिया था।"[8]

भारत का तो भाव ही रहा है "समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी"। "परहित सरिस धरम नहीं भाई" का उद्घोष तुलसी दास जी ने भी राम चरित मानस में किया है। अटलजी भी भारत में उसी परंपरा के दर्शन करते हुए लिखते हैं –

"मैं तेजपुंज तमलीन जगत में फैलाया मैंने प्रकाश,
जगती का रच करके विनाश कब चाहा है निज का विकास,
शरणागत की रक्षा की है मैंने अपना जीवन देकर,
विश्वास नहीं यदि आता तो साक्षी है यह इतिहास अमर।"[9]

उनके दृष्टिकोण में पर उपकार में निज जीवन का त्याग भारत की विशिष्टता है। भारत ऐसा देश है जिसके दरवाजे सभी के लिए सदा खुले हैं। यहाँ कभी कोई त्यागा नहीं गया, तिरस्कृत नहीं हुआ, पर सेवा में यहाँ सर्वस्व न्योछावर करने की परंपरा प्राचीन काल से ही विद्यमान है। मानवता के प्रति ऐसा समर्पण का भाव विश्व में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता जैसा भारत में है।

"मैंने छाती का लहू पिला, पाले विदेश के क्षुधित लाल।
मुझको मानव में भेद नहीं, मेरा अन्तस्थल वर विशाल।
जग से ठुकराए लोगों को लो मेरे घर का खुला द्वार।
अपना सब कुछ हूँ लुटा चुका,
फिर भी अक्षय है धनागार।"[10]

6. भारत की अखंडता में विश्वास

अटलजी राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के कार्यकर्ता थे। बचपन से ही संघ के संस्कार व विचार उनमें कूट-कूट कर भरे थे। संघ के अखंड भारत के विचार को अटलजी ने स्वीकारा और उसके अनुयायी बने। उनकी कविताओं में यह तथ्य पूर्ण स्पष्टता के साथ उभर कर आता है। एक राष्ट्रवादी विचारक होने के नाते उन्होंने संघ के अखंड भारत के विचार को आगे बढ़ाया। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने इसके लिए प्रयास भी किया। उनके मन में एक विश्वास है कि भारत एक दिन सभी के प्रयास से पुनः अखंड भारत बनेगा।

"दिन दूर नहीं खंडित भारत को पुनः अखंड बनाएँगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक आजादी पर्व मनाएँगे।
उस स्वर्ण दिवस के लिए
आज से कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएँ
जो खोया उसका ध्यान करें।"[11]

विखंडित भारत उन्हें स्वीकार नहीं है। भारत-विभाजन पर उनके मन में आक्रोश भी है और ग्लानि भी। इस ग्लानि और आक्रोश को व्यक्त करते हुए वे

बरबस कह उठते हैं –

"किन्तु आज पुत्रों के शोणित से
रंजित वसुधा की छाती,
टुकड़े-टुकड़े हुई विभाजित,
बलिदानी पुरखों की थाती।"[12]

उनकी आकांक्षा तो ऐसे अखंड, शक्तिशाली, वैभवशाली व प्रभावशाली भारत की थी जहाँ मानवता जीवित हो, लोगों में आपस में सौहार्द हो और बिना किसी भेदभाव के सभी शांति पूर्वक सुखमय तरीके से रहते हों।

7. भारत एक हिंदू राष्ट्र

1947 में देश धर्म के आधार पर विभाजित हुआ। भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र के रूप में स्थापित हुआ। किन्तु भारत के कुछ बुद्धिजीवी वर्ग ने धर्म निरपेक्षता के नाम पर देश के बहुसंख्यक वर्ग अर्थात् हिंदुओं के हितों से समझौता करते हुए अल्पसंख्यकों के मुद्दों को अनावश्यक तूल देते हुए एक अलग तरह की राजनीति प्रारम्भ की जिसमें अल्पसंख्यक वर्ग एक वोट बैंक के रूप में समझा गया। इस प्रकार देश में तुष्टिकरण की राजनीति प्रारंभ हो गई। अटलजी इस तरह की राजनीति के घोर विरोधी थे। उनके रग-रग में संघ के संस्कार रचे-बसे थे। वे संघ की हिंदू राष्ट्र की संकल्पना स्वीकारते हैं किंतु, इसका आशय यह कदापि नहीं है कि वे धार्मिक कट्टरता के पक्षधर थे। वे धर्म व तुष्टिकरण की राजनीति का विरोध करते थे। वे हिंदुत्व की उस छवि के उपासक थे जिसके मूल में "वसुधैव कुटुम्बकम" व "सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया" का ही भाव था। जब वे मात्र 16-17 वर्ष के थे तब उन्होंने एक कविता "हिंदू मेरा परिचय" की रचना की थी जो उनके इन भावों को स्पष्ट करने में पूर्णत: सक्षम है। उसका एक अंश दृष्टव्य है –

"मैं एक बिंदु परिपूर्ण सिंधु है यह मेरा हिंदु समाज।
मेरा इसका संबंध अमर, मैं व्यक्ति और यह है समाज।
इससे मैंने पाया तन मन, इससे मैंने पाया जीवन।
मेरा तो बस कर्तव्य यही, कर दूँ सब कुछ इसके अर्पण।
मैं तो समाज की थाती हूँ, मैं तो समाज का हूँ सेवक।
मैं तो समष्टि के लिए व्यष्टि का
कर सकता बलिदान अभय।
हिंदू तन-मन, हिंदू जीवन,
रग-रग हिंदू मेरा परिचय!"[13]

छद्मधर्म निरपेक्षता का सहारा लेकर तुष्टिकरण की राजनीति करने वाले हिंदू नेताओं के कारनामों को देख कर कवि अटल का हृदय व्यग्र व व्याकुल होकर चीत्कार करते हुए कह उठता है-

"आँख खोल कर देखो घर में भीषण आग लगी है,
धर्म सभ्यता संस्कृति खाने दानव क्षुधा जगी है।
हिंदू कहने में शरमाते, दूध लजाते, लाज न आती,
घोर पतन है, अपनी माँ को माँ कहने में फटती छाती।"[14]

8. भारत एक जीवमान इकाई

अटलजी एक कोमल भावनाओं से युक्त, सहृदय और राष्ट्रवादी कवि थे। उनकी कविताओं में राष्ट्र के प्रति सम्पूर्ण समर्पण का भाव था। राष्ट्र उनके लिए सर्वोच्च था। वे राष्ट्र के उपासक थे। उनके लिए भारत मात्र ज़मीन का टुकड़ा नहीं था। उनके लिए तो राष्ट्र उनका आराध्य था, एक राष्ट्रपुरुष था जिसकी आराधना में वे अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहते थे और व्यतीत किया भी। उनके लिए राष्ट्र सर्वाधिक पूजनीय और सबसे प्रिय पुण्यभूमि है। राष्ट्र का मानवीकरण कर उन्होंने राष्ट्र को अपने इष्टदेव या आराध्यदेव के रूप में माना। राष्ट्र के प्रति अपने इस समर्पण भाव को उन्होंने निम्नोक्त रूप में प्रस्तुत किया –

"भारत ज़मीन का टुकड़ा नहीं,
जीता जागता राष्ट्रपुरुष है।
हिमालय मस्तक है, कश्मीर किरीट है,
पंजाब और बंगाल दो विशाल कंधे हैं।
पूर्वी और पश्चिमी घाट दो विशाल जंघाएँ हैं।
कन्याकुमारी इसके चरण हैं,
सागर इसके पग पखारता है।
यह चंदन की भूमि है, अभिनंदन की भूमि है,
यह तर्पण की भूमि है, यह अर्पण की भूमि है।

इसका कंकर-कंकर शंकर है,
इसका बिंदु-बिंदु गंगाजल है।
हम जिएँगे तो इसके लिए
मरेंगे तो इसके लिए।"[15]

उनके अनुसार भारत एक जीवित राष्ट्रपुरुष है जिसकी आराधना प्रत्येक देशवासी द्वारा की जानी चाहिए। राष्ट्र के प्रति वे सर्वस्व अर्पण करने का भाव रखते हैं।

निष्कर्ष

पंडित अटलबिहारी वाजपेयी देश के अग्रणी लोकप्रिय राजनेता थे जिनकी प्रसिद्धि राजनेता के साथ-साथ एक राष्ट्रवादी मंचीय कवि के रूप में भी थी। उनकी कविताएँ नई ऊर्जा व नई आशा का संचार करने वाली हैं। एक राष्ट्रवादी कवि होने के नाते उन्होंने राष्ट्र को समर्पित अनेक कविताओं का सृजन किया। उन कविताओं के माध्यम से भारत राष्ट्र के प्रति उनकी श्रद्धा को समझा जा सकता है। वे राष्ट्र को अपना सर्वस्व मानते हैं और राष्ट्र के लिए अपना सब-कुछ अर्पण करने के लिए तत्पर भी थे। यह भाव उनकी कविताओं में ही नहीं है अपने जीवन में उन्होंने इस भाव को जिया। राष्ट्र उनके लिए सर्वोच्च है और राष्ट्र को उनका सब-कुछ अर्पण है। उनका सम्पूर्ण जीवन इसका प्रमाण है। राष्ट्र की उन्नति व विकास के लिए वे सम्पूर्ण जीवन प्रयासरत रहे। राष्ट्र सेवा उनका ध्येय था और उन्हें पूर्ण विश्वास भी था कि भारत एक दिन पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करेगा उसके लिए कितना भी बलिदान क्यों न देना पड़े।

"शुद्ध हृदय की ज्वाला से
विश्वास-दीप निष्कंप जलाकर।
कोटि-कोटि पग बढ़े जा रहे,
तिल-तिल जीवन गला-गलाकर।
जब तक ध्येय न पूरा होगा,
तब तक पग की गति न रुकेगी।
आज कहे चाहे कुछ दुनिया
कल को बिना झुके न रहेगी।"[16]

संदर्भ

1. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "आज सिंधु में ज्वार उठा है" का अंश।
2. उपरोक्त
3. उपरोक्त
4. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "अमर आग है" का अंश।
5. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "हिंदू मेरा परिचय" का अंश।
6. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "अमर आग है" का अंश।
7. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "हिंदू मेरा परिचय" का अंश।
8. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "आज सिंधु में ज्वार उठा है" का अंश।
9. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "हिंदू मेरा परिचय" का अंश।
10. उपरोक्त
11. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "स्वतंत्रता दिवस की पुकार" का अंश।
12. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता-आज सिंधु में ज्वार उठा है-का अंश ।
13. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता-हिंदू मेरा परिचय-का अंश ।
14. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "आज सिंधु में ज्वार उठा है" का अंश ।
15. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "भारत जमीन का टुकड़ा नहीं है" का अंश।
16. अटलबिहारी वाजपेयी द्वारा रचित कविता "कंठ-कंठ में एक राग है" का अंश।

❖

विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग
मॉडर्न कालेज ऑफ प्रोफेशनल स्टडीज, मोहननगर, गाजियाबाद
मोबाइल : 7906520143, 9711149575
ई-मेल : dhirajsingh07@gmail.com

राष्ट्रीय भावबोध और स्वाभिमान के कवि अटल बिहारी वाजपेयी

— डॉ. अमूल्य रत्न महांति

अटल के राष्ट्रीय भाव बोध में निराशा का कहीं लेश मात्र चिह्न नहीं है, न ही वे केवल और केवल अहिंसा के बल पर देश की रक्षा चाहते हैं। अहिंसा का अर्थ कतई यह नहीं कि हम अपने पर होने वाले अत्याचार को चुपचाप सह लें। आवश्यकता पड़ने पर अटल जी विद्रोह की चिंगारी सुलगाना भी जानते हैं। देश की रक्षा तथा सुख-समृद्धि के लिए वे कहते हैं कि केवल अपने भाग्य पर रोने से परिस्थितियाँ नहीं बदलेंगी। आज तो आँसू छोड़ खून देने की स्थिति आ पड़ी है। हमारे आगे की राहें यदि काँटों से भरी पड़ी हैं, तो भी उन पर पाँव धरकर हमें आगे बढ़ना ही होगा। अपना सर्वस्व बाजी लगाकर भारत माता के क्लेशों का हरण करना होगा।

शासनतंत्र जब अपनी सत्ता को अनंत काल तक बनाए रखने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित होकर जनता पर अपनी प्रभुता लाद रहा था। देश की संप्रभुता, एकता और अखंडता तानाशाही शासन व्यवस्था के सामने सिसक रही थी। समाज के हर वर्ग पर अत्याचार ढाए जा रहे थे। लोकतंत्र का, समाजतंत्र का और सर्वोपरि न्याय तंत्र का स्वर क्षीण हो चला था। पत्रकारिता की वाक्-स्वतंत्रता समाप्त हो चुकी थी। जनता घोर निराशा की निविड़ अंधकार में त्राहिमाम कर रही थी तब प्राची की अरुणिमा में गुरु गंभीर उद्घोष सुनाई पड़ा-

दाँव पर सब कुछ लगा है, रुक नहीं सकते।
टूट सकते हैं मगर हम झुक नहीं सकते।[1]

राष्ट्रीय विपदा की इस बेला में सहमी हुई, डरी हुई जनता में यह सुनकर नव उन्मादना जाग उठी। उसने तानाशाही शासन-व्यवस्था का उन्मूलन करने का कृत संकल्प दोहराया। यह उद्घोष वज्र से भी कठोर अडिग संकल्पधर्मा राजनेता और कोमल कुसुम हृदय धारी राष्ट्रभक्त कवि अटल जी का ही था।

अटल की कविताओं में राष्ट्रभक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति सत्ता का महिमामंडन चापलूसी है। आपातकाल के दौरान जब कांग्रेस अध्यक्ष देवकांत बरुआ ने 'इंदिरा ही इंडिया' कहा, तब अटल का क़ैदी कवि चुप न रह सका। अटल का यह राष्ट्रकवि चुप भी कैसे होता? जिसे भारत केवल ज़मीन का टुकड़ा नहीं, जीता-जागता राष्ट्रपुरुष लगता हो, जो देश के कंकर-कंकर में भगवान शंकर के प्रतिरूप के दर्शन करता हो। जिसकी दृष्टि में यह वंदन और अभिनंदन की भूमि है, उसके सामने उस भारत माँ की तुलना एक व्यक्ति से की जाए, यह उसके लिए असह्य था। कवि अटल ने अपनी कविता में ऐसी समानता को सिरे से खारिज करते हुए बरुआ जी को चमचों का सरताज माना और कहा-

'इंदिरा इंडिया एक है,'
इति बरुआ महाराज;
अकल घास चरने गई,
चमचों का सरताज;
चमचों का सरताज,
किया अपमानित भारत;
एक मृत्यु के लिए कलंकित,

भूत भविष्यत;
कह कैदी कविराय,
स्वर्ग से जो महान है;
कौन भला उस भारत
माता के समान है?[2]

अटल जी की कविताएँ राष्ट्रीय भावबोध की अनुगूँज से मुखर हैं, जो आम जनता के मन में राष्ट्र के लिए मर मिटने का अमिट राग पैदा करती हैं। आज़ादी के सात दशक बीत जाने के बाद भी हमारी प्रगति ज्यों की त्यों है। आज हमारी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति डाँवाडोल है। शासन तंत्र की अदूरदर्शिता का परिणाम है कि आज दोपहर में भी अंधियारा दिख रहा है। पड़ाव को मंजिल समझने के कारण आज हम अपने लक्ष्य से च्युत हो गए हैं। हमारा प्रगति-यज्ञ रुक गया है। हमारे लोग ही इसमें निरंतर विघ्न डाल रहे हैं। अटल जी देश के नव निर्माण के लिए कृत संकल्पित हैं। इसीलिए इन आसुरी शक्तियों से लड़ने और बुझी हुई बाती को सुलगा कर दीया जलाने के लिए वे युवा वर्ग का आह्वान करते हैं-

भरी दुपहरी में अंधियारा,
सूरज परछाई से हारा,
अंतरतम का नेह निचोड़ें,
बुझी हुई बाती सुलगाएँ।
आओ फिर से दिया जलाएँ।[3]

अटल जी को राष्ट्र अपने प्राणों से भी प्रिय है। वे आज की आज़ादी को अधूरा मानते हैं। वे कहते हैं कि आज भी हमारे सपने सच नहीं हुए हैं। अखंड भारत का सपना हमारे लिए अभी भी सपना बनकर रह गया है। रावी में ली गई शपथ अब भी पूरी नहीं हुई है-

पंद्रह अगस्त का दिन कहता-आज़ादी अभी अधूरी है।
सपने सच होने बाकी हैं, रावी की शपथ न पूरी है॥[4]

भारत के खंडित मानचित्र को देखकर अटल जी दुखी हैं। उनका हृदय यंत्रणा से तड़प उठता है। जिस खंडित भारत को पाकर हमारे देश की जनता आनंदित है, उन्हें सतर्क कराते हुए अटल जी कहते हैं कि जो कुछ पाया है उसके आनंद-उल्लास में डूबना बुद्धिमानी नहीं है। असल में हमने जिसे खोया है उसे भी पाना होगा। इसके लिए कमर कसनी पड़ेगी। बलिदान देना होगा, तब खंडित भारत अखंड बनेगा। उसी दिन हमारी आज़ादी पूरी होगी। अटल जी इस स्वर्ण दिवस के इंतज़ार में हैं—

दिन दूर नहीं खंडित भारत को पुनः अखंड बनाएँगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक आज़ादी पर्व मनाएँगे॥
उस स्वर्ण दिवस के लिए
आज से कमर कसें बलिदान करें।
जो पाया उसमें खो न जाएँ,
जो खोया उसका ध्यान करें॥[5]

अटल जी की राष्ट्रभक्ति विरासती थी। बचपन से उन्हें राष्ट्रभक्ति की उपजाऊ भूमि मिली थी। उनकी कविता में राष्ट्रभक्ति और भारतीय संस्कृति का गौरव गान ओजस्विता, गांभीर्य और तेजस्विता के साथ व्यक्त है। वे जन-जन को भारत का गौरवशाली इतिहास, जिसे वामपंथी इतिहासकारों ने लाभ-लोभ से प्रेरित होकर विकृत कर दिया है, बताना चाहते हैं। उन्हें स्वाभिमानी बनाना चाहते हैं। भारत के विश्व गुरु की भूमिका का आकलन करते हुए वे कहते हैं-

जिसका कुछ उच्छिष्ट मात्र
बर्बर पश्चिम ने,
दया दान सा,
निज जीवन को सफल मानकर,
कर पसार कर,
सिर-आँखों पर धार लिया था।[6]

भारतीय समाज की यह प्रगति कुछ भारत विरोधी ताकतों को रास नहीं आयी। उन्होंने कई बार भारत पर आक्रमण किया। उसकी संस्कृति, धर्म-दर्शन को नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयास किया। पर यह सनातनी संस्कृति शिरीष-सा ठहरी। घात-प्रतिघात से संसार की समुन्नत और शक्तिशाली कही जाने वाली कई सभ्यता और संस्कृतियाँ काल के गाल में समा गयीं। उनका नामोनिशान मिट गया, पर भारत है कि जग के मस्तक पर रोली-सा सुशोभित है। ज्ञानालोक के अभाव में जब पश्चिम में बर्बरता व्याप्त हुई,

दीप बुझ गए, तब ऐसे संकट की घड़ी में तम की छाती को चीर कर प्रकट होने का सामर्थ्य केवल और केवल भारत के पास था । भारत ने अपने इस सामर्थ्य का अहसास पूरे विश्व को कराया–

दुनिया का इतिहास पूछता, रोम कहाँ, यूनान कहाँ है?
घर–घर शुभ अग्नि जलाता, वह उन्नत ईरान कहाँ हैं?
दीप मुझे पश्चिमी गगन के, व्याप्त हुआ बर्बर अंधियारा,
किंतु चीरकर तम की छाती, चमका हिंदुस्तान हमारा।[7]

संस्कृति की अंत:सलिला राष्ट्रीय भावभूमि को उर्वरा बनाती है। संस्कृति मनुष्य की निरुपाय प्रतिभा की देन नहीं है, यह हमारी विराट कल्पना का गतिशील परिणाम है। भारतीय संस्कृति महामिलन की महासंस्कृति है। यह संस्कृति मानवता को जोड़ती है, तोड़ती नहीं। आज जिस पश्चिमी संस्कृति का अंधानुकरण कर हम अपने को कृत्य–कृत्य मानते हैं, एक दिन वही संस्कृति हमारी सभ्यता और संस्कृति के सामने याचक बनकर खड़ी थी। जब पश्चिमी जगत के लोग वन में कंद फल खाकर, छाल पहनकर अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे तब भारत भूमि में साम गान का स्वर्गिक स्वर सुनाई पड़ रहा था। नई पीढ़ी को भारतवर्ष की समृद्ध ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परंपरा से परिचित कराते हुए अटल जी कहते हैं–

जब पश्चिम ने वन–फल खाकर,
छाल पहन कर लाज बचाई,
तब भारत से साम–गान का
स्वर्गिक स्वर था दिया सुनाई॥
अज्ञानी मानव को हमने,
दिव्य ज्ञान का दान दिया था।
अंबर के ललाट को चूमा,
अतल सिंधु को छान लिया था॥[8]

अटल के राष्ट्रीय भाव बोध में निराशा का कहीं लेश मात्र चिह्न नहीं है, न ही वे केवल और केवल अहिंसा के बल पर देश की रक्षा चाहते हैं। अहिंसा का अर्थ कतई यह नहीं कि हम अपने पर होने वाले अत्याचार को चुपचाप सह लें। आवश्यकता पड़ने पर अटल जी विद्रोह की चिंगारी सुलगाना भी जानते हैं। देश की रक्षा तथा सुख–समृद्धि के लिए वे कहते हैं कि केवल अपने भाग्य पर रोने से परिस्थितियाँ नहीं बदलेंगी। आज तो आँसू छोड़ ख़ून देने की स्थिति आ पड़ी है। हमारे आगे की राहें यदि काँटों से भरी पड़ी हैं, तो भी उन पर पाँव धरकर हमें आगे बढ़ना ही होगा। अपना सर्वस्व बाजी लगाकर भारत माता के क्लेशों का हरण करना होगा। उसे इन यातनाओं से मुक्ति दिलानी होगी–

आँसू नहीं, स्वेद शोणित की आज माँग है।
कंठ–कंठ में मर मिटने का अमिट राग है।
प्राण–पुष्प ही नहीं, करो जीवन का अर्पण।
अब न सहेंगे जननी के केशों का कर्षण।
कंटक–पथ पर पाव बढ़ाते गाते जाना।
हर बाजी पर हमें यहाँ सर्वस्व लगाना।[9]

देश के लिए कर्तव्य की ख़ातिर कई लोगों ने आत्मोत्सर्ग किया है। चुनौतियों का सामना किया है। लेकिन इन चुनौतियों के आगे कभी झुके नहीं, न ही अपने लक्ष्य से च्युत हुए। जिस देश की एकता, अखंडता तथा संप्रभुता के लिए हमारे पूर्वजों ने आत्माहुति दी थी। अब हमें उसकी रक्षा करनी होगी। संकट की इस घड़ी में हमें अपने ध्येय के लिए मर–मिटने का कृत संकल्प दोहराना होगा और अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए अन्याय से संघर्ष कर हमें विजय की ओर बढ़ना पड़ेगा–

हमें ध्येय के लिए
जीने, जूझने और
आवश्यकता पड़ने पर–
मरने के संकल्प को दोहराना है।
आग्नेय परीक्षा की
इस घड़ी में–
आइए, अर्जुन की तरह
उद्घोष करें;
'न दैन्यं न पलायनम्।'[10]

कवि अटल भारत के अतीत गौरव का मुक्त कंठ में जयगान करते हैं। जब आज ये सारी बातें अतीत के अतल गह्वर में विस्मृत हो चुकी हैं, उसे देखकर अटल का कवि मन दुखी तो होता है, पर निराश नहीं होता। वह राख के ढेरों से

भी चिंगारी ढूँढ निकालना जानता है। इसीलिए एक पाँव अतीत में रखकर दूसरा वर्तमान में जमाना चाहता है। राम-कृष्ण के चले जाने पर भी उसका अपार भरोसा विवेकानंद पर है। देश के युवा वर्ग को राष्ट्रीय भावना से जोड़ने वाली अटल की यह पंक्ति यथार्थ को वाणी देती है-

राम-कृष्ण यदि गए विवेकानंद शेष हैं।
अभी मूर्ति की पूर्ति शेष है, प्रण अशेष हैं।
आओ युग के सपनों को साकार करें हम।
मृतकों में भी जीवन की हुंकार भरें हम।[11]

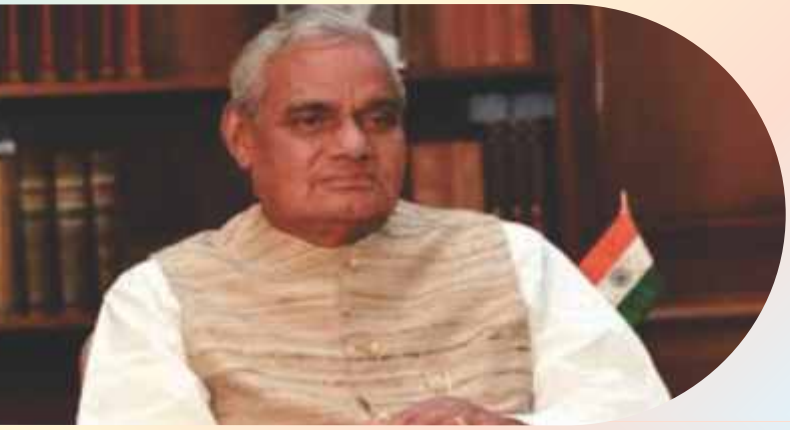

अटल जी अपने इतिहास के प्रति सदैव संवेदनात्मक दृष्टि रखते हैं। जिनके त्याग और आत्मोत्सर्ग से हमें आज़ादी मिली है वे उनके प्रति नतमस्तक हैं। स्वतंत्रता के महासमर में आत्माहुति देने वाले भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु जैसे अमर शहीदों का स्मृति चारण भी करते हैं। अंग्रेज़ों के बहरे शासन का स्मरण दिलाकर अन्याय से लड़ने और स्वाभिमान के साथ जीने के लिए वे युवा वर्ग को प्रेरित करते हैं-

याद करें बहरे शासन को,
बम से थर्राते आसन को,
भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु
के आत्मोत्सर्ग पावन को
अन्यायी से लड़ें, दया की मत फ़रियाद करें
उनकी याद करें।[12]

अटल की राष्ट्रभक्ति में उत्ताल-ज्वार है। उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती। बाधाएँ-विपदाएँ तो इस पथ के छोटे-छोटे काँटे हैं। अटल जी सिर पर ज्वालाएँ ले चलने की बात करते हैं क्योंकि वे भलीभाँति जानते हैं कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए इन विपदाओं को सहर्ष स्वीकार करना होगा। तब जाकर भारत को शक्ति प्राप्त होगी। वह पुनः विश्वगुरु के सिंहासन पर आरूढ़ हो सकेगा। इसलिए वे विपदा की इस घड़ी में कदम मिलाकर चलने का आह्वान देते हैं-

बाधाएँ आती हैं आएँ,
घिरें प्रलय की घोर घटाएँ,
पाँवों के नीचे अंगारे,
सिर पर बरसें यदि ज्वालाएँ,
निज हाथों से हँसते-हँसते,
आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा होगा।[13]

भारत की स्वतंत्रता अटल को प्राणों से प्यारी है। वे इसे असंख्य बलिदानों से अर्जित थाती मानते हैं। भारत के दुश्मन देशों को सावधान कराते हुए अटल जी कहते हैं कि कितने भी समझौते क्यों न कर लें, पर आज़ाद भारत का मस्तक कभी नहीं झुकेगा। कश्मीर को लेकर विश्व की कितनी भी बड़ी शक्ति भारत के विरुद्ध क्यों न हो, पर जब तक अग्नि में जलन, सूर्य में तेज, सिंधु में ज्वार और गंगा में अविरलता है, तब तक कश्मीर भारत का है और रहेगा। कश्मीर में भारत का झंडा लहराता रहेगा। उसकी रक्षार्थ भारत के युवा अपने प्राणों की आहुति देते रहेंगे। विदेशी शक्तियों को चुनौती देते हुए स्वाभिमानी अटल अपनी कविता में इसका भैरवनाद करते हुए दिखाई पड़ते हैं-

जब तक गंगा की धार, सिंधु में ज्वार
अग्नि में जलन, सूर्य में तपन शेष
स्वातंत्र्य समर की वेदी पर अर्पित होंगे
अगणित जीवन, यौवन अशेष।
अमेरिका क्या संसार भले ही हो विरुद्ध
कश्मीर पर भारत का ध्वज नहीं झुकेगा,
एक नहीं, दो नहीं करो बीसों समझौते
पर स्वतंत्र भारत का मस्तक नहीं झुकेगा।[14]

विकसित राष्ट्रों की दादागिरी अटल जी बर्दाश्त नहीं

करते। वे कभी भी उनकी प्रभुता के सामने नतमस्तक नहीं होते। उनकी शक्ति के आगे झुकना अटल की मर्यादा के विरुद्ध है। अटल जी अपनी कविता में भारतीयों को निडर और अमर बताते हैं। भारत को सूर्य कहते हुए विरोधी विदेशी शक्तियों को मात देते हैं। विदेशी ताकत के अधीन हमारी जनता की सारी संवेदनाएँ धराशायी हो जाएँगी, कुचली जाएँगी, यह वे अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए वे कभी भी जनता का साथ नहीं छोड़ते, न ही देश के स्वार्थ को ताक पर रख देते हैं। विरोधी विदेशी शक्तियों के आगे भारतवासियों को चट्टान मानते हुए वे लिखते हैं–

विरोधों के सागर में
चट्टान हैं हम,
जो टकराएँगे
मौत अपनी मरेंगे।[15]

राष्ट्रीय भावबोध में राष्ट्रभाषा महत्वपूर्ण तत्व है। किसी राष्ट्र की अस्मिता, अस्तित्व उसकी राष्ट्रभाषा के बिना अधूरा है। राष्ट्रभाषा का विकास राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण में विशेष सहायक है। राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है, इस बात से अटल जी परिचित थे। संस्कृति, सभ्यता और जन-मन की चिंता, चेतना और संवेदना के विकास में भाषायी विकास की अहम भूमिका है, इससे वे अवगत थे। वे राष्ट्रभाषा के आराधक ही नहीं, प्रचारक भी थे। यूँ कहें कि वे राष्ट्रभाषा हिंदी के वैश्विक राजदूत थे। इसीलिए तो राष्ट्र संघ में जाकर पहली बार उन्होंने अपना भाषण हिंदी में दिया और अपने राष्ट्रीय स्वाभिमान और भाषायी अभिमान का प्रमाण प्रस्तुत किया। अटल की कुंडलियों में यह बात स्पष्ट झलक रही है–

गूँजी हिंदी विश्व में,
स्वप्न हुआ साकार;
राष्ट्र संघ के मंच से,
हिंदी का जयकार;
हिंदी का जयकार,
हिंद हिंदी में बोला;
देख स्वभाषा-प्रेम,
विश्व अचरज से डोला;

कह कैदी कविराय,
मेम की माया टूटी;
भारत माता धन्य,
स्नेह की सरिता फूटी।[16]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अटल की कविताएँ राष्ट्रीय भावबोध से सराबोर हैं। वे सही अर्थ में राष्ट्र कवि हैं। उनकी कविता में राष्ट्र और राष्ट्र का स्वाभिमान सर्वोपरि है। अपनी कविताओं में आद्यांत वे लोकाश्रयी रहे, इसलिए वे जननायक हुए, लोकनायक बने और महानायक के रूप में अपने युग और समाज का सार्थक चित्रण करते रहे।

संदर्भ सूची

1. मेरी इक्यावन कविताएँ–पृ. 31
2. कैदी कविराय की कुंडलियाँ–पृ. 118
3. मेरी इक्यावन कविताएँ–पृ. 15
4. वही–पृ. 49
5. वही–पृ. 49
6. वही–पृ. 52
7. वही–पृ. 58
8. वही–पृ. 58
9. वही–पृ. 65
10. न दैन्यं न पलायनम्–पृ. 14-15
11. मेरी इक्यावन कविताएँ–पृ. 66
12. वही–पृ. 70
13. वही–पृ. 85
14. वही–पृ. 88
15. वही–पृ. 69

अध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग
डी.के.एन. कॉलेज, एरंच, कटक-754105 (ओड़िशा)
मोबाइल : 9861508846, 8895404412
ई-मेल : mohantyamulyaratna@gmail.com

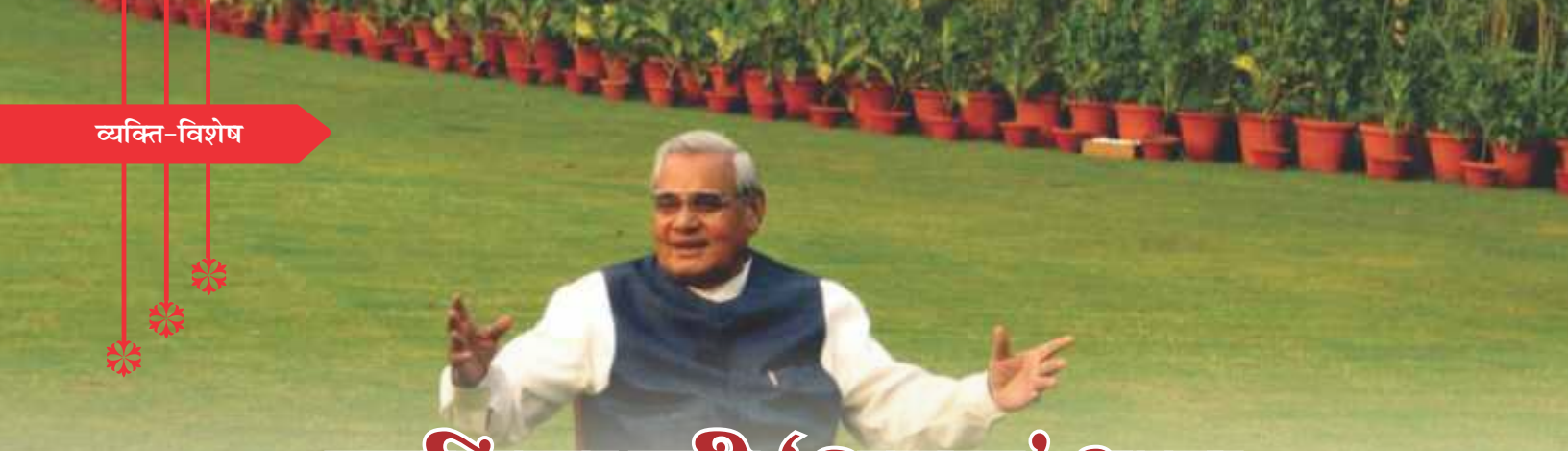

कविता की 'अटल' धारा

— प्रो. रमा

भारत रत्न 'अटल बिहारी वाजपेयी' भारतीय राजनीति के ऐसे सितारे के रूप में जाने जाते हैं जिनकी चमक कभी कम नहीं हुई। संभवत वह पहले ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने साहित्य और राजनीति दोनों को कुछ नए संदर्भ और सिखा दिए। साहित्य अटल जी को अपने पूर्वजों से मिला। वह जिस परिवेश में पैदा हुए वहाँ पैसा बहुत नहीं था लेकिन किताबें बहुत थीं। 'रामचरितमानस', 'गीता' और भारतीय धर्म, दर्शन के साथ विज्ञान का सहज ज्ञान उन्हें था। तुलसीदास ने भारतीय जनमानस को जितना प्रभावित किया उतना कोई अन्य कवि नहीं कर सका। अटल भी उनके प्रभाव से कैसे बच सकते थे। अल्पायु में ही कविता बुनने लगे। कुछ कच्ची कुछ पक्की कविताएँ बनने लगीं। उन्हें गुनते-धुनते अटल जब युवावस्था में पहुँचे तो कविताएँ पक चुकी थीं, उनमें धार आ चुकी थी। अटल बचपन से ही राष्ट्रवादी रहे।

राजनीति और साहित्य का संबंध नदी की दो धाराओं जैसा है। साथ बहना है लेकिन मिलना नहीं है। एक दूसरे को महसूसना है लेकिन गले नहीं मिलना है। प्रेमचंद ने साहित्य को राजनीति के आगे चलने वाली मशाल तक कह दिया। सत्ता जब-जब विचलित हुई है, साहित्य ने उसका दामन थामा है। राजनीति जब-जब पथभ्रष्ट हुई, डगमगाई है साहित्य ने उसे राह दिखाई है। साहित्य और सत्ता का संबंध उसी दिन से शुरू हो गया था जबसे राजनीति ने लोकतंत्र को आत्मसात किया। यूँ तो आदिकालीन साहित्य में भी कवियों का बहुत मान-सम्मान था। युद्धों के अतिशयोक्तिपूर्ण लेकिन सजीव चित्रण करते हुए कवि स्वयं भी युद्ध करते थे। राजाओं का मनोबल बढ़ाते थे लेकिन वह जीविका और कवि-प्रतिष्ठा के लिए करते थे इसलिए उन्हें सामाजिक सरोकार का कवि नहीं माना गया। सत्ता जब अंहकारी हो जाए तब साहित्य ही उसके सामने तनकर खड़ा होता है। आपातकाल को ध्वस्त करने में साहित्य की भूमिका को कभी भूला नहीं जा सकता है।

भारत रत्न 'अटल बिहारी वाजपेयी' भारतीय राजनीति के ऐसे सितारे के रूप में जाने जाते हैं जिनकी चमक कभी कम नहीं हुई। संभवत: वह पहले ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने साहित्य और राजनीति दोनों को कुछ नए संदर्भ और सिखा दिए। साहित्य अटल जी को अपने पूर्वजों से मिला। वह जिस परिवेश में पैदा हुए वहाँ पैसा बहुत नहीं था लेकिन किताबें बहुत थीं। 'रामचरितमानस', 'गीता' और भारतीय धर्म, दर्शन के साथ विज्ञान का सहज ज्ञान उन्हें था। तुलसीदास ने भारतीय जनमानस को जितना प्रभावित किया उतना कोई अन्य कवि नहीं कर सका। अटल भी उनके प्रभाव से कैसे बच सकते थे। अल्पायु में ही कविता बुनने लगे। कुछ कच्ची कुछ पक्की कविताएँ बनने लगीं। उन्हें गुनते-धुनते अटल जब युवावस्था में पहुँचे तो कविताएँ पक चुकी थीं, उनमें धार आ चुकी थी। अटल बचपन से ही राष्ट्रवादी रहे। लेकिन स्वभाव में कट्टरता नहीं थी लिहाज़ा राजनीति के दाव-पेंच से बहुत दूर उनका विज़न केवल

समाज को दिशा देना था। देश से प्रेम उनके जीवन का पहला उद्देश्य था। लिहाज़ा कविताओं में देशभक्ति की विशेष अनुगूँज सुनाई देती है। भारतीय आज़ादी का उत्सव हमारे लिए दु:ख की कथा बनकर आयी। विभाजन के रूप में ऐसी आज़ादी मिली जो घनीभूत पीड़ा की तरह हमारे साथ आज भी चिपकी हुई है। पंद्रह अगस्त आज़ादी के साथ कुछ आहत भावनाओं की भी याद दिलाता है। अटल जी के लिए यह आज़ादी अधूरी है। भूख और त्रासदी की यह आज़ादी उन्हें मंजूर नहीं है। वह कहते हैं-

पंद्रह अगस्त का दिन कहता, आज़ादी अभी अधूरी है
सपने सच होने बाकी है, रावी की शपथ न पूरी है
जिनकी लाशों पर पग धर कर, आज़ादी भारत में आई,
वे अब तक हैं खानाबदोश, गम की काली बदली छाई

अटल जी की कविताओं में भारतीयता के समन्वय की कई सुन्दर छवियाँ देखने को मिलती हैं। उनके लिए हिंदू-मुसलमान से बड़ा धर्म मानवता का है इसलिए सबका दु:ख उन्हें दुखी करता है। इसी कविता में वह आगे लिखते हैं-

इंसान जहाँ बेचा जाता, ईमान ख़रीदा जाता है।

इस्लाम सिसकियाँ भरता है, डॉलर मन में मुस्काता है

अटल जी ने कविता सृजन तब शुरू किया जब हिंदी की मुख्यधारा गरिमामय थी। छायावाद का पतन और प्रगतिशील कविता का आरंभ हो रहा था। प्रगतिशील कविता नए भावबोध, संवेदना और शिल्प के कारण समाज को बड़े स्तर पर प्रभावित कर रही थी। ऐसा पहली बार हो रहा था जब कविता आंतरिक पीड़ा से सामाजिक पीड़ा का हिस्सा बन रही थी। जिस किशोरावस्था में अटल जी ने कविताओं का लेखन आरंभ किया वह जनवादी कविता का दौर था। भारतीय आज़ादी की बुनियाद यहीं से मजबूत हो रही थी। भारत को आज़ाद करने के लिए राष्ट्रवाद की नई परिभाषा गढ़ी जा रही थी। अटल जी अपने देश की ग़ुलामी और आज़ादी के गवाह तो थे ही, आज़ादी के बाद के तमाम संक्रमण कालों को भी उन्होंने देखा। जीवन का तमाम अनुभव होने के कारण उनकी कविताओं में भी तमाम तरह के दृश्य देखने को मिलते हैं। पंद्रह अगस्त केन्द्रित कविता में वह कहते हैं-

भूखों को गोली, नंगों को हथियार पिन्हाए जाते हैं।
सूखे कंठों से जेहादी, नारे लगवाए जाते हैं
लाहौर, कराची, ढाका पर, मातम की है काली छाया
पख्तूनों पर, गिलगित पर है, ग़मगीन ग़ुलामी का साया

तमाम निराशाओं के बीच भी अटल जी की कविताओं में जीवन के प्रति उम्मीद कम नहीं होती। वह नए भारत के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध हैं -

दिन दूर नहीं खंडित भारत को, पुन: अखंड बनाएँगे।
गिलगित से गारो पर्वत तक, आज़ादी पर्व मनाएँगे
उस स्वर्ण दिवस के लिए आज से, कमर कसें बलिदान करें
जो पाया उसमें खो न जाएँ, जो खोया उसका ध्यान करें।

अटल जी के बारे में पढ़ते-सुनते जो छवि बनती है वह धीर गंभीर व्यक्ति की है। सहजता और मन की निर्मलता सबको आकर्षित करती थी। उनके स्वभाव में एक तरह का हठ भी था। देश और समाज के लिए कुछ बेहतर हो सकता था तो उसके लिए वह ज़िद कर बैठते थे। राजनीति की ऐसी तमाम घटनाएँ हैं जिससे अटल जी के व्यक्तित्व के स्पष्टवादी रूप को देखा जा सकता है।

अटल जी भारतीय राजनीति के ऐसे पुरुष के रूप में जाने जाते हैं जिनके लिए पक्ष और विपक्ष केवल राजनीति का एक सहज रूप है। सत्ता में आने के लिए उन्होंने कभी कोई दाव पेंच नहीं किया। जनता की स्वीकृति का सम्मान करते हुए उसे जनार्दन माना है। सत्ता की मादकता ने अटल जी को कभी विचलित नहीं किया बल्कि अपने संबंधों और फैसलों को लेकर वह हमेशा स्पष्टवादी रहे। उनके व्यक्तित्व की यही छाप उनकी कविताओं में भी देखने को मिली है। उनकी कविता का एक ऐसा ही रूप देखें-

ठन गई!
मौत से ठन गई!
जूझने का मेरा इरादा न था,
मोड़ पर मिलेंगे इसका वादा न था,
रास्ता रोक कर वह खड़ी हो गई,
यों लगा ज़िंदगी से बड़ी हो गई।

ऐसा भी नहीं है कि राजनीति में जो प्रतिष्ठा और मान-सम्मान उन्हें मिला, अचानक मिला। बल्कि उसके लिए अपने जीवन का आधा हिस्सा उन्होंने राजनीति को दिया। राजनीति को सामाजिक सरोकार से जोड़ने वाले अटल जी पहले व्यक्ति हैं। राजनीति उनके लिए सुख सुविधा की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि सामाजिक समरसता को बनाए रखने के लिए एक ज़िम्मेदारी है। इसलिए वह सबको जोड़कर चलने का आह्वान करते हैं-

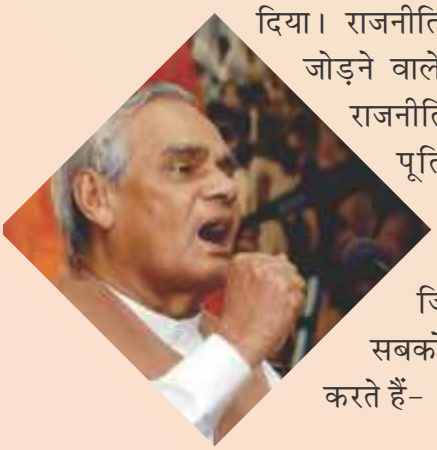

बाधाएँ आती हैं आएँ, घिरें प्रलय की घोर घटाएँ,
पावों के नीचे अंगारे, सिर पर बरसें यदि ज्वालाएँ,
निज हाथों में हँसते-हँसते, आग लगाकर जलना होगा।
कदम मिलाकर चलना होगा।

अटल जी की कविताओं को पढ़ते हुए उनके सामाजिक संघर्ष के साथ ही उनके आत्मसंघर्ष को भी देखा जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जब अपने समाज, संस्कृति और कला के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी को समझता होगा तो निश्चय ही वह अपनी आत्मा से संघर्ष कर रहा होगा क्योंकि संस्कृति, साहित्य और कलाओं का संबंध आत्मा से होता है। अटल जी की जीवन यात्रा से पता चलता है कि उनके लिए आत्मा का परिष्कार सबसे ज़्यादा आवश्यक है। एक ऐसी ही कविता देखें-

पृथ्वी पर
मनुष्य ही ऐसा एक प्राणी है,
जो भीड़ में अकेला, और,
अकेले में भीड़ से घिरा अनुभव करता है।
मनुष्य को झुण्ड में रहना पसंद है।
घर-परिवार से प्रारम्भ कर
वह बस्तियाँ बसाता है।
गली-ग्राम-पुर-नगर सजाता है।
सभ्यता की निष्ठुर दौड़ में
संस्कृति को पीछे छोड़ता हुआ,
प्रकृति पर विजय,
मृत्यु को मुट्ठी में करना चाहता है।

साहित्य अटल जी के जीवन की रिक्तताओं को भरने का एक माध्यम था। केवल मनोरंजन ही उनकी साहित्य साधना का लक्ष्य नहीं था। एक राजनेता के अंदर जब मानवीय संवेदना का विस्तार हो जाता है तो उसका साहित्य भी संवेदना की नई दुनिया आबाद करता है। साहित्य और सत्ता का संबंध आज का नहीं है। सत्ता के लिए समाज से जुड़ने और अपने अंदर के प्रतिरोध की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य से बेहतर माध्यम कोई और हो ही नहीं सकता है। दिनकर को कौन भूल सकता है। आज के शिक्षा मंत्री रमेश

पोखरियाल निशंक राजनीति में बेहतर करने के साथ साहित्य सृजन में भी संलग्न है। साहित्य की विभिन्न विधाओं में उन्होंने सक्रिय लेखन किया।

अटल जी की कविताओं का भाव पक्ष सामाजिक सरोकार से जुड़ा हुआ है। उनकी राजनीतिक यात्रा बताती है कि उनके विरोधी बहुत हुए लेकिन दुश्मन कोई नहीं हुआ। उनसे मतभेद कई लोगों का हुआ लेकिन मनभेद किसी से नहीं हुआ। अटल जी का स्वभाव मूलत: कवि वाला था। उनकी कविताओं की पीड़ा वैश्विक है। कहीं भी जब कोई दुखी हुआ अटल जी की कविता रोई है। उनकी कविताओं में निहित संवेदना मानवीय पीड़ा का उत्सव गान है। हिरोशिमा नागासाकी की विध्वंसकारी घटना से कौन परिचित नहीं होगा। विश्व इतिहास की सबसे क्रूर घटना के रूप में इसे देखा जाता है। एक कवि के रूप में अटल जी की संवेदना इस घटना को दूसरी तरह से देखती है। वह लिखते हैं—

किसी रात को मेरी नींद अचानक उचट जाती है
आँख खुल जाती है
मैं सोचने लगता हूँ कि,
जिन वैज्ञानिकों ने अणु अस्त्रों का
आविष्कार किया था,
वे हिरोशिमा-नागासाकी के भीषण
नरसंहार के समाचार सुनकर,
रात को कैसे सोए होंगे?
क्या उन्हें एक क्षण के लिए सही,
ये अनुभूति नहीं हुई कि
उनके हाथों जो कुछ हुआ, अच्छा नहीं हुआ!
यदि हुई, तो वक्त उन्हें कटघरे में खड़ा नहीं करेगा
किन्तु यदि नहीं हुई तो इतिहास उन्हें
कभी माफ़ नहीं करेगा!

अटल जी की कविताओं की संवेदना जितनी मार्मिक और अनुभूति से परिपूर्ण है उसका शिल्प भी उतना ही सहज और सरल है। अटल जी वैसे तो ओज, शांत और करुण रस के बेहतरीन कवि हैं लेकिन कहीं-कहीं व्यंग्य विनोद और

प्रेम की भावना भी उनकी कविताओं में आती है। ओजपूर्ण कविताओं की लंबी सूची मेरे पास है। छंद मुक्त कविताओं की जो परंपरा हिंदी में शुरू हुई उसका निर्वाह करते हुए अटल जी ने कई कविताएँ लिखीं। साथ ही गीत की गरिमामय परम्परा को भी बचाए रखा। कविताओं में वैसे तो संस्कृतनिष्ठ हिंदी भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है लेकिन कुछेक स्थानों पर ग्रामीण और उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है जो सहजता से आ गए हैं। भाषा और शिल्प की दृष्टि से अटल जी की कविताओं में हिंदी की मुख्यधारा के वरिष्ठ साहित्यकारों जैसी ही प्रतिभा है। अपनी कविताओं में संवेदनाओं के विविध रूपों को मुखर करने वाले अटल जी अपने आप में कविता की 'अटल' धारा हैं, जिनका अपना प्रवाह है, दिशा है और गति है।

अटल जी की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता उसकी वैचारिक संपन्नता है। केवल खानापूर्ति के लिए कविताओं का सृजन करना या ख़ुद को कवि साबित करने के लिए कविता लिखना उनके स्वभाव में नहीं है। जब तक समाज की कोई घटना उन्हें ख़ुद प्रभावित नहीं करती वह कविता नहीं लिखते हैं। कविता उनके लिए मानवीय जीवन की आंतरिक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का ज़रिया है इसलिए उसमें उत्सवधर्मिता है। जीवन के प्रति आस्था का भाव है। लगातार नकारात्मक होते समाज के लिए अटल जी की कविताएँ सुखद अनुभूतियाँ लेकर खड़ी हैं। उनसे जुड़िए, उन्हें गुनिए और जीवन को परिष्कृत कीजिए।

प्राचार्या, हंसराज कॉलेज, दिल्ली
मोबाइल : 9891172389
ई-मेल : drrama1965@gmail.com

पूजा स्थलों का दुरुपयोग

(धर्मस्थलों का राजनीतिक प्रचार के लिए इस्तेमाल रोकने के संबंध में लोकसभा में 17 फरवरी 1961 का प्रस्ताव)

सभापति जी, मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़ा हुआ हूँ, यद्यपि मैं चाहता हूँ कि प्रस्ताव के अंतर्गत प्लेसिज ऑफ़ पिलग्रिमेज को-तीर्थ के जो स्थान हैं, उनको-लाने के संबंध में प्रस्तावक महोदय को फिर से विचार करना चाहिए। जहाँ तक पूजा के स्थानों का राजनीतिक प्रचार के लिए दुरुपयोग रोकने का प्रश्न है, इस संबंध में दो मत नहीं हो सकते और अगर हम भारतीय गणराज्य के असांप्रदायिक स्वरूप को सुरक्षित रखना चाहते हैं, तो इस संबंध में हमारे सामने अंतिम निर्णय लेने की स्थिति आ गई है। जिन परिस्थितियों में देश का विभाजन हुआ, विभाजन के जिन दुष्परिणामों को हम अभी तक भूल नहीं सके हैं, उनको ध्यान में रखकर, हमें ऐसी घटनाओं की पुनरावृत्ति को रोकना है, जो राष्ट्रीय एकता को दुर्बल करती है, भारतीय गणराज्य के असांप्रदायिक स्वरूप पर कुठाराघात करती है और देश में फिर से सांप्रदायिकता के उन्माद का जागरण करती है।

हमने एक असांप्रदायिक राज्य का निर्माण किया है। इसका स्वाभावित पर्याय यह है कि राजनीति और संप्रदाय के साथ जोड़ते हैं या संप्रदाय को राजनीति के साथ संबद्ध करते हैं, वे अंत:करण से असांप्रदायिकता के सिद्धांत में विश्वास नहीं करते, फिर चाहे वे सांप्रदायिकता के विरुद्ध कितने ही भाषण दें, अधिवेशन में बैठकर लंबे-लंबे प्रस्ताव पास करें। आज राजनीति और संप्रदाय को मिलाने के फिर से प्रयत्न हो रहे हैं। अगर इनको रोका नहीं जा सका, तो देश में सांप्रदायिकता फिर से सिर उठायेगी और हमारी स्वतंत्रता और राष्ट्रीय एकता के लिए एक भयंकर संकट खड़ा हो जाएगा।

हमने लोकतंत्रात्मक मार्ग का अवलंबन किया है। किसी भी संप्रदाय को स्वतंत्रता है कि वह राजनीतिक दल का निर्माण करे, खुले मैदान में आकर चुनाव लड़े, अपनी आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विचार करे। इसके लिए मंदिर में, मस्जिद में, गुरुद्वारे या गिरजाघर में जाकर आंदोलन चलाने की क्या आवश्यकता है? मुझे ताज्जुब हुआ कि श्री सरहदी साहब ने जहाँगीर के काल का उदाहरण दिया। समय बीत गया है। यह केवल सिख बंधुओं के लिए ही सही नहीं है। अतीत काल में स्वतंत्रता के लिए जितने संघर्ष हुए, वे सब धर्म के साथ जुड़े हुए थे, लेकिन आज पूजा की पद्धति को और राजनीति को जोड़ने का कोई औचित्य नहीं है। हाँ, गुरुद्वारे में बैठकर, मंदिर में बैठकर अगर पूजा करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है, राज्य की ओर से कोई भेदभाव की नीति बरती जाती है, शुद्ध धार्मिक मामलों में, तो उसका विचार हो सकता है। लेकिन मस्जिदों में चुनावों के संबंध में फ़तवे दिए जाएँ, गुरुद्वारों से एक पृथक् राज्य के निर्माण का राजनीतिक और सांप्रदायिक आंदोलन चलाया जाए, गिरजाघरों को भारत की एकता को खंडित करने का केंद्र बनाया जाए और फिर उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप लोग मंदिरों में भी राजनीतिक गतिविधियों को ले जाने का प्रयत्न करें, इसका समर्थन नहीं किया जा सकता। तेरह वर्ष हुए देश का विभाजन हुए...

श्री नवल प्रभाकर (बाह्य दिल्ली-रक्षित अनुसूचित जातियाँ) : आर.एस.एस. की मीटिंगें मंदिरों में ही होती है।

श्री वाजपेयी : आर.एस.एस. कोई राजनीतिक दल नहीं है और मेरा निवेदन है कि अगर होती हैं तो वह भी ग़लत है और वह चीज़ भी बंद होनी चाहिए और जब मैं इस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ तो आर.एस.एस. भी बचने वाला नहीं है। मगर कांग्रेस के माननीय सदस्यों में यह नैतिक साहस होना चाहिए कि इस प्रस्ताव का वे समर्थन करें, मगर यह वे नहीं कर सकते। वे सांप्रदायिकता के विरुद्ध भाषण दे सकते हैं, मगर चुनाव लड़ने के लिए सांप्रदायिक तत्त्वों से समझौता करते हैं। वे राष्ट्रीयता की बात करते हैं, मगर दल के स्वार्थों को बलि पर नहीं चढ़ा सकते। यही कारण है कि तेरह वर्ष के बाद भी सांप्रदायिकता फिर से पनप रही है और यह तब तक नहीं मिटेगी जब तक कि हम इस सांप्रदायिकता के संबंध में कभी न समझौता करने वाला दृष्टिकोण नहीं अपनाएँगे।

कोई भी दल हो, पूजा का कोई भी स्थान हो उसको अपनी राजनीतिक गतिविधियाँ वहाँ चलाने की छूट नहीं होनी चाहिए। अभी कहा गया है कि राजनीतिक गतिविधियों की परिभाषा क्या हो, किसे कहा जाए कि यह राजनीतिक गतिविधि है और किसे कहा जाए कि यह नहीं है। मेरा निवेदन है कि केंद्रीय सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिए नियम बना रखे हैं कि वे राजनीति में भाग नहीं ले सकते। यह परिभाषा की कठिनाई उनके सामने तो नहीं आती है। सरकार का कोई कर्मचारी अगर राजनीतिक गतिविधि में भाग लेता है तो उसे दंड भोगना पड़ता है और अगर कोई परिभाषा की कठिनाई है भी तो उस पर बैठकर विचार किया जा सकता है। उसके संबंध में लोगों की राय ली जा सकती है और एक ऐसी सर्वसम्मत परिभाषा बनाई जा सकती है, जिसके अंतर्गत सत्ताप्राप्ति को, या राजनीतिक चुनाव लड़ने को, इसमें शामिल करते हुए बाकी के सांस्कृतिक और धार्मिक अधिकारों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध न लगे।

पूजा के स्थान राजनीति के अड्डे न बन जाएँ। इसके लिए आवश्यक है कि इस प्रस्ताव की मूल भावना को सब समझते हों। राजनीतिक गतिविधियों की परिभाषा नहीं हो सकती, इसलिए धार्मिक स्थानों में राजनीति चलती रहे, इस चीज़ को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। सिद्धांत के रूप में मैं चाहता हूँ कि हम स्वीकार कर लें कि समय आ गया है कि पूजा के स्थान राजनीति के अड्डे न बनाए जाएँ और फिर इसके लिए कैसा कानून बनाया जाए, उसकी परिभाषा क्या हो, उसकी परिधि क्या हो, ये विचार के विषय हो सकते हैं। इन पर मिल-बैठकर हम गंभीरता से सोच सकते हैं। मेरा निवेदन है कि राष्ट्रीय एकता पर जो संकट है, कोई भी राष्ट्रवादी उसकी ओर से आँखें नहीं मूँद सकता और यह संकट भिन्न-भिन्न रूपों से खड़ा है। मेरा निवेदन है कि हम किसी भी संप्रदाय की सांप्रदायिकता को बर्दाश्त न करें, चाहे वह कम संख्या वालों की हो और चाहे अनेक संख्या वालों की। जो नियम बनते हैं वे सबके लिए एक-से होते हैं। मगर देखा गया है कि पंजाब में गुरुद्वारों में पुलिस नहीं जा सकती, पर चंडीगढ़ के आर्यसमाज मंदिर में पुलिस प्रवेश कर सकती है। अगर नियम बने हुए हैं तो सभी के लिए एक-से होने चाहिए। अभी जालंधर में आर्यसमाज मंदिर में प्रवेश पर रोक लगा दी गई थी, जबकि महीनों तक गुरुद्वारों का उपयोग क्या एक सांप्रदायिक आंदोलन को चलाने के लिए नहीं होता रहा है?

वह रोक उठा ली गई है, इसका मैं स्वागत करता हूँ। मैं इस बात का समर्थन नहीं करता कि आर्यसमाज के मंदिरों में राजनीतिक गतिविधियाँ चलें। मैं कहता हूँ कि किसी को भी इस तरह की कार्रवाई करने का अधिकार नहीं होना चाहिए, फिर चाहे वे गुरुद्वारे हों, चाहे आर्यसमाज मंदिर हों या दूसरे धर्म-स्थान हों। इस संबंध में हमें कट्टरता तथा कठोरता की नीति अपनाने की आवश्यकता है। अगर आपने इस नीति को नहीं अपनाया तो असांप्रदायिक राज्य स्थापित करने का हमारा स्वप्न कभी भी सत्य नहीं हो सकेगा।

देश के विभाजन से भी हम अगर शिक्षा नहीं लेंगे, राजनीति को मजहब से अलग नहीं रखेंगे, इस संबंध में जनमत की भावना का कानून के रूप में प्रयोग नहीं करेंगे तो केवल यह कहकर कि जनमत जाग्रत किया जाए, कोई अधिक परिणाम नहीं निकल सकता। मैं पूछना चाहता हूँ कि 'हिंदू कोड बिल' के बारे में जनमत कितना जागृत किया गया था? हिंदू कोड बिल तो बन गया मगर सिविल कोड बिल अभी तक नहीं बना है। गुरुद्वारों में पुलिस प्रवेश नहीं कर सकती, आर्यसमाज मंदिरों में कर सकती है। मस्जिदों में चुनाव जीतने के लिए फतवे दिए जा सकते हैं, विदेशी मिशनरी गिरजाघरों में बैठकर राष्ट्रीय एकता-विच्छेदन करने के षड्यंत्र कर सकते हैं और इन सब चीजों को आज बर्दाश्त किया जाता है। अगर इन संकटों को हम आज भी नहीं समझेंगे तो हमारी स्वतंत्रता और हमारी राष्ट्रीयता की रक्षा नहीं हो सकेगी।

मैं कहना चाहता हूँ कि यह प्रस्ताव नहीं है, यह शासन को कसौटी पर कसा जा रहा है और एक-एक कांग्रेसी की राष्ट्रीयता को मानो आज चुनौती दी जा रही है। अगर वे चाहते हैं कि राजनीति का सांप्रदायिकता में प्रवेश नहीं होना चाहिए, तो इस प्रस्ताव का उनको समर्थन करना चाहिए, वरना कहा जाएगा कि वे राष्ट्रीय एकता की बातें तो कर सकते हैं मगर उसके निर्माण के लिए कदम नहीं उठा सकते।

धन्यवाद,

— अटल बिहारी वाजपेयी

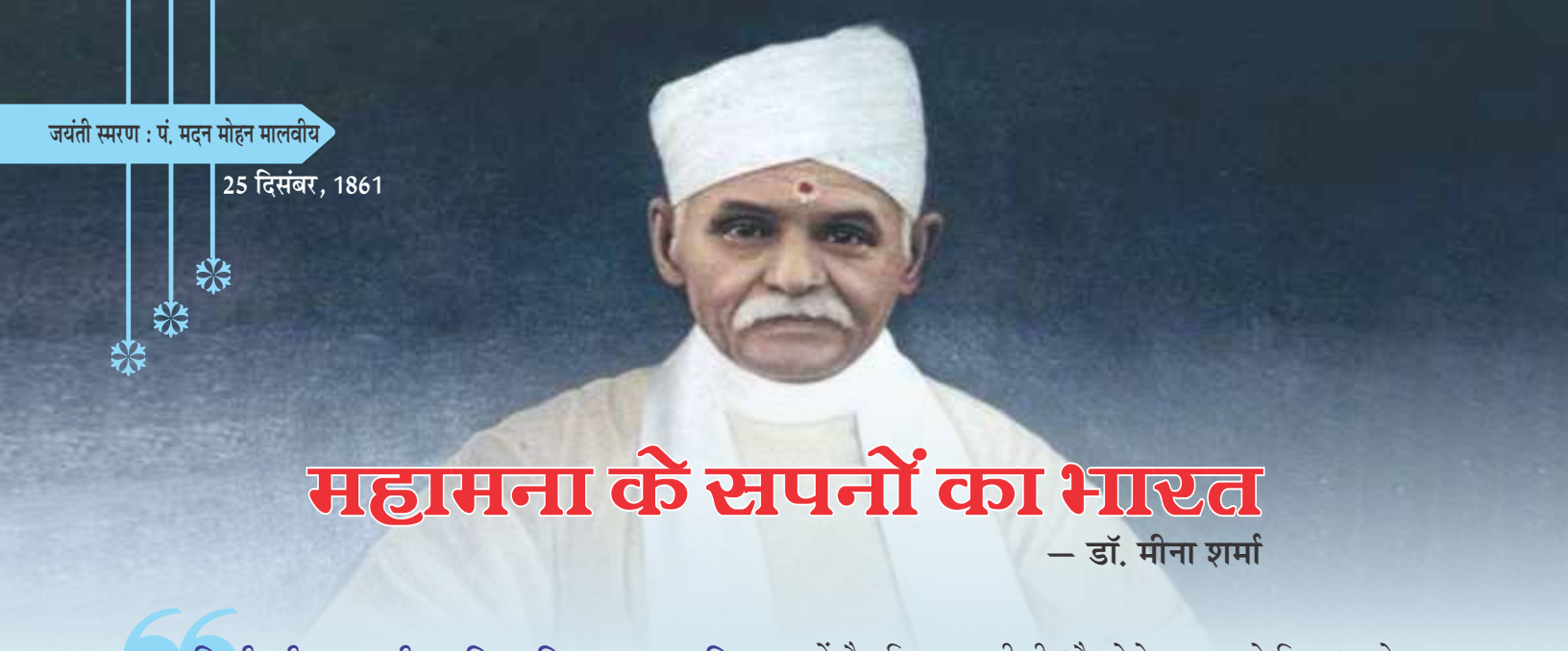

महामना के सपनों का भारत

— डॉ. मीना शर्मा

किसी भी राष्ट्र की प्रगति व विकास का भविष्य वहाँ की जनता की शिक्षा पर निर्भर करता है। खासकर एक पराधीन देश भारत के संदर्भ में यह और भी आवश्यक हो जाता है। जो सदियों से गुलाम रहा हो तथा अपने संस्कारों से अलग कर दिया गया हो। अज्ञानताओं एवं अन्धविश्वासों से जहाँ का समाज प्रभावित हो। अतः इन सबसे एक साथ मुक्ति का रास्ता शिक्षा से होकर निकलता है। पं. मदनमोहन मालवीय राष्ट्रनिर्माण की मुख्यधारा को शिक्षा से जोड़कर देशवासियों को जोड़ने का कार्य किया। उनके बीच जन-जागृति का स्वर फूँकने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता आन्दोलन के सामानांतर अज्ञानता के विरुद्ध ज्ञान का आन्दोलन खड़ा करने के वृहद् एवं महान उद्देश्य एवं देश में उच्च शिक्षा की आवश्यकता पूर्ति के लिए 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की। अंग्रेजों के साथ-साथ अज्ञानता के खिलाफ यानी दोनों ही मोर्चों पर मालवीय जी जमकर लड़े।

आधुनिक भारत के निर्माण के प्रथम पंक्ति के स्वप्नदृष्टा, मानवता के प्रति समर्पित त्याग और समर्पण की प्रतिमूर्ति, गीता के निष्काम कर्म को साकार करने वाले कर्मयोगी, राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के महान सपूत, राष्ट्रीय और स्वदेशी जागरण के विराट स्तंभ, 'सत्यमेव जयते' और 'स्वदेशी खरीदें' के उद्घोषक भारत में वैज्ञानिक, तकनीकी और पेशेवर ज्ञान के लिए आन्दोलन खड़ा करने वाले 'विजनरी' शिक्षाविद महामना पं. मदन मोहन मालवीय के बहु-आयामी व्यक्तित्व, उनके सामाजिक-साहित्यिक-धार्मिक-राष्ट्रीय-सांस्कृतिक और मानवीय कार्यों के प्रति समर्पित उनकी ज्वलंत लालसा एवं अदम्य साहस के बारे में जितना कहा जाए, वह उतना ही कम होगा।

आधुनिक भारत के निर्माण का जो स्वप्न 20वीं में स्वामी विवेकानंद, गुरुदेव रविंद्रनाथ टैगोर, महात्मा गाँधी आदि महानायकों ने देखा था, उनमें एक अग्रगण्य नाम महामना पं. मदन मोहन मालवीय का भी था। देश के लिए सर्वस्व और शत-प्रतिशत समर्पण की भावना के संकल्प के साथ उन्होंने अपना सारा जीवन न्योछावर कर दिया। देश, समाज और शिक्षा विषयक प्रेम का महत्व मालवीय जी इस कदर स्वीकार करते थे कि समाज और शिक्षा की सेवा के लिए अपने आपको, अपने संपूर्ण जीवन को ही राष्ट्र के नाम समर्पित कर दिया।

अमूमन लोगों की सोच ये होती है कि देश ने हमारे लिए क्या किया? यानी देश से मेवा लेने की ही औसत सोच होती है। ऐसे फिक्र करने वाले लोगों का जिक्र इतिहास के बही-खातों में कभी न हुआ है और न कभी होगा। इसके उलट यह सोच है कि देश के लिए हमने क्या किया है? देश को हमने क्या दिया है? यानी देश के लिए

मेवा के स्थान पर सेवा करने की भावना और देशप्रेम की ऐसी भूख जिसमें अपना सबकुछ लुटा दे, अपना सम्पूर्ण जीवन देश और मानवता के नाम कर दे, मालवीय जी इसी उलट वाली श्रेणी की सोच के अंतर्गत आते हैं। एक गरीब और पराधीन देश भारत में संघर्षमय जीवन गुजारते हुए अपने सर्वस्व का दान किया। अपने लिए कुछ नहीं रखा। जीवन का प्रत्येक क्षण उन्होंने हमें दिया, देश को दिया। जो कुछ भी श्रेष्ठतम उनके पास था, जो कुछ उत्तमोतम उनके पास था, वह सब उन्होंने हमें दिया। उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में सुख-विलास की कामना के स्थान पर अभावों में ही जीवन बिताया, न्यूनतम साधनों का ही प्रयोग किया, पर बस देश प्रेम और सामान्य मानवता के लिए ही कार्य और सेवा करते रहे। उनका दृढ़ निश्चय तो बस एक ही था और वह था जो कुछ भी शिव है, सत्य है, पवित्र है, वह इस देश को देना और इसमें वह कुछ भी मिश्रित नहीं करना चाहते थे। न तो अपनी भूख-प्यास, न लाभ-हानि, न नाम या कीर्ति, न डर या संकोच, न सुख और न आराम। मालवीयजी अविराम भाव के साथ जीवन भर देश-परिवर्तन के मिशन में अपना अंश देकर देश का उत्मांश निर्मित करने में समर्पित एक योद्धा की तरह लगे रहे। महामना मालवीयजी लालच-लोभ-भय-थकान-आराम आदि किसी चीज को भी अपने निस्वार्थ त्याग, देश प्रेम, मानवता और शिक्षा की सेवा-साधना के साथ जोड़ना नहीं चाहते थे। भारत के लिए त्याग और वह भी शत-प्रतिशत त्याग बिना किसी निजी कामना, बिना किसी चाहत, इच्छा आकांक्षाओं से जुड़ा त्याग उनके मन को, उनके काम को, उनके नाम को महान यानी 'महामना' बनाती है।

किसी भी राष्ट्र की प्रगति व विकास का भविष्य वहाँ की जनता की शिक्षा पर निर्भर करता है। खासकर एक पराधीन देश भारत के संदर्भ में यह और भी आवश्यक हो जाता है। जो सदियों से गुलाम रहा हो तथा अपने संस्कारों से अलग कर दिया गया हो। अज्ञानताओं एवं अन्धविश्वासों से

जहाँ का समाज प्रभावित हो। अत: इन सबसे एक साथ मुक्ति का रास्ता शिक्षा से होकर निकलता है। पं. मदनमोहन मालवीय राष्ट्रनिर्माण की मुख्यधारा को शिक्षा से जोड़कर देशवासियों को जोड़ने का कार्य किया। उनके बीच जन-जागृति का स्वर फूँकने के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता आन्दोलन के सामानांतर अज्ञानता के विरुद्ध ज्ञान का आन्दोलन खड़ा करने के वृहद् एवं महान उद्देश्य एवं देश में उच्च शिक्षा की आवश्यकता पूर्ति के लिए 1916 में बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना की। अंग्रेजों के साथ-साथ अज्ञानता के खिलाफ यानी दोनों ही मोर्चों पर मालवीय जी जमकर लड़े।

मालवीय जी के लिए बी.एच.यू. सिर्फ एक विश्वविद्यालय का नाम नहीं है बल्कि उच्च शिक्षा में वैज्ञानिक, तकनीकी एवं पेशेवर शिक्षा के आन्दोलन का नाम है। उत्तर भारत के अग्रणी उच्च शिक्षा की

आवश्यकता की पूर्ति के एक बड़े केंद्र का नाम है, जिसकी स्थापना की साधना में एक-एक व्यक्ति, एक-एक रुपये की सहयोग और सहभागी राशि लेकर, एक-एक व्यक्ति को शिक्षा के आन्दोलन से जोड़कर, उस जमाने में एक करोड़ की वृहद् धनराशि से बी.एच.यू. की स्थापना कर दिया। उस सपने को साकार किया, जिसमें भारत का सुनहरा भविष्य दिखता था, नई पीढ़ियों, भावी पीढ़ियों के पंखों की उड़ान दिखती थी और एक नए भारत का स्वप्न पलता था।

महामना पं. मदनमोहन मालवीय के लिए शिक्षा किसी जादू की छड़ी से कम न थी। वे निर्धन की शिक्षा को निर्धन की पूँजी और सफलता एवं महान अवसरों की कुंजी मानते थे। मालवीय जी का अदम्य प्रयास स्वामी विवेकानंद के इस निवेदन को ही चरितार्थ करता है जिसमें वे निवेदन करते हैं कि "शिक्षा, शिक्षा और सिर्फ शिक्षा ही इस देश की उन्नति कर सकती है"। यूरोप के बहुत से शहरों की यात्राओं के दौरान मैंने वहाँ शिक्षा, सुख-संतोष तथा ऐश्वर्य का जो आलम देखा है, वो केवल शिक्षा के प्रसार से ही संभव है। वहाँ निर्धन भी शिक्षित है और मेहनत तथा शिक्षा के फलस्वरूप वे सुखी वैभवपूर्ण जीवन जी रहे हैं। उनकी स्थिति को देखकर जब मुझे अपने देश की गरीब जनता की दुर्दशा की याद आई तो मेरा मन द्रवित हो उठा। उन लोगों तथा अपने देश के लोगों की स्थिति में फर्क क्यों है? इसका उत्तर है—शिक्षा। बहुत सोच विचार के बाद मैंने भी फर्क का कारण शिक्षा पाया।

मालवीय जी की मान्यता थी कि हमारे भारत का भविष्य, भारत की प्रगति मुक्ति का रास्ता शिक्षा से ही होकर गुजरता है। एक पराधीन भारत में भारत की मुक्ति के लिए, भारतीय लोगों के भीतर निहित अंधविश्वास, अज्ञानता, पर निर्भरता से मुक्ति में लड़ने का सबसे बड़ा हथियार शिक्षा ही है। शिक्षा ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को आत्मनिर्भर बनाती है तथा सम्मानजनक जीवन जीने का मूलमंत्र सिखाती है तथा नई राह दिखाती है। यह नई राह ही हमें नए भारत की ओर ले जाएगी और इस दिशा में हमें बहुत कुछ करना बाकी है ताकि हम लोग मालवीय जी के सपनों के भारत को पूर्ण बना सकें, न कि पूर्ण विराम दें। पूर्ण विराम ठहराव का प्रतीक है, जड़ता का सूचक है और जड़ता मृत्यु का मार्ग। अतएव हमें कहीं ठहरना नहीं है, कही रुकना नहीं है, गतिमानता के साथ शिक्षा के पथ पर चलते हुए भारत के सुनहरे भविष्य और विकास की गौरवगाथा की कहानी लिखते हुए भारत के विश्वगुरु बनने का मार्ग प्रशस्त करना है। ऐसी मेरी कामना है और पूर्ण विश्वास है कि महामना पं. मदनमोहन मालवीय के सपनों का भारत बनाने में हम होंगे कामयाब एक दिन, मन में है विश्वास, पूरा है विश्वास हम होंगे कामयाब एक दिन।

आधुनिक भारत के निर्माता, शिल्पकार, वास्तुकार, विजनरी शिक्षाविद महामना पं. मदनमोहन मालवीय का नाम और काम आदर एवं सम्मान के साथ एक गौरवपूर्ण प्रेरणास्त्रोत और एक पथप्रदर्शक के रूप में आज भी उतना ही प्रासंगिक और मूल्यपरक है, जितना कि इतिहास में कल था। भविष्य में भी आने वाली भावी पीढ़ियाँ भी उन्हें सदैव उसी गौरवगाथा के साथ देखेंगी, उनके सपनों को साकार करेंगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

संदर्भ :

1. The Life and Times of Pt. Madan Mohan Malviya (Eng. Book Mann Manju).
2. भारत रत्न, पंडित मदन मोहन मालवीय, डॉ. सुदेश शर्मा।
3. राष्ट्रवादी व्यक्तित्व, महामना मदनमोहन मालवीय, शदर सिंह।
4. महामना पं. मदनमोहन मालवीय, डॉ. चन्द्रिका प्रसाद शर्मा।
5. पत्र पत्रिका, समाचार पत्र आदि।

❖

असिस्टेंट प्रोफेसर, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
मोबाइल : 9818625989

कृष्ण राधा प्रेमाख्यान : अंतरंगिनी

— अलका कंसारा

पिछले दिनों एक नई पुस्तक पढ़ने को मिली। डॉ. नीलम वर्मा द्वारा लिखित अंतरंगिनी। अंतरंगिनी-एक सुंदर नाम, एक सुंदर खंड काव्य, एक सुंदर सोच और सोच में व्यक्त गहराई। पुस्तक के आवरण पृष्ठ ने ही मन मोह लिया। बाँसुरी की धुन में मस्त राधा-कृष्ण और ऊपर से लटकते आम्र के बूर।

कृष्ण और राधा हमारी संस्कृति में इतना रच बस गए हैं कि उनके ऊपर न जाने कितने गीत, कितने छंद, कितनी कविताएँ, कितनी कहानियाँ और कितनी कथाएँ लिखी जा चुकी हैं, सुनाई जा चुकी हैं और अभी भी लिखी पढ़ी जा रही हैं। हर बार दोनों एक नवीन रूप धरे मिलते हैं। कृष्ण एक बार वृंदावन से गए तो लौट कर नहीं आए। द्वारिकाधीश बन शेष जीवन बिता दिया।

पर यहाँ लेखिका की सोच आगे निकल गई। जो किसी ने न सोचा, उन्होंने उसे ही सोचा और इस खंड-काव्य में जीवंत करती चली गईं। पढ़ने वाले को महसूस ही नहीं होता कि यह कल्पना है, यथार्थ नहीं। काव्य का वार्तालाप स्वरूप उसे पाठक के साथ बाँधे रहता है।

कृष्ण का वृंदावन लौटना, लौटते हुए हिचकिचाना, उनकी चिंता, उनका चिंतन और राधा की मिलने की बेकरारी, सब सहज प्रतीत होता है। राधा जानती है कि महाभारत के युद्ध ने कृष्ण के मानस पटल पर एक गहरी छाप छोड़ी होगी। वे भी युद्ध के औचित्य को सोचते होंगे। मानव जीवन में होने से कृष्ण को भी अपनी कर्मभूमि को अपनाना ही पड़ा, कुछ निर्णय लेने ही पड़े। इतिहास की कसौटी पर परखा जाएगा सब। कितने कष्ट में होंगे उसके बाल सखा।

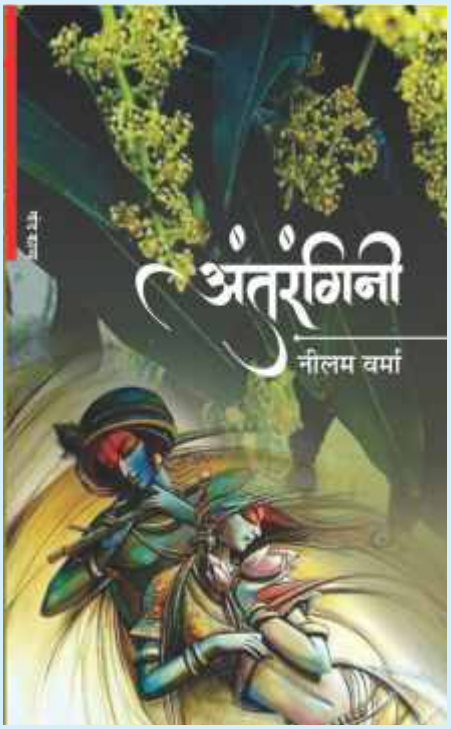

पुस्तक	-	अंतरंगिनी
लेखक	-	नीलम वर्मा
प्रथम संस्करण	-	2019
पृष्ठ संख्या	-	86
मूल्य	-	250 रुपये
प्रकाशक	-	विश्व हिंदी साहित्य परिषद दिल्ली-110088

वृंदावन की आम्रमंजरी के बारे में पढ़ा सुना था और यहीं पर लेखिका एक बार फिर ले आती है कृष्ण और राधा को। आम्रमंजरी का जीवंत चित्रण पाठक को भी वहीं ले चलता है और साक्षी बना देता है राधा और कृष्ण के मिलन का।

कृष्ण द्वारिकाधीश हैं, ईश्वर का अवतार हैं, ज्ञाता हैं पर यहाँ, इस काव्य में सब ओर राधा ही राधा है। प्रेममयी राधा, ज्ञानमयी राधा, भविष्य दृष्टा राधा, कृष्ण की अंतरंगिनी राधा, कृष्ण के हृदय में माधुर्य का संचार करती राधा। वह जानती है कि कृष्ण की मृत्यु गांधारी के श्राप के अनुसार होगी और राधा इसे सहज ही स्वीकार भी करती है। कितना सुंदर कहा राधा ने-आज से कल की दूरी उतनी ही तो है/ जितनी एक श्वास से दूसरी श्वास की / आज जाएगा / तभी कल आएगा / यह धूल धूसरित समय जाएगा / सम्भवत: तभी उज्जवल तेजस्वी समय आ पाएगा....।

इसी तरह राधा द्वारा उस युग के लिए कही गई कुछ पंक्तियाँ आज के युग के लिए कितनी सटीक हैं। मानो राधा भविष्य पढ़ना जानती थी। यदि संतति लक्ष्यहीन हो और स्वजन आक्रामक / यदि योग्यता तिरस्कृत हो और वंशाधिकार गौरवान्वित / यदि आचरण पुरुषार्थहीन हो और सत्ता लोलुपता निर्लज्ज। पर फिर भी राधा आशावादी है। वह कहती है-काल का सबसे कठोर निर्णय भी / एक नवल शुभारम्भ का संकेत करता है। उसके मुख से, मन से एक ही मंत्र निकलता है-सर्वे भवंतु सुखिन:।

राधा का यह सशक्त रूप, आशावादी रूप मन को गहरे तक छू जाता है। कृष्ण से न कम न अधिक, बस उसके बराबर, उसकी अंतरंगिनी। राधा का यह नवीन, सशक्त रूप पाठकों और आलोचकों को प्रेरित भी करेगा और अभिभूत भी।

इतने सुंदर खंड काव्य के लिए नीलम जी को हार्दिक बधाई और आगे भी वे ऐसे ही लिखती रहें यही शुभकामना।

श्री कृष्ण गोविंद हरे मुरारी
हे नाथ नारायण नमोस्तुते।

पूर्व आचार्य, डीएवी कॉलेज, चंडीगढ़
154/1, सेक्टर-45ए, चंडीगढ़
मोबाइल : 9815621310

भारतीय संस्कृति की पोषक : प्राकृतिक चिकित्सा

— ममता

समय बदल रहा है पहले हम प्राचीन से आधुनिक होने की दौड़ में अंधाधुंध भागते जा रहे थे वहीं अब पुरानी पद्धतियों, पुरानी आदतों को पुनः अपनाने के प्रयास में निरंतर शोध कर रहे हैं अति आधुनिकता का प्रतिरोध कर रहे हैं। अनेक विषय इसके अंतर्गत समाहित हो सकते हैं परंतु आज मैं जिस विषय को प्रमुखता के साथ उठाना चाहती हूँ वह हमारे मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के साथ तो जुड़ा हुआ है ही वह किसी राष्ट्र के स्वास्थ्य इंडेक्स का भी मानक होता है।

जी हाँ, मैं चर्चा कर रही हूँ भारतीय सनातन प्रवृत्तियों के अनुसार किए जाने वाले स्वास्थ्य संबंधी उपायों और प्रयासों की। अनंत काल से भारतीय समाज हर क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुका है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में इसी पराकाष्ठा का नाम योग अथवा प्राकृतिक चिकित्सा है।

दरअसल भारतीय सांस्कृतिक परिदृश्य के अंतर्गत योग अध्यात्म के साथ-साथ स्वाध्याय एक ऐसी परिकल्पना ही थी जो आज की आधुनिकतम विज्ञान की कसौटी पर भी पूरी तरह से खरी उतर रही है।

अंग्रेजी दवाइयों के दुष्प्रभाव और क्षणिक स्वास्थ्य लाभ के कारण एक बार पुनः विश्व का एक बहुत बड़ा वर्ग भारतीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा की ओर उन्मुख हो चुका है। आइए इस आलेख के माध्यम से प्राकृतिक चिकित्सा के कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं पर चर्चा करते हैं ताकि हमारे देश का स्वास्थ्य भी उत्तम रहे और पूरा विश्व उसका अनुकरण करके भारत की सनातन प्रवृत्तियों और वैज्ञानिक विधियों से लाभान्वित हो सके।

प्राकृतिक चिकित्सा को चिकित्सा की एक ऐसी विधा माना जाता है जो तब काम करती है जब अन्य सभी उपाय विफल हो जाते हैं। अच्छे परिणाम पाने के लिए इसका प्रयोग रोग की शुरुआत में ही किया जा सकता है रोग की स्थिति चाहे जो भी हो। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा का एक और महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यह शारीरिक और मानसिक रोगों से मुक्त स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए अपनाई गई जीवनशैली का ही एक समन्वित रूप है। हमें प्राकृतिक चिकित्सा के उन सिद्धांतों का ध्यानपूर्वक पालन करना चाहिए जो इस विज्ञान के आधार को मजबूत बनाते हैं ताकि इसकी क्षमताओं का पूरी तरह से उपयोग किया जा सके। रोग के नामकरण के विवाद में न पड़ते हुए बीमारियों को ठीक करने के लिए प्राकृतिक चिकित्सा एक आशावादी और सकारात्मक दृष्टिकोण रखती है। प्राकृतिक चिकित्सा में रोगों को उसी कारण के परिणाम के रूप में देखा जाता है इसलिए यह आधुनिक विश्लेषणात्मक चिकित्सा विज्ञान के आधार पर रोगों के विभिन्न नामों के बावजूद सभी प्रकार की बीमारियों को दूर करने की कोशिश करती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में स्वस्थ जीवनशैली पर अधिक ज़ोर दिया जाता है लेकिन प्रश्न यह है कि हम किसे स्वस्थ कहेंगे? चिकित्सा के मापदंडों के अनुसार जो लोग ऊँचाई, वजन और छाती के विस्तार की कुछ निश्चित श्रेणियों में आते हैं, उन्हें ही स्वस्थ माना जाता है। लेकिन यह विचार बहुत उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। कदाचित स्वास्थ्य का अर्थ कुछ और है। यद्यपि आमतौर पर स्वास्थ्य का अर्थ केवल भौतिक नज़रिए से देखा जाता है।

स्पष्ट है कि बीमारी का न होना स्वास्थ्य नहीं है। स्वास्थ्य रोग की अनुपस्थिति से कहीं अधिक है। स्वास्थ्य एक ऐसा विषय है जिसके लिए गहरी और व्यापक समझ की आवश्यकता होती है।

'प्राकृतिक चिकित्सा' या Naturopathy शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। एक लैटिन शब्द 'Nature' जिसका अर्थ है 'प्रकृति' और ग्रीक शब्द 'Pathos' जिसका अर्थ है 'बीमारियाँ'। बटरवर्थ्स मेडिकल डिक्शनरी के अनुसार 'प्राकृतिक चिकित्सा' या नेचुरोपैथी 'चिकित्सा का एक रूप है जो औषधीय और शल्य चिकित्सा एजेंटों को सम्मिलित न करते हुए पूरी तरह से प्राकृतिक बलों जैसे प्रकाश, पानी, हवा, गर्मी और मालिश पर निर्भर करता है'।

आमतौर पर हम मानते हैं कि बचपन और युवावस्था के दिन बेहतर होते हैं क्योंकि उन दिनों हम स्वास्थ्य और जोश से भरे होते हैं। लेकिन यह बात केवल कुछ गिने-चुने लोगों के लिए ही सही है। दुर्भाग्यवश हमारे अधिकांश बच्चे और युवक प्रतिस्पर्धात्मक जीवन और तथाकथित सभ्य (अप्राकृतिक) जीवनशैली के अनगिनत कामों में इतना अधिक उलझे होते हैं कि उन्हें शायद ही अपने बचपन की कभी याद आती हो और वे प्रकृति के सामीप्य का अतुलनीय आनंद ले पाए हों।

अगर हम प्राकृतिक चिकित्सा को स्वास्थ्य के परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाएँगे कि प्राकृतिक चिकित्सा ही एकमात्र ऐसी चिकित्सा प्रणाली है जो किसी व्यक्ति को स्वास्थ्य के मामले में डॉक्टरों पर होने वाली निर्भरता से मुक्त करती है। प्राकृतिक चिकित्सा केवल एक चिकित्सा विज्ञान ही नहीं है बल्कि जीवन का दर्शन भी है। प्राकृतिक चिकित्सा न तो उपचार की कोई नई विधि है और न ही इसे दोबारा कहीं से खोज कर लाया गया है। जब से हम अस्तित्व में आए हैं तभी से इसे हमने सहज रूप से प्राप्त किया है। कुछ पुरानी भारतीय परंपराएँ जो प्राकृतिक नियमों पर आधारित थीं हमारी संस्कृति का हिस्सा बन गईं। सुबह उठना, सुबह की सैर, उषापान, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार और उपवास आदि ऐसी चीजें हैं, जो सांस्कृतिक रूप से हमारी जीवनशैली और रोजमर्रा की दिनचर्या से जुड़ी हैं। यही बातें अब विशेषज्ञ डॉक्टरों का नुस्खा बन गई हैं। बहुत से लोग मानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा के बजाय 'प्राकृतिक जीवन' इस चिकित्सा पद्धति के लिए अधिक उपयुक्त शब्द है क्योंकि यह न केवल एक चिकित्सा पद्धति है बल्कि जीवन जीने की एक कला और विज्ञान भी है। वस्तुतः प्राकृतिक नियमों पर आधारित जीवन पद्धति को अपनाना ही प्राकृतिक चिकित्सा है। यदि इसे सच्चे अर्थों में अपनाया जाये तो रोगों की रोकथाम के साथ-साथ संपूर्ण स्वास्थ्य एक तरह से सुनिश्चित हो जाता है।

जहाँ अन्य चिकित्सा प्रणालियाँ रोगों से छुटकारा दिलाने के लिए शरीर की अंतर्निहित शक्ति को दवाओं के माध्यम से दबाने की कोशिश करती हैं वहीं प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक उपचारों के माध्यम से शरीर की अपने शुद्धीकरण के प्राकृतिक प्रयास में मदद करती है। इसलिए कहा जाता है कि प्राकृतिक चिकित्सा एक विज्ञान है जो प्रकृति की मदद से बीमारियों का इलाज करके हमें संपूर्ण स्वास्थ्य प्रदान करता है।

प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि प्रकृति सबसे प्राचीन चिकित्सक है। हमारे शरीर में रोग को ठीक करने के लिए एक अतुल्य शक्ति है। हमारे पूर्वजों ने सदियों के ज्ञान और अनुभव के बाद प्राकृतिक चिकित्सा को उपयोगी और प्रभावी पाया है। उन्होंने माना कि इस पूरे ब्रह्मांड का अस्तित्व एक दूसरे के साथ आपसी संबंध के कारण है। हम प्रकृति के साथ तालमेल से रहकर, जीवन को नियंत्रित करने वाली सभी ताकतों के साथ आपसी सहयोग से और प्रेम की

भावना से ख़ुद को स्वस्थ और संतुष्ट कर सकते हैं। इससे दूसरों को भी शांतिपूर्ण जीवन बिताने का मौका मिलता है।

संपूर्ण स्वास्थ्य के लिए कुछ चीज़ें अत्यंत आवश्यक हैं जैसे–मन की शांति, संतुलित भोजन, नियमित व्यायाम और उचित आराम। हमारा शरीर पाँच तत्वों से बना है। इसलिए इन तत्वों का संतुलन बनाए रखने के लिए इन पाँच तत्वों के साथ एक नियमित संपर्क आवश्यक है जिसे स्वास्थ्य की स्थिति कहा जाता है।

पहले हम मन की शांति को लेते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने मन और इंद्रियों का उपयोग नियंत्रित तरीके से करें। जब हमारा मस्तिष्क और इंद्रियाँ हमारे ऊपर हावी हो जाती हैं और हमारे विवेक के तर्कसंगत आदेशों की अवहेलना करती हैं तो हम चिंता, शोक, दु:ख, भय, अपराधबोध, अवसाद आदि से ग्रस्त हो जाते हैं जिन्हें बहुत सारी बीमारियों के लिए ज़िम्मेदार माना जाता है। इसलिए हमें अपनी ख़ुशी को बनाए रखने के लिए इन मानसिक विकारों को दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। तभी हम शांतिपूर्ण स्थिति में रह सकते हैं। हँसना और मुस्कुराना अच्छे स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है लेकिन हम तभी हँस और मुस्कुरा सकते हैं जब हम अन्दर से ख़ुश हों, मन शांत हो और इंद्रियाँ हमारे नियंत्रण में हों।

हमारा भोजन भी संतुलित और पौष्टिक होना चाहिए। यह स्वास्थ्य को बनाए रखने के दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारा भोजन ही हमें रोगग्रस्त या स्वस्थ बनाता है। भोजन हमारे शरीर के विकास और मरम्मत के लिए ऊर्जा और आपूर्ति सामग्री देता है। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भोजन की गुणवत्ता अच्छी और संतुलित होनी चाहिए। भूख लगने पर ही हमें खाना चाहिए। हमारे भोजन में संतुलित मात्रा में संपूर्ण गेहूँ की रोटी, ताजी हरी सब्ज़ियाँ, सलाद, ताजे मौसमी फल और दही आदि सम्मिलित होने चाहिए। हमें दिन में केवल दो बार भोजन लेना चाहिए। बार–बार खाने की आदत से पाचन शक्ति कम हो जाती है। सप्ताह में एक बार उपवास रखना चाहिए या केवल फलों के आहार पर रहना चाहिए। हमें हर हाल में शराब, चाय, कॉफ़ी, बीड़ी, सिगरेट, मांसाहार, तंबाकू, जर्दा, गुटका, पान मसाला, आइसक्रीम, कोल्ड ड्रिंक, मसालेदार और तैलीय खाद्य पदार्थों से बचना चाहिए।

संक्षेप में हमें अपनी दिनचर्या को इस तरह से तैयार और व्यवस्थित रखना चाहिए कि हम प्रकृति की अधिक से अधिक निकटता में रहें। तभी हमें उत्तम स्वास्थ्य मिल सकता है। प्रकृति का मकसद हमें एक आदर्श रूप में विकसित करना है ताकि हम लंबे समय तक स्वस्थ और दीर्घजीवी रहें। यह तभी ख़त्म होता है जब हम इसका पालन नहीं करते और इसकी उम्मीदों पर खरे नहीं उतरते। प्राकृतिक चिकित्सा सही स्वास्थ्य हासिल करने के लिए और हमेशा के लिए बीमारियों से दूर रहने के लिए एक सबसे सुविधाजनक गैर–परिष्कृत तरीका है क्योंकि यह जीवनी शक्ति में सुधार करता है और अस्वास्थ्य के सभी संभावित कारणों को सीमित करता है। इसे अपनाने के कुछ हफ्तों के बाद ही हमें ऐसा लगता है कि हमने एक नया जीवन प्राप्त कर लिया है।

जहाँ तक प्राकृतिक चिकित्सा का संबंध है, इसके तीन पक्ष हैं। इसका पहला पक्ष रोगों की रोकथाम करने वाला अर्थात रोग निवारक; दूसरा उपचारात्मक; और तीसरा स्वास्थ्यवर्धक है। जब कोई रोगी प्राकृतिक उपचार लेता है तो इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि अन्य चिकित्सा प्रणालियों में रोगी को उपचार में शामिल तकनीकी जानकारियों को समझने की आवश्यकता नहीं होती लेकिन प्राकृतिक चिकित्सा में रोगियों को रोग और स्वास्थ्य को नियंत्रित करने वाले नियमों के बारे में अच्छी समझ होना आवश्यक है। उन्हें प्रकृति के नियमों के बारे में पूरी जानकारी दी जाती है तथा स्वास्थ्य की बहाली के लिए

सख्ती से उन नियमों का पालन करने की सलाह दी जाती है। प्रकृति के साथ सामंजस्य बैठाकर ही स्वास्थ्य को बरकरार और सुरक्षित रखा जा सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी तरह की दवाओं का इस्तेमाल नहीं किया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा का मानना है कि बीमारियाँ शरीर में विजातीय पदार्थों के संचय का नतीजा हैं और इन्हें शरीर से बाहर निकालकर ही स्वास्थ्य को बहाल किया जा सकता है। दवाएँ शरीर में पहले से जमा विषाक्त पदार्थों को और बढ़ाती हैं इसलिए इनके प्रयोग को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। प्रणालियों की अभिव्यक्तियाँ शरीर की प्रतिक्रिया का संकेत होती हैं और केवल एक चीज़ जो करने की आवश्यकता होती है, वह है उन्हें दवाओं और अन्य साधनों के माध्यम से दबाने की बजाय प्राकृतिक तरीकों से सहनीय सीमाओं के अंतर्गत रखना।

प्राकृतिक चिकित्सा में रोग को जड़ से ख़त्म करने पर मुख्य ज़ोर दिया जाता है। प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार बीमारी के लक्षण का गायब होना बीमारी का गायब होना नहीं है। आमतौर पर दवा लेने वाले रोगियों के साथ यह देखा गया है कि दवा लेने के दौरान बीमारियों के लक्षण दबे रहते हैं लेकिन जैसे ही दवा लेना बंद किया जाता है, लक्षण फिर से दिखाई देने लगते हैं। प्राकृतिक चिकित्सा बीमारियों के कारण की एकता और उनके उपचार की एकता में विश्वास करती है। इसका दृष्टिकोण समग्र है। यह शरीर को एक पूर्ण इकाई के रूप में मानती है। जबकि अन्य दवा प्रणालियों में शरीर के अलग-अलग अंगों के रोगों और लक्षणों के लिए अलग-अलग दवाएँ दी जाती हैं। उदाहरण के तौर पर पेट दर्द और सिरदर्द के लिए अलग-अलग दवा है, जबकि दोनों दर्द का कारण एक ही हो सकता है। प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार इतने आसान और सरल हैं कि कोई भी व्यक्ति उचित मार्गदर्शन प्राप्त करने के बाद घर पर इनका पालन कर सकता है। फिर भी जीर्ण और असाध्य रोग की स्थिति में एक प्राकृतिक चिकित्सक के मार्गदर्शन में किसी प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में रहकर उपचार कराना उचित है। शरीर की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप पुरानी बीमारियों के उपचार के दौरान आमतौर पर तीव्र उभार की स्थिति आती है। उभार दो तरह का होता है। एक है

उपचारात्मक उभार और दूसरा रोगात्मक उभार। केवल एक अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सक ही उनके बीच अंतर ज्ञात कर सकता है। यदि उपचारात्मक उभार है तो रोगी उभार से गुजरने के बाद ठीक हो जाएगा किन्तु रोगात्मक उभार की स्थिति में रोगी की मृत्यु हो सकती है। ऐसी स्थिति में मरीज़ घबरा जाते हैं। इसलिए, ऐसी अवस्था में प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र में रहने की सलाह दी जाती है। तीव्र रोगों से ग्रस्त रोगी प्राकृतिक चिकित्सा का लाभ आउटडोर में ले सकते हैं और घर पर उपचार और आहार कार्यक्रम का पालन कर सकते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक के द्वारा स्वास्थ्य प्राप्त करने के अभ्यास बहुत आसान हैं और कम खर्चीले भी। ज़रूरत केवल चीज़ों को देखने का नज़रिया बदलने की है। जब कोई यह समझने लगता है कि स्वास्थ्य की खोज का अंतिम गंतव्य कोई दवा की दुकान नहीं है बल्कि एक स्वस्थ और नियमित दिनचर्या और संतुलित भोजन है तो यह माना जाना चाहिए कि उसने बेहतर और उत्तम स्वास्थ्य की दिशा में पहला कदम उठा लिया है।

❖

ई-16/362, सेक्टर-8
रोहिणी, दिल्ली-110085
मोबाइल : 9212012231

हरेन्द्र प्रताप की कविताएँ

नरतंत्र

(1)
स्वतंत्र युग में
हर स्वतंत्र प्रेमी
चाहता है
प्रेमिका पर
उसकी
सिर्फ उसकी
बादशाहत हो
वह मोबाइल बन
उसकी जेब में रहे
प्रेम दिल में धड़के
प्रेमिका कानों में रस घोले!

(2)
नेटवर्क हो ऐसी लक्ष्मण-रेखा
रावण पास न फटके
बाहर सीता जा न सके
चीर-हरण नित्य होता रहे
स्त्री-स्त्री की स्वतंत्रता का
दुर्योधन-धृतराष्ट्र करोड़ों बने
पांडव स्वयं कुछ कर न सके
श्रीकृष्ण अब कहीं नहीं दिखे!

(3)
लोकतंत्र की बरगदी छांव में
दबंग ऐश-मौज करते हैं
कमजोर पैर दबाते हैं
कौवे जूठन खाते हैं
'शक्ति' मंदिर में भी स्वतंत्र नहीं
वह अंदर पहरे में सोती है
पहरे में ही पूजी जाती है
बलशाली को
तत्काल से दर्शन देती है
कमजोर से
तपस्या खूब कराती है!

(4)
आधुनिक नरतंत्र में
चाहिये स्वाधीन नर को
पराधीन-नराधीन मादा
तृप्ति के सामने युक्ति
न हो सके आमादा
चाहिये स्वतंत्र काया को
परतंत्र-कलतंत्र आत्मा
सदा-सदा के लिए हो
स्वतंत्र नारी-जीवन जीने के
विचार-आचार का खात्मा!

(5)
स्वतंत्र प्रेम में
दोनों से चाहिए
दोनों के प्रति
दोनों का समर्पण
लोकतंत्र में चाहिए
दोनों की बराबरी
भेदभाव बिना जहाँ
हो सके तर्पण
सब देख सकें
अपना-अपना दर्पण!

जनराज

सुबह-शाम राजपथ
पार करता रहा
जान नहीं सका राज
पथ कब पहाड़ बन गया!

बरस-बरस जनपथ पर
दिल दिल्ली ढूँढ़ता रहा
तरस-तरस गया मन
रहबर कोई मिल न सका!

रोज सँवर-सँवर दिखते हैं
राजपथ-जनपथ जब मिलते हैं
मोड़ आलिंगन कर चूमते हैं
चुप जामुन के पेड़ घूरते हैं!

आस-पास सब भले पथ हैं
रखते भिन्न दिशा, अलग रथ हैं
राज मिलते ही जन भूल जाते हैं
जन बनते ही राज छूट जाते हैं!

कई दशक जनपथ-राजपथ
सारे-सारे पथ पार करता रहा
छब्बीस जनवरी को सज-धज कर
हर साल भारत यहाँ आता रहा!

उत्तर नहीं वह कभी पा सका
जनराज कब यहा आयेगा?
इंडिया अब सिर्फ
क्या गेट पर रह जायेगा??

सबको चाहिए दिल्ली!

(1)
भोग से योग तक
योग से भोग तक
सबको चाहिए सत्ता
किसी को चाहिए पटना
किसी को कलकत्ता!

(2)
मुंबई से हैदराबाद तक
लखनऊ से गुवाहाटी तक
सबको चाहिए तुरुप का पत्ता
किसी को चाहिए बेगम
किसी को चाहिए राजा
किसी को चाहिए गुलाम
किसी को संग अभिनेता!

(3)
विधान से संविधान तक
पक्ष से विपक्ष तक
सबको चाहिए भत्ता
किसी को चाहिए पासा
किसी को नया पाला!

(4)
कश्मीर से कंधार तक
पाताल से आकाश तक
रोटी सेंकने को चाहिए तवा
किसी को चाहिए नई मुसीबत
किसी को नया आतंकी गोला
किसी को चाहिए सुलगती राख
किसी को सिर्फ बुलबुला!

(5)
पूरब से पश्चिम तक
उत्तर से दक्षिण तक
सबको चाहिए दिल्ली
किसी न छोड़ी सब्सिडी
किसी ने छू ली बिजली!

(6)
सत्ता को नशे में भोग
भोग को योग से भोग
खोज एक चमकता सितारा
बांध सेकुलर का सेहरा
गढ़ नया साम्प्रदायिक मुहावरा
पढ़ विकास का ककहरा
दिखा पंचवर्षीय स्वप्न सुनहरा!!!

❖

कवि-पत्रकार।
मुख्य संपादक, लघु उद्योग समाचार
निर्माण भवन, नई दिल्ली-110108
मोबाइल : 9871588778, ई-मेल : pratap.media@gmail.com

इंदुशेखर तत्पुरुष की कविताएँ

लगे उखड़ने डेरे-डंडे

हम चतुरमूढ़ बेसुध गाफिल
परवाह नहीं
जीवन के पावन नियमों की
करते विलाप अब बिलख-बिलख
कहाँ गए सब रक्षक, चौकीदार, प्रशासन
कहाँ गए!

बेधड़क बढ़े आ रहे राक्षस बस्ती में
बेरोकटोक घुस आये मेरे कमरे में
खड़-खड़, धड़-धड़, चट-पट, छट-पट
लय भंग कर रहे जीवन की
छीना-झपटी सांसों की, बल की
जन-धन की।

थक-हार द्वार पर
प्रतिरक्षा को
बिठा लिए मैंने निज प्रहरी
आमलकी, तुलसी, गिलोय
असगंध, सौंठ-बलशाली पट्ठे
जिनसे भय खा जा छुपे कहीं
वे उपद्रवी आतंकी गुंडे

जहाँ बिखरती थी साँसें, आवाजें मेरी
लगे उखड़ने अब उनके ही डेरे-डंडे
धरे रह गए कोरोनाई
कुटिल विषैले सब हथकंडे।

❖

कविता की चपेट में कोरोना

(1)
सुरम्य उपवन में सुगंधित फूलों के बीच
एक लय में टहलते हुए अचानक
अंधड़ छा जाए
आँखों में किरकिरी भरता जैसे...
लय-बँधी नींद में अचानक उठ जाता
फुफ्फुस कुल्याओं से चक्रवात
करता तितर-बितर
फूल-पत्तियों को
तिनकों, तितलियों को
चीं-चीं करते फड़फड़ा उठते पंछी।

❖

(2)
मिथ्याचारों से प्रकुपित प्राण-पवन
डमरूनाद कर
चेतावनी देता हर बार
तांडव नर्तन की झलक दिखलाता
भयभीत कर जाता
पर हमारे शब्दकोश कहाँ जान पाते यह!
वे जानते हैं बस
एक शब्द-'खाँसी'।

❖

(3)
निस्तब्ध रात में भौंकने लगते हैं कुत्ते एक साथ,
रुकने का नाम नहीं लेते
छाती के अंदर बसी इस बस्ती में भौंकते
कुत्तों को चुप कराना
कितना मुश्किल होता है!
गहरी रात में बिस्तर से उठकर
गरम पानी की भाप से
भगाना उनको।

❖

6ए, नालंदा विहार, महारानी फार्म,
जयपुर-3020168, राजस्थान
मोबाइल : 8387062611

डॉ. सुरेश अवस्थी की ग़ज़लें

(1)

हर ख़ुशी बीमार कर ली, एक ग़ज़ल के वास्ते
ज़िंदगी दुश्वार कर ली एक ग़ज़ल के वास्ते

मेरे उनके दरम्यां था मुद्दतों से कुछ नहीं
अब खड़ी दीवार कर ली एक ग़ज़ल के वास्ते

उम्र भर जो भीड़ से बचते रहे हैं देखिए
शख़्सियत बाज़ार कर ली एक ग़ज़ल के वास्ते

कोशिशों के बाद भी पहुँचा न साहिल के करीब
हर लहर पतवार कर ली एक ग़ज़ल के वास्ते

मानता हूँ इश्क है इक आग का दरिया मगर
ये नदी भी पार कर ली एक ग़ज़ल के वास्ते

❖

(2)

समय का साथ सच का हो तो सच उपहार देता है
अगर झूठों की हो संगत तो वो दुत्कार देता है

वो अक्सर झूठे लोगों को डुबो देता है दरिया में
वो सच को पार लगने के लिए पतवार देता है

गुलों से बात करने में जो बेअदबी बरतते हैं
नियति में उनके ईश्वर बस नुकीले खार देता है

उसे ख़ुद अपने बारे में ख़बर कोई नहीं होती
वो सारे शहर के हर घर में जो अखबार देता है

बुजुर्गों को जो दुलराते हैं बच्चों की तरह अक्सर
ख़ुदा उनको ही ख़ुश रहने के सब आसार देता है

तुम अपने 'मैं' को मारो और मन से मान लो उसको
मोहब्बत का वही सबसे बड़ा मेयार देता है

❖

(3)

भीगी भीगी रहती आँखें
बिन बोले सब कहती आँखें

आग, जलन, यादें और सपने
जाने क्या क्या सहती आँखें

मंदिर, मस्जिद, द्वारे, गिरजा
हैं कौम यकजहती आँखें

आये सावन बिटिया जाए
बिना रुकावट, बहती आँखें

हूक उठे है दिल में लेकिन
पहले से हैं दहती आँखें

लाख छुपा लें सागर में हम
सच के मोती गहती आँखें

❖

117 एल/233, नवीन नगर
कानपुर-208025 (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल : 9336123032
ई-मेल : drsureshawasthi@gmail.com

दामिनी यादव की कविताएँ

ताजा ख़बरों का बासीपन

अचानक से मुझे सारी जानकारियाँ
बेमानी सी लगने लगी हैं,
सड़ांध, ऊब और बासीपन से भरी
लगने लगी हैं सारी ख़बरें,
चाँद पर पानी मिलने से
क्या बदल जाएगा,
मेरी प्यास तो मोहल्ले के नल में आया
पानी ही बुझाएगा,
रौशन हों भले ही
और हजारों सूरज ही ब्रह्मांड में,
मेरे हिस्से में तो एक अदद बल्ब का
उजाला ही आ पाएगा,
क्या पता खेल में शामिल हो गई है राजनीति
या राजनीति में ही सारे खेल होते हैं,
विदेशी भाषाओं की हमारी जानकारी अब
विदेशियों तक को डराएगी,
तो क्या वह रिश्तों में फैलते
सन्नाटों को भी समझ जाएगी,
दुनिया ख़रीदेगी हमसे अब
तरक्की के साजोसामान
तब तो किसानों की लाशें भी अब
पेड़ों से लटकी नहीं नजर आएँगी,
औरतें गाड़ देंगी अब कामयाबी के झंडे
फिर तो नजर नहीं आएँगे उनके जिस्म के
रौंदे, कुचले, मसले दुपट्टे,
ऐसी ही जाने कितनी ही ख़बरों से
भरा पड़ा है ये अख़बार,
फिर भी मुझे लगने लगा है ये बेमानी-बेकार
बस एक ही जानकारी मेरे कुछ पल्ले पड़ी है कि
अख़बार और पानी से साफ करने पर
आईने चमक जाते हैं,
किरदारों की बात करना तो
मेरे बस में ही नहीं है,
आईनों से ही हटा देती हूँ धूल थोड़ी
और ख़ुश हो लूँगी कि
अब आईने पर धूल नजर नहीं आएगी
और कुछ और दिन
हमारे किरदारों की गंदगी छिपी रह जाएगी।

❖

विविधता

रंग-बिरंगे रंग कितने ख़राब होते हैं,
कितनी ख़राब होती हैं तरह-तरह की
कूकें, चहचहाहटें, आवाज़ें,
कितनी बेतुकी बात है कि
सात रंग हों इंद्रधनुष में
और सात सुरों से मिलकर बन जाएँ
हजारों-लाखों राग-रागिनियाँ, झंकारें,
पता नहीं क्यों,
पानी तक भी कहीं हरा, कहीं भूरा
कहीं नीला-सा दिखता है,
क्यों हैं ज़मीन तक पर कहीं पहाड़,
कहीं नदियाँ, कहीं हरियाली की सजावटें,
बकवास है ये बात कि
यही सब मिलकर बनाते हैं दुनिया को ख़ास
अब हमें दुनिया की सिर्फ एक शक्ल,
एक आवाज, एक रंग ही चाहिए,
सब गीदड़ कर रहे हैं हुँआ-हुँआ,
चलिए आप भी साथ-साथ मिलकर यही दोहराइए...

❖

C/o ekftn jeu lkgc
,Q&53] uwj uxj ,DlVsa'ku] iksLV&tkfe;k uxj
ubZ fnYyh&110025] eksckby % 9891362926
bZ&esy % damini2050@gmail.com

कुमार अनुपम की कविताएँ

अपराजित

नहीं मित्र,
हताश नहीं है वह व्यक्ति
हार ही नहीं सकता
अपनी लड़ाई

क्योंकि उसने अपनी पेशानी
अपनी धरती की ओर झुकाई है।

❖

सूत्र

रौशनी कम हो
तो आँखें
और पैनी होने लगती हैं, यानी
इंद्रियाँ और सकर्मक
कि ऐसे होने के उनके कारण हैं
जैसे कि मेरे

इर्द गिर्द
अँधेरा बढ़ता था

मैं
बार बार यह सूत्र
सुभाषित की तरह रटता था।

❖

यात्रियों का गीत

धूप और धूल से भरे हैं
इंतज़ार के रास्ते

नज़रअंदाज़ करते हमें दृश्य
छोड़ते जाते हुए दरख़्त
(हमारे प्राचीनतम साथी)

तरद्दुद के तार
तने हुए दाएँ बाएँ

चमकता किंतु
हमारे साथ
गतिमान हमारा चाँद
कि थिर
हम एक दूजे के लिए
जिसकी सूरत
भय में भरोसा है अनंत

ऊब और शोर और असहायता
कि बढ़ते हुए
लक्ष्य की ओर
हम अकेले
विदा में हाथ हिलाते
खिलखिलाते
बच्चों की निश्छलता के सहारे।

V

जन गण मन

एक ज़रा सी ठेस
विध्वस्त कर सकती है मुझे
ऐसी भुरभुरी मिट्टी की मेरी भीत

मेरे कंधों पर गिर आया
किसी पंछी का एक कातर पंख
कई रातों की नींद उड़ा देने को काफी है
एक आँसू भर भी नहीं मेरा मोल
इतना क्षुद्र

इतना एकाकी
कि
बँटवारे की भी नहीं बची गुंजाइश
ऐसा दरिद्र

कोई भला क्या पाएगा मुझसे
मैं भला किसके काम आऊँगा

चुल्लू भर पानी और प्रेम भर की आस

गले तो गल जाय
हक़ ओ इंसाफ़ के हित हड्डी और चाम
सह लूँगा
हर एक कचहरी
घाम।

❖

ई-1106, 10वाँ तल, एस.सी.सी. सफायर
राजनगर एक्सटेंशन, गाजियाबाद-201017 (उ.प्र.)
मोबाइल : 09873372181
ई-मेल : poetkumaranupam@gmail.com

वृषाली जैन की कविताएँ

कि अब कहने को कुछ नहीं

आँचलों में बाँध लो बेटियों को
सही करते हो तुम
जो निकलने नहीं देते शाम ढले

पाबंदी लगा दो और गहरी, कड़ी
कि उनको देख भी सके न दुनिया
अँधेरों की जागीर दो उसे
ताकीद दो, हिदायत दो,
न सुने तो क़ैद दो

हम इंसानों की बस्ती में नहीं जीते अब
यहाँ पिशाच बसते हैं
पिशाचों के धर्म नहीं होते
बस मुखौटे होते हैं

दर्द की हद्द के पार दम तोड़ने से बेहतर है
अँधेरे में मर जाना

पर जन्म देना क़ुदरत है
बेटियों की, औरत की

ये बेटियाँ अँधेरे की कोख में रचेंगी
अंत तुम्हारी इस दुनिया का!
छीन लेंगी हर वो अधिकार
जो तुम उसकी देह पर,
उसकी कोख पर रखते हो

बसा लेंगी एक नई दुनिया,
एक दूसरे के आँचल तले

तेरे बेदर्द, जाहिल समाज से
छुड़ा लेंगी अपना पल्ला
और छोड़ देंगी तुझे
यतीम, अकेला, बेसहारा
पागल हो जाने को

कि ऐ! आदिम तुझसे कहने को
उनके पास अब कुछ भी नहीं!

❖

मेरे पिता की हथेलियाँ

झुर्रियां सी दिखने लगीं हैं कुछ इन हाथों पर
जैसे वक्त ने झुलसा दिए हों, कई इम्तिहानों में
पर नर्माहट नहीं खोने पाई है अब तलक,
वैसी ही है, जैसी याद है मेरे बचपन की
आग पी गये हों सारी, और संजो ली हो जो गर्माहट
ऐसी ही हैं मेरे पिता की कंबल सी हथेलियाँ

रात जागी जो मेरे लिए,
थकी-सी लगती हैं वो अंखियाँ,
बोझ महसूस होने लगा है कंधों को,
कि नसों को अब शायद आराम चाहिए..
पर जब भी मेरे सर पर फिराते हैं हाथ
वैसा ही लगता है, जैसी याद है मेरे बचपन की
ऐसी ही हैं मेरे पिता की मखमल सी हथेलियाँ

हैं अब मीलों लंबे फ़ासले दरमियाँ
कि आसमान के सिरे भी बँटे-बँटे हैं
मैं हाथ छुड़ा कर दौड़ना सीख गई हूँ,
वो कहीं घर की देहरी पर ही अकेले खड़े हैं...
पर जब भी लौटती हूँ मैं ड्योढ़ी पर
वैसे ही थाम लेती हैं, जैसी याद है मेरे बचपन की
ऐसी ही हैं मेरे पिता की घर के आँगन सी हथेलियाँ

❖

85, बरेन स्ट्रीट, सिडनी
मोबाइल : 0401558122
ई-मेल : vrishali.jain@gmail.com

ज्योति वर्मा की कविताएँ

बरसों की निकली बरसों के बाद

आयी है टूटे ख़्वाबों की चिट्ठी।
बिना संबोधन पता पूछती
उस जगह का, जहाँ बन्द है
कई घाटों का पानी,
कुछ जली हुई राख़,
और उसमें ख़ाक हुए कुछ ख़्वाब।
वो नहीं जानती
कि मेरा पता अब बदल गया है।
मुमकिन है वो तुमसे पूछे..
तुम देना पता उस भँवर का
जो इंद्रपुरी-सा सुन्दर है
लेकिन जीने के लिये बहुत दुर्गम।
उसके मुझ तक पहुँचने में
भावनाओं की लिखावट धुँधला जायेगी।
तुम कहना उस से बस इतना
कि वो घाटों का पानी,
अब घायल है कदमों की चोट से..
वो राख़ फिर से चिताओं में समा गयी है..
और वो ख़्वाब फिर से लौट चुके हैं
आसमान की ओर..

❖

मकान

महज़ कंक्रीट के ढ़ाँचे से नहीं बनता
ना ही मिट्टी के धरातल पर
उठी हुई अन्दरूनी दीवारों से बनता है
ना ही केवल पत्थर-गारे की नींव पर खड़े
स्तम्भों से बनता है
हजारों ईंटों को मिलाकर बने
फ़्रेम से भी तो नहीं बनता मकान..

मकान बनता है उन ईंटों के होने की वास्तविकताओं से
जब भट्ठों में ईंटों के साथ
अतृप्त आँखों में उम्मीद भी तैयार होती है
मकान बनता है उन स्तंभों के बनने की वास्तविकताओं से
जब ख़ुद के घरों से दूर दो हाथ
किसी और का घर बनाते हैं
मकान बनता है बिछाई हुई छतों की वास्तविकताओं से
जब मजबूरियाँ हाथ बनकर
अपनी ही छतों में पैबंद लगा कर आती हैं
मकान बनता है उस मिट्टी की वास्तविकताओं से
जो ज़मीं से ही लेकर
ज़मीं के ऊपर ही उठा दी जाती है
और अधिकार में बाँध दी जाती है..

मकान बनता है उन चारदीवारियों से
जो आदमी के बीच आदमी ही उठाता है
और तय कर लेता है अपने दायरे उस मकान तक
जो मकान उसके अपने अहंकारों से बनता है।

❖

बी-194/1, दीन दयाल नगर
खाटी बाबा रोड, झाँसी-284003 (उ.प्र.)
मोबाइल : 9453866015, 9794847132

डॉ. मीरा निचळे की कविता

महाकाव्य

मात्र तुम्हारी आहट
भर देती है;
जीवन के पन्नों को शब्दों से
और उड़ेल देती है
कितने ही रस-कलश
हर पन्ने पर।
तुमसे टकराती हवा
पहुँच जाती है तुमसे पहले
और बन जाती है स्पंदन प्रत्येक पद का।
गूँज तुम्हारे धड़कनों की
वरन करती है-लयात्मकता का।
और प्रतीक्षा का तुम्हारी....
अज्ञात और अदृश्य बंध,
बनता है छंद और बिम्ब शब्द का।
आहें मेरी शब्दशिल्प रचती जा रही हैं,
किसी ग्रंथ का।
तुम्हारी श्वॉसों से स्पर्शित अणु-अणु
कर देता है; भावों को अलंकृत....
इसी कारण प्रत्येक पन्ना बनता जा रहा है काव्य।
सोचती हूँ....मिलन में तुम्हारी
क्या यह पुस्तक बन जाएगी महाकाव्य
या समग्र सारस्वत से कर देगी
तुम्हारा अभिषेक और बन जाएगी शून्य।

❖

हो अगर तुम

सृष्टि की समग्र सकारात्मकता को
मनुष्य के भीतर भर दो
हो अगर तुम।
संसार की बेशकीमती वस्तु 'प्रेम'
उससे मनुष्यता को अभिभूत कर दो
हो अगर तुम।
विश्व का सत्य 'आंसू'
उसे पोंछने का सामर्थ्य इन हाथों में भर दो
हो अगर तुम।
हथेली पे भूख लिए
भटक रहें अनगिनत बन्दों को तेरे
दो जून की रोटी नसीब कर दो
हो अगर तुम।
गम खाकर जिंदगी बन गयी है
जिनके लिए मात्र एक चीख
परिचय उनका सामान्य जीवन से कर दो
हो अगर तुम।
नफरतों की आंधियों में कैद
प्यार के बुझे चिरागों को रोशन कर दो।
हो अगर बस में तुम्हारे....
व्यक्ति-व्यक्ति के व्यवहार को
छल रहित कर दो।

❖

अनुवाद विभाग
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
मोबाइल : 9604457296
ई-मेल : drmeerakaijkar@gmail.com

आशु महाजन की कविताएँ

मृतप्राय संबंध

स्तब्ध ज़हन में
पत्थर जज़्बात
और निस्पंद शरीर

पड़े हैं यूँ
कमान में ज़्यू
चंद निष्क्रिय तीन

एक प्रेत की तरह
भटकते विचार
रूह...अधर में,
नहीं कोई जिस्म
जिसका दावेदार॥

इस ताबूत में
कैद कर देंगे
जो इन सब को
एक साथ
तो कहलाई जाएगी
ये किसकी लाश? ? ?

इंसान की...
संबंधों की...
जज़्बातों की...विचारों की...
या कहलाएगा
ये सिर्फ एक
जिस्म बेजान!!!!

लॉक डाउन मेरी नज़र में

खुली खिड़कियाँ
बंद कपाट
चिंतित ललाट
बजते थाल
जुड़ते हाथ
शंखनाद
घंटनाद
स्मित हास
थोड़ा सा परिहास
फिर
उन्मुक्त अट्टहास
खुले आसमान
में पंछियों का रास
इस एकांतवास
में करो
अपने से अपना ही
साक्षात्कार
भय मृत्यु का
या पीड़ा का
विषाद
कहीं छुपकर
आता दिखे
जो अवसाद
तो उसे देना
तुम मात
अभी लगता है
जो अंधकार
उसी को चीर
के आएगी
रोशनी की चमकार
ओ मेरे बंधु
ओ मेरे भ्रात
मत जाना हार
भय को देना
कोठरी में डार
मानव की
जीवन की
फिर होगी
जय जयकार

बी-3/20, मियांवाली नगर
पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110047
मोबाइल : 7838176163
ई-मेल : ashu.mahajan1967@gmail.com

सपना रघुनन्दन शुक्ला की कविताएँ

सपने

आँखें कुछ ज्यादा ही
खूबसूरत थीं
उसकी

राज पूछने पर
कहने लगी

बस!
कालिख है
कुछ ख्वाबों की
आँखों में
पड़े-पड़े जो
राख हो गए।

❖

भ्रष्टाचार

तमाम संघर्षों के बाद
कुर्सियों पर पहुँचे लोग
जब इत्मीनान से
बैठ जाते हैं कुर्सियों पर
तब इन्हें संघर्षरत लोग
अच्छे नहीं लगते

फिर ये कुर्सियाँ थमाते हैं
ऊँचे रुतबे वालों को
क्यों पता है?
क्योंकि
इन ऊँचे रुतबे वालों कि पीठ
कुछ ज्यादा ही बड़ी हथेलियों से
थपथपाई जाती हैं।

और इन थपथपाहटों के सामने
पहले से विराजमान इन कुर्सी वालों की
सभी इन्द्रियाँ ठप पड़ जाती हैं।

❖

मानवता

चलो!
ठहर जाएँ
किसी पत्ते पर
ओस की बूँद जैसे

लम्हे भर के ही
जीवन संग
इतने!!!
पारदर्शी (रत्ती भर मैल न हो जहाँ)
कि देख सकें
हर किसी की
अनकही
तकलीफों को।

❖

अनमोल जीवन

सिगरेट के धुएँ-सी है जिंदगी
लम्हों में हवा होती है जिंदगी
भर सको तो भर लो मुट्ठियों में
वक्त की हथेलियों से
रेत-सी फिसलती है
जिंदगी....

❖

सी/1-32, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089
मोबाइल : 8826359666
ई-मेल : sapnakashav27@gmail.com

मृणाल शर्मा की कविताएँ

उपवन क्यों आलोकित है

उपवन क्यों आलोकित है?
क्या इंदु भू पर आया है।

अधीर युथि के पुष्प गुच्छ,
किसका अभिवादन करते हैं?
किस आगंतुक के पथ को,
जुगनू ज्योति से भरते हैं।

नील पद्म की पंक्तियाँ,
निशा का अद्भुत शृंगार,
जल के तन पर विस्तृत,
रश्मि का चंचल विस्तार

रत्न जड़ित दुर्वा आच्छादित,
लताएँ द्रुम पर हो आश्रित,
है किसकी सुंदरता प्रदीप्त
उपवन के यौवन में मिश्रित?

अलि दृश्य नहीं इस पल,
कलियाँ उन्मादित है किससे?
प्रत्यक्ष नहीं क्यों लोचन को,
हुई उपवन की सज्जा जिससे

आसिक्त छींटती पग-पग पर
है दैव गंध या भ्रम कोई?
चंचल-सी कोपल, पर कोपल,
क्या रति रचित है क्रम कोई?

मधुजल मग्न मृणाल पटलियाँ
शृंगार सप्तक बोलती
अंतरंग स्पर्श पाकर,
किस नाद के वश डोलती?

दिव्य किसी निराकार को,
पुष्पक धरा पर लाया है,
उपवन क्यों आलोकित है?
क्या इंदु भू पर आया है।

पंछी

जब घर से निकलता है पंछी,

तो क्या उसे है मालूम कि,

किस नदी का पानी मिलेगा,

किसकी मुडेर पर चुग्गा दिखेगा?

किसके परछी में लगा पेड़

अनार का, जो सहसा पथ पड़ेगा?

वह तो बस उड़ चलता है,

अनिश्चितता में यूँ ही निकल पड़ता है।

फिर जब स्वच्छंदता की सच्चाई,

थकान और अंधकार बन नजर आती है,

तब नीड़ की व्याकुलता,

उस डाल का अपनापन,

बूँद भर शीतलता चाँद की,

उसे फिर घर खींच लाती है।

क्या चुग्गे का लोभ बुरा है?

या स्वच्छंदता का भोग?

शायद यह सही है, या नहीं भी,

पर यह पंछी रोज उड़ता है,

भटकता है, फिर घर चला आता है।

प्रिंसिपल सॉफ्टवेयर कंसलटेंट
7, हर्बर्ट स्ट्रीट, संत लियोनार्ड, न्यू साउथ वेल्स, 2065, ऑस्ट्रेलिया
मोबाइल : 0404857290 ई-मेल : mrinal14@gmail.com

हरि मोहन की कविताएँ

ऐसे ही होता खुश

कविता में बनाता एक पार्क
बनाता एक बैंच
बहता हवा बनकर
कि तुम आओ देखूँ एक बार
तुम्हारा माथा छू कर करूँ प्यार।

पेंटिग में रचता
सन्नाटे का एक जंगल,
पहाड़ों के बीच हरीतिमा से घिरा एकाकी घर,
प्रतीक्षा करता कि तुम आओ
करूँ स्वागत घर बनकर।

मैं ऐसे ही होता खुश
तुमको खुशियाँ देने की कल्पनाओं से
आपाद मस्तक विनम्रता से भरा
कृतज्ञ।

❖

सोने से पहले का पाठ

एक कामकाजी एकाकी स्त्री
सोने से पहले पढ़ती है कविताएँ,
कुछ कहानियाँ और कभी-कभी
पिछले किसी दिन शुरू किया हुआ
कोई उपन्यास।

जुड़ती है वह कल्पनाओं से
जीवन के नीरव परिदृश्य में
ध्यान से देखने पर भी एकरसता,
कुछ नया शेष दिखाई नहीं देता।
किताबें उसे नई दुनिया
के दरवाजे तक ले जाती हैं।

नई किसी किताब में चलकर
वह खिड़की के पार
कोहरे ढँकी वादियों में निकलती है कि
अचानक याद आ जाता ऑफिस का
कोई अधूरा छूटा काम।
जब कविता में फूलों भरे रास्ते पर
चलकर जा रही होती है कहीं
यूँ ही याद आ जाती घर की कोई बात।

कहानी कोई ले जाती उसे किसी
खूबसूरत दुनिया में कि
याद आ जाती कल बाजार से
लेने वाली जरूरी चीजों की फेहरिस्त।
उपन्यास में डूबती कि
याद आ जाती दूर छूटे स्वजनों की।

वह बार बार जा कर
लौट आती बार बार।

❖

27, सिंडिकेट बैंक कॉलोनी, गेलाना रोड, आगरा-282007
मोबाइल : 8218682715
ई-मेल : profharimohan@gmail.com

दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को वेबिनार के उद्घाटन सत्र में वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के माध्यम से भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का उद्बोधन।

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष आईसीसीआर और संसद सदस्य ने दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर आयोजित वेबिनार की अध्यक्षता की।

दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर आयोजित वेबिनार के उद्घाटन समारोह में उपस्थित भूटान एवं कोरिया गणराज्य के राजदूत, बांग्लादेश के उच्चायुक्त, श्रीलंका के कार्यवाहक उच्चायुक्त, अफगानिस्तान के काउंसलर, महानिदेशक, आईसीसीआर, उप महानिदेशक (संस्कृति) और UPID के अध्यक्ष।

दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर आयोजित वेबिनार के उद्घाटन समारोह में मुख्य अतिथि महामहिम शी संगे चॉडेन वांगचुक, द रॉयल क्वीन मदर ऑफ भूटान द्वारा संदेश दिया गया।

दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर आयोजित वेबिनार के उद्घाटन समारोह में गेस्ट ऑफ ऑनर कोरिया गणराज्य की पहली महिला, H.E. किम जंगसूक द्वारा संदेश दिया गया।

दिनांक 03 अक्तूबर 2020 को महात्मा गाँधी जी की 150वीं जयंती के अवसर पर आयोजित वेबिनार के उद्घाटन समारोह में H.E. श्री गोलम दस्तगीर गाजी, एम.पी. माननीय मंत्री (कपड़ा एवं जूट उद्योग) बांग्लादेश के पीपुल्स रिपब्लिक सरकार द्वारा संदेश दिया गया।

सितंबर 2020 में परिषद के क्षेत्रीय कार्यालय, हैदराबाद द्वारा हिंदी पखवाड़े का आयोजन एवं पुरस्कार वितरण समारोह।

04 सदस्यीय सितार समूह ने श्री गौरव मजूमदार के नेतृत्व में 06–14 अक्तूबर 2020 को भारत एन कन्सर्टो फेस्टिवल में सांस्कृतिक प्रस्तुति के लिए स्पेन का दौरा किया।

डॉ विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष (आई.सी.सी.आर.) दिनांक 18 नवम्बर 2020, कोर्रेस्पोंडेंट्स क्लब (FCC), नई दिल्ली में "भारत के सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पॉवर" पर मीडिया को संबोधित करते हुए। मंच पर श्री दिनेश के पटनायक (महानिदेशक) आई.सी.सी.आर., श्री एस. वेंकट नारायण, अध्यक्ष (एफ.सी.सी.) और श्री मुनीश गुप्ता, सचिव (एफ.सी.सी.) भी मौजूद हैं।

दुनिया भर में योग को कैरियर कौशल के रूप में बढ़ावा देने के लिए और योग विज्ञान के प्रचार के लिए आई.सी.सी.आर. और एम.डी.एन.आई.वाई. के बीच समझौता ज्ञापन (MoU)

सितंबर 2020 में आयोजित हिंदी कार्यशाला में भाग लेते परिषद के अधिकारी व कर्मचारीगण।

सितंबर 2020 को आयोजित हिंदी पखवाड़े का समापन व पुरस्कार वितरण समारोह।

सितंबर 2020 को आयोजित हिंदी पखवाड़े का समापन व पुरस्कार वितरण समारोह।

सितंबर 2020 को आयोजित हिंदी पखवाड़े के दौरान निबंध प्रतियोगिता में भाग लेते परिषद के अधिकारी एवं कर्मचारी।

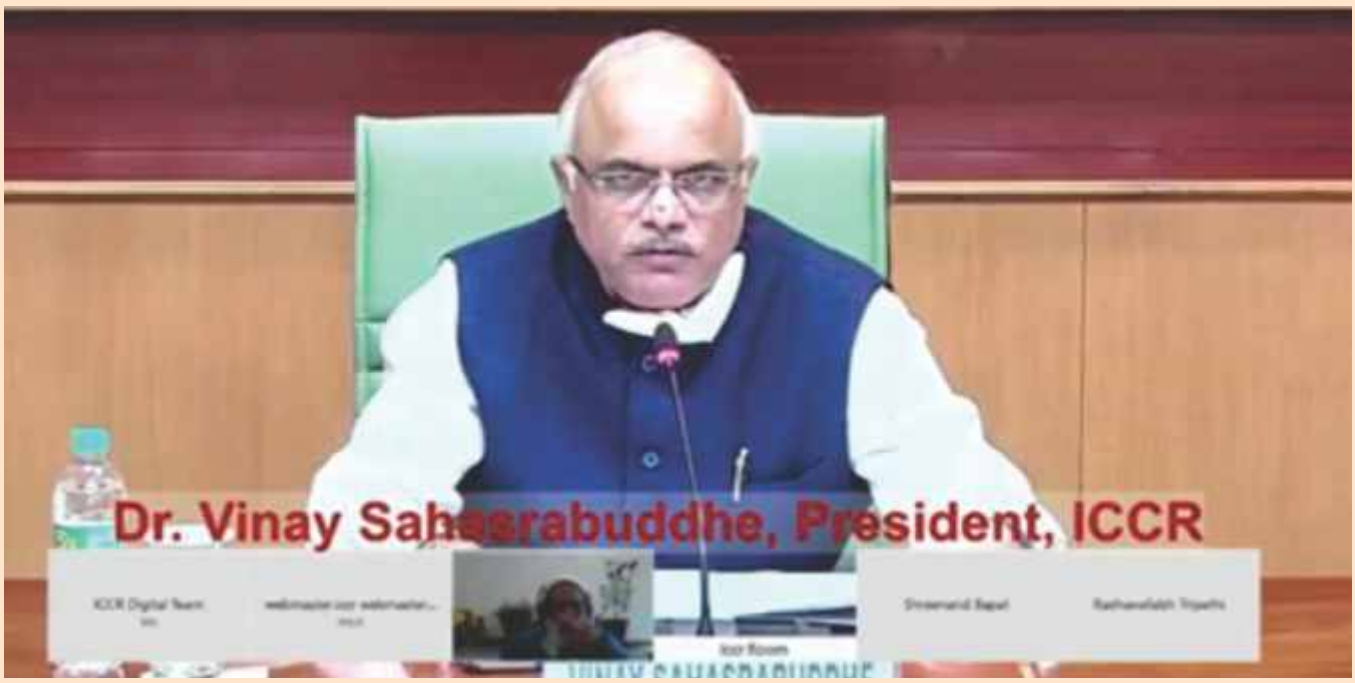

डॉ. विनय सहस्रबुद्धे, अध्यक्ष, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद वेबिनार को संबोधित करते हुए।

प्रोफेसर शरद देशपांडे, अकादमिक संचालक, इंडोलोजी वेबिनार

श्री प्रशांत पिसे, उपमहानिदेशक, आईसीसीआर वेबिनार को संबोधित करते हुए।

दिनांक 9 दिसंबर 2020 को विदेश मंत्रालय एवं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद द्वारा आयोजित प्रवासी भारतीय दिवस सम्मेलन "भारतीय संस्कृति के प्रचार में प्रवासी भारतीयों की भूमिका"

एंबेसडर वीरेंद्र गुप्ता, अध्यक्ष, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परिषद सम्मेलन के उद्घाटन सत्र का संचालन करते हुए।

मुख्य अतिथि-श्री वी मुरलीधरन, विदेश राज्य मंत्री सम्मेलन को संबोधित करते हुए।

एंबेसडर शशांक-सम्मेलन के तकनीकी अधिवेशन का संचालन करते हुए।

परिषद के सहयोग से अप्लाइड थिएटर इंडिया फाउंडेशन द्वारा दिनांक 12-13 दिसंबर 2020 को "रोल ऑफ अप्लाइड थिएटर इन इंडियन सोसाइटी" आयोजित वेबिनार

श्री दिनेश पटनायक, महानिदेशक, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, मुख्य अतिथि वेबिनार को संबोधित करते हुए।

डॉ. स्वरूप सम्पत रावल बीज वक्तव्य प्रस्तुत करते हुए।

विशिष्ट भारतविद पुरस्कार 2019 व विश्व संस्कृत पुरस्कार 2019 के पुरस्कार समारोह का ऑनलाइन आयोजन दिनांक 15 दिसंबर 2020 प्रातः 11:00 बजे (Seoul, South Korea)

दिनांक 15 दिसंबर 2020 को विशिष्ट भारतविद पुरस्कार 2019 एवम् विश्व संस्कृत पुरस्कार 2019 के समारोह में अध्यक्ष महोदय संबोधित करते हुए।

दिनांक 15 दिसंबर 2020 को विशिष्ट भारतविद पुरस्कार 2019 एवम् विश्व संस्कृत पुरस्कार 2019 के समारोह में महानिदेशक महोदय संबोधित करते हुए।

दिनांक 15 दिसंबर 2020 को विशिष्ट भारतविद पुरस्कार 2019 के समारोह में राजदूत सीओल, साउथ कोरिया द्वारा प्रो. ली जियोलीओंग (Prof. Geo Lyong Lee) को साइटेशन व गोल्ड प्लेटिड मडैलियन प्रदान करते हुए।

दिनांक 15 दिसंबर 2020 को विश्व संस्कृत पुरस्कार 2019 के समारोह में राजदूत सीओल, साउथ कोरिया द्वारा प्रो. लिम ग्यून डोंग (Prof. Lim Geun Dong) को साइटेशन व गोल्ड प्लेटिड मडैलियन प्रदान करते हुए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

रिपोर्ट

"विदेश में भारतीय संस्कृति के संवर्धन में प्रवासी भारतीय की भूमिका" पर प्रवासी भारतीय दिवस (प्र.भा.दि.) सम्मेलन

विदेश मंत्रालय ने डायसपोरा रिसर्च एंड रिसोर्स सेंटर (अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद) के सहयोग से **"विदेश में भारतीय संस्कृति के संवर्धन में प्रवासी भारतीय की भूमिका"** पर प्रवासी भारतीय दिवस (प्र.भा.दि.) सम्मेलन बुधवार, 9 दिसंबर 2020 को आभासी (वर्चुअल) मोड में आयोजन के लिए भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद को जिम्मेदारी सौंपी थी। यह सम्मेलन दो क्षेत्रों अर्थात् पूर्वी क्षेत्र (अफ्रीका, दक्षिण, दक्षिण पूर्व एशिया और सुदूर पूर्व) में **1200 बजे से 1400 बजे** (भारतीय मानक समय) और पश्चिमी क्षेत्र (यूरोप, अमेरिका और कैरिबियन) में **1930 बजे से 2130 बजे** (भारतीय मानक समय) तक आयोजित किया गया था।

सम्मेलन का उद्देश्य प्रवासी भारतीयों के बीच सांस्कृतिक प्रसार के लिए सांस्कृतिक बंधन और पारिस्थितिकी तंत्र (इकोसिस्टम) बनाना है। भारतीय प्रवासी और विभिन्न प्रवासी संगठनों ने भारतीय संस्कृति को दुनिया के विभिन्न भागों में फैलाने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह सम्मेलन भारत की साफ्ट पावर को बढ़ाने के लिए प्रवासी भारतीयों के उत्थान के नए तरीकों पर चर्चा करने के लिए भारतीय संस्कृति के प्रसार में शामिल प्रमुख प्रवासी व्यक्तित्वों और संगठनों को एक साथ लाएगा। सांस्कृतिक संरक्षण और संवर्धन के लिए प्रवासी भारतीयों के साथ हमारी साझेदारी ने बहुत अच्छा काम किया है। इस ताकत के आधार पर, विदेशों में भारतीय संस्कृति को और गहरा करने तथा इसका विस्तार करने और सदियों पुरानी पीढ़ी के साथ बेहतर संबंध स्थापित करने में प्रवासी भारतीयों की भूमिका को बढ़ाने के नए तरीकों का पता लगाने का यह सबसे सही समय है।

व्यापक कल्याण और समृद्धि की वृद्धि और विकास की प्रक्रिया में पूर्ण भागीदार के रूप में प्रवासी भारतीय दुनिया के साथ भारतीय संपर्क को मजबूत करने के लिए सद्भावना के मूल्यवान पुलों का प्रतिनिधित्व करते हैं। वसुधैव कुटुम्बकम की सच्ची भावना में शांति, बहुलता और सार्वभौमिक भ्रातृत्व के अपने सांस्कृतिक मूल्यों के साथ, भारत पारंपरिक रूप से वैश्विक शांति और प्रगति को बढ़ावा देने के लिए साफ्ट पावर प्रयास की एक धुरी रहा है, और प्रवासी भारतीयों ने उस भूमिका को वास्तविक अर्थ में निभाया है।

माननीय विदेश राज्य मंत्री श्री वी. मुरलीधरन सम्मेलन में मुख्य अतिथि थे उनके द्वारा उद्घाटन सत्र को संबोधित किया गया था, और भा.सां.सं.प. के अध्यक्ष माननीय डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने स्वागत भाषण दिया। आभासी (वर्चुअल) सम्मेलन में भारत के वक्ताओं के साथ-साथ दुनिया भर के 15 से अधिक देशों के सुप्रसिद्ध वक्ताओं ने अपने अनुभवों को साझा किया और (i) विदेशों में भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने और प्रवासी भारतीयों की भूमिका, (ii) भारत और अन्य देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बेहतर बनाने, (iii) विदेशों में भारत की साफ्ट पावर का प्रक्षेपण और (iv) युवाओं को आकर्षित करने के तरीके और साधन सुझाए।

इस सम्मेलन को दुनिया भर के हजारों दर्शकों द्वारा देखा एवं सराहा गया और इसमें होने वाले उत्कृष्ट विचार विमर्श से लाभान्वित हुए। तकरीबन 11000 से भी अधिक दर्शकों ने विभिन्न डिजिटल प्लेटफॉर्मों द्वारा इस सम्मेलन में भाग लिया।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

सदस्यता शुल्क फार्म

प्रिय महोदय,

कृपया गगनांचल पत्रिका की एक साल/तीन साल की सदस्यता प्रदान करें।

बिल भेजने का पता

.....

.....

.....

.....

पत्रिका भिजवाने का पता

.....

.....

.....

.....

विवरण	शुल्क		प्रतियों की सं.	रुपये/US$
गगनांचल वर्ष	एक वर्ष	` 500 (भारत) US$ 100 (विदेश)		
	तीन वर्षीय	` 1200 (भारत) US$ 250 (विदेश)		
कुल	छूट, पुस्तकालय पुस्तक विक्रेता	10% 25%		

मैं इसके साथ बैंक ड्राफ्ट सं. ..... दिनांक .....

रु./US$ ..... बैंक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, नई दिल्ली के नाम भिजवा रहा/रही हूँ।

कृपया इस फॉर्म को बैंक ड्राफ्ट के साथ
निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ :
कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
आजाद भवन, इंद्रप्रस्थ एस्टेट,
नई दिल्ली-110002, भारत
फोन नं. 011-23379309, 23379310

हस्ताक्षर और स्टैंप .....

नाम .....

पद .....

दिनांक .....

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

प्रकाशन एवं मल्टीमीडिया कृति

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा गत 42 वर्षों से हिंदी पत्रिका गगनांचल का प्रकाशन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य देश के साथ-साथ विदेशों में भी भारतीय साहित्य, कला, दर्शन तथा हिंदी का प्रचार-प्रसार करना है तथा इसका वितरण देश-विदेश में व्यापक स्तर पर किया जाता है।

इसके अतिरिक्त परिषद ने कला, दर्शन, कूटनीति, भाषा एवं साहित्य, विभिन्न विषयों पर पुस्तकों का प्रकाशन किया है। सुप्रसिद्ध भारतीय राजनीतिज्ञों और दार्शनिकों जैसे महात्मा गाँधी, मौलाना आजाद, नेहरू व टैगोर की रचनाएँ परिषद की प्रकाशन योजना में गौरवशाली स्थान रखती हैं। प्रकाशन-योजना विशेष रूप से उन पुस्तकों पर केंद्रित है, जो भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा पौराणिक कथाओं, संगीत, नृत्य और नाट्यकला से संबद्ध हैं।

परिषद द्वारा भारत में आयोजित अंतरराष्ट्रीय महोत्सवों के अंतर्गत सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा विदेशी सांस्कृतिक दलों द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रमों की वीडियो रिकॉर्डिंग तैयार की जाती है। इसके अतिरिक्त परिषद ने ध्वन्यांकित संगीत के 100 वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर दूरदर्शन के साथ मिलकर ऑडियो कैसेट एवं डिस्क की एक शृंखला का संयुक्त रूप से निर्माण किया है।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना, सन् 1950 में स्वतंत्र भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद द्वारा की गई थी। तब से अब तक, हम भारत में लोकतंत्र की दृढ़ीकरण, न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था की स्थापना, अर्थव्यवस्था का तीव्र विकास, महिलाओं का सशक्तीकरण, विश्व-स्तरीय शैक्षणिक संस्थाओं का सृजन और वैज्ञानिक परम्पराओं का पुनरुज्जीवन देख चुके हैं। भारत की पांच सहस्त्राब्दि पुरानी संस्कृति का नवजागरण, पुनः स्थापना एवं नवीनीकरण हो रहा है, जिसका आभास हमें भारतीय भाषाओं की सक्रिय प्रोन्नति, प्रगति एवं प्रयोग में और सिनेमा के व्यापक प्रभाव में मिलता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विकास के इन आयामों से समन्वय रखते हुए, समकालीन भारत के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है।

पिछले पांच दशक, भारत के लम्बे इतिहास में, कला के दृष्टिकोण से सर्वाधिक उत्साहवर्द्धक रहे हैं। भारतीय साहित्य, संगीत व नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला व शिल्प और नाट्यकला तथा फिल्म, प्रत्येक में अभूतपूर्व सृजन हो रहा है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, परंपरागत के साथ-साथ समकालीन प्रयोगों को भी लगातार बढ़ावा दे रही है। साथ ही, भारत की सांस्कृतिक पहचान-शास्त्रीय व लोक कलाओं को विशेष सम्मान दिया जाता है। भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद सहभागिता व भाईचारे की संस्कृति की संवाहक है, व अन्य राष्ट्रों के साथ सृजनात्मक संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करती है। विश्व-संस्कृति से संवाद स्थापित करने के लिए परिषद ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारतीय संस्कृति की समृद्धि एवं विविधता को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

भारत और सहयोगी राष्ट्रों के बीच सांस्कृतिक व बौद्धिक आदान-प्रदान का अग्रणी प्रायोजक होना, परिषद के लिए गौरव का विषय है। परिषद का यह संकल्प है कि आने वाले वर्षों में भारत के गौरवशाली सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक आंदोलन को बढ़ावा दिया जाए।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

अध्यक्ष	:	23378616, 23370698
महानिदेशक	:	23378103, 23370471
उप-महानिदेशक (प्रशासन)	:	23370784, 23379315
उप-महानिदेशक (संस्कृति)	:	23379249, 23370794
वरिष्ठ कार्यक्रम निदेशक (हिंदी)	:	23379386
प्रशासन अनुभाग	:	23370834
वित्त एवं लेखा अनुभाग	:	23379638
हिंदी अनुभाग	:	23379309-10 एक्स. 2268/2272

गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल
गगनांचल

पंजीयन संख्या, आर.एन/32381/78
ISSN-0971-1430

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद के प्रकाशन

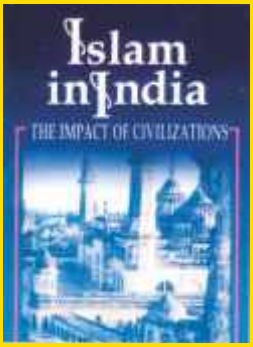

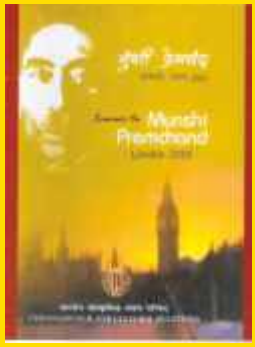

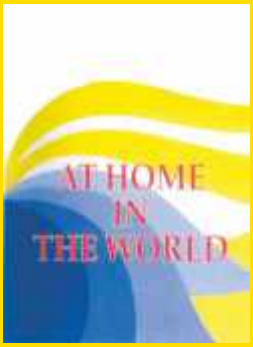

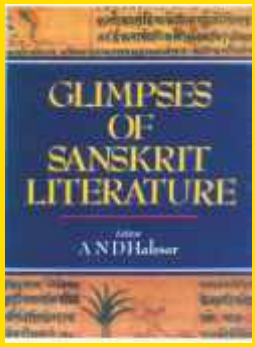

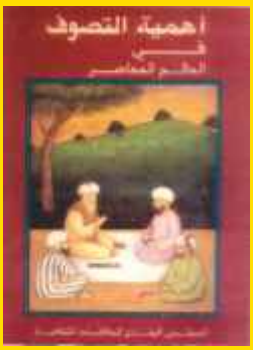

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
फोन : 91-11-23379309, 23379310
ई-मेल : pohindi.iccr@nic.in
वेबसाइट : www.iccr.gov.in

गगनांचल
वर्ष: 43, अंक: 5-6, सितंबर-दिसंबर 2020 (संयुक्तांक)
आवरण परिकल्पना : ममता गोयनका